'दिव्य जीवन मण्डल' के प्रधान मन्त्री
श्री स्वामी चिदानन्द सरस्वती

विनम्र भेंट

योग्य गुरु के योग्य शिष्य—
'दिव्य-जीवन-मण्डल' के प्रधान-मन्त्री,
श्री स्वामी चिदानन्द जी सरस्वती को

सादर,
सप्रेम,
सभय,
सश्रद्धा,

यह नूतन पुस्तक श्री स्वामी जी महाराज
की ६७वीं जन्म-जयन्ती पर समर्पण।

पिलानी, जयपुर
राजस्थान

—अखिल विनय

उपोद्घात

श्री स्वामी शिवानन्द, विगत कितने ही वर्षों से दिव्य-जीवन के अमृत-संचार में अप्रतिहत गति से संलग्न हैं। हमारे धर्म-शास्त्रों के वृहद् आध्यात्मिक ज्ञान के बहुप्रसार और इसे सर्वसाधारण तक पहुँचाने के लिए आपने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। गत वर्ष जब आप पूना पधारे थे, इनसे मिलकर मुझे बहुत हर्ष हुआ और आप के विशाल व्यक्तित्व से मैं अत्यन्त प्रभावान्वित हुआ था। पुण्यस्थली हृषीकेश में वर्षों के तप तथा क्रियात्मक रूप से सच्चे जीवन-ज्ञान के प्रसार संवर्द्धन द्वारा आप देशवासियों की महती सेवा कर रहे हैं। आपने अपने ग्रन्थों में शान्त अध्ययन व मनन के जरिए मस्तिष्क को संतुलित बनाए रखने की महत्ता पर प्रकाश डाला है; ताकि साथियों, हमवतनों की सेवा करने के लिए हम अच्छे और अधिक योग्य कार्यकर्ता बन सकें। इसीलिए मुझे यह जान कर बहुत प्रसन्नता हुई कि श्री अखिल विनय ने स्वामी जी के जीवन और कार्य पर एक पुस्तक लिखी है। मुझे विश्वास है कि यह स्वामी जी के बहुसंख्यक अनुयायियों ही नहीं, प्रत्युत् शेष देशवासियों को भी अनुप्राणित करने का प्रेरणा-केन्द्र रहेगी।

बा० ग० खेर

ता० २८ अगस्त, १९५१, कौंसिल हॉल, पूना।

यू० के० में भारत के हाई-कमिश्नर (भू० पू० मुख्य मंत्री, बम्बई राज्य)

श्रद्धांजलि

बात सन् १६२२-२३ की है। मलाया के एक प्रतिष्ठित भारतीय डाक्टर अपने मित्रों तथा परिचितों में चर्चा के विषय बने हुए हैं। कोई कहता है "देखो! इस भले मानस का दिमाग खराब हो गया है। अपनी नौकरी छोड़कर 'ओ३म् नमः शिवाय' की रट लगाता रहता है" तो दूसरा फर्माता है "और पागलों के क्या सींग-पूँछ होते हैं? जो सहस्रों रुपए प्रति वर्ष की आमदनी को लात मार कर इस तरह भटकता फिरे, उसे भयङ्कर उन्माद की बीमारी हुई समझिए।" कोई उसे ढोंगी बतलाता है तो कोई विज्ञापन-प्रिय; पर उस डाक्टर को इन आलोचनाओं की कोई पर्वा नहीं। मानों उसने अपना मन्त्र बना लिया है— "They say, what they say, let them say" अर्थात् "वे कहते हैं, क्या कहते हैं? कहने दो।"

जिस दिन डाक्टर कुप्पूस्वामी ने अपनी नौकरी छोड़ कर आध्यात्मिक प्रयोगों के लिए भारत आने का निश्चय किया, वह उनके जीवन का एक महत्त्वपूर्ण दिवस था और वह निर्णय केवल उनके लिए ही नहीं, सहस्रों अन्य व्यक्तियों के लिए भी कल्याणकारी सिद्ध हुआ।

डाक्टर कुप्पूस्वामी स्वामी शिवानन्द कैसे बने, आगे चल कर उन्होंने कौन कौन लोकोपयोगी कार्य किये और ६७ वर्ष की उम्र में भी वे कितना परिश्रम कर रहे हैं, इन बातों की जानकारी पाठकों को बन्धुवर अखिल विनय जी की वर्तमान पुस्तक में मिल ही जायगी। हम यहाँ दो चार शब्दों में विनम्रतापूर्वक अपनी श्रद्धाञ्जलि उनकी सेवा में अर्पित कर रहे हैं।

यहाँ पर एक बात हम ईमानदारी के साथ और निःसङ्कोच भाव से स्वीकार करते हैं, वह यह कि भगवा वस्त्रों के प्रति हमारे हृदय में कोई विशेष श्रद्धा नहीं। स्वामी रामतीर्थ ने अपने अन्तिम दिनों में

प्रोफेसर पूरनसिंह जी से कहा था "इन भगवा वस्त्रों के नीचे बहुत कुछ दम्भ छिप गया है" और कविवर डा० मुहम्मद इकबाल का ख्याल था कि स्वामी रामतीर्थ यदि अधिक जीवित रहते तो फिर गृहस्थ जीवन को वापस आ जाते। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि साधारण साधु-संन्यासी का जीवन किसी भी हालत में साधारण गृहस्थ के जीवन से पवित्रतर नहीं। इन कारणों से जब श्री अखिल विनय जी ने हम से अपनी इस पुस्तक के विषय में कुछ लिखने का अनुरोध किया तो पहले तो हमारे मन में विशेष उत्साह नहीं हुआ, पर ज्यों ज्यों हम इस पुस्तकों को पढ़ते गए, स्वामी शिवानन्द जी के प्रति हमारे हृदय में श्रद्धा निरन्तर बढ़ती ही गई। स्वामी जी की परिश्रमशीलता तथा अनुशासनप्रियता और संगठन शक्ति के सम्मुख हम नतमस्तक हो गए। डेढ़ सौ पुस्तकों का लेखन और प्रकाशन कोई आसान काम नहीं और फिर एक वर्ष में ४८ हजार रुपयों की पुस्तकों का मुफ्त वितरण और भी अधिक आश्चर्यजनक है।

यह पढ़कर सन्तोष होता है कि स्वामी जी स्वयं ही परिश्रम नहीं करते, दूसरे साधकों से काम लेने की कला में भी वे पारंगत हैं। अमर शहीद गणेश शङ्कर जी कहा करते थे—"खुद मेहनत करना आसान है, पर दूसरों से काम लेना मुश्किल।"

एक साथ आठ दस व्यक्तियों को भिन्न भिन्न कार्यों के लिए आदेश देना और उनसे वे काम ले लेना, यह प्रकट करता है कि स्वामी जी ने अपने मस्तिष्क को खूब सन्तुलित तथा संगठित कर लिया है। उनका समन्वयात्मक उदारतापूर्ण दृष्टिकोण भी प्रशंसनीय है। छोटी छोटी बातों के विषय में भी वे कितने सावधान हैं, यह पढ़ कर ताज्जुब होता है।

किसी भी संस्था का सचालन बिना सुयोग्य शिष्यों और भक्तों की की सहायता के नहीं हो सकता और यह हर्ष की बात है कि स्वामी जी को योग्य शिष्य मिल गए हैं। स्वामी जी उन्हें "मुँह में राम, हाथ से

काम' का मन्त्र देते हैं, जो निःसन्देह युग-धर्म के सर्वथा अनुकूल है।

इसे मैं अपना दुर्भाग्य ही मानता हूँ कि न तो मुझे स्वामी जी के आश्रम देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और न उनके ग्रन्थों के पढ़ने का ही अवसर मिला। हाँ, अखिल विनय जी की पुस्तक में उनके जो विचार पढ़ने को मिले हैं वे सुलझे हुए और जनोपयोगी प्रतीत होते हैं। उनके या किसी के भी सभी विचारों से सहमत होना ठीक न होगा। उदाहरणार्थ २४३ वें पृष्ठ पर लिखा गया हैः—

"स्वामी जी का कथन है कि जिस माता पिता के ६ बेटे हों, यदि वे उनमें से एक को संन्यासी बनावें और गृहस्थ के चक्कर में न डालें तो अच्छा ही होगा।" हमारी क्षुद्र सम्मति में १६$\frac{2}{3}$ फी सदी का यह औसत बहुत ही ज्यादा है। पाँच सात हजार में एकाध व्यक्ति शायद ऐसा निकले, जिसके लिए गृहस्थी की सीढ़ी को लाँघ कर संन्यासी बन जाना उचित हो, पर शेष के लिए तो यह मार्ग खतरनाक ही है।

स्व० लाला लाजपतराय जी ने अमरीका-प्रवासी नवयुवक भारतीय साधुओं के विषय में कोई अच्छी सम्मति नहीं दी थी। वासनाओं पर काबू कर लेना अत्यन्त ही कठिन कार्य है और इसलिए सर्वोत्तम मार्ग यही है कि सीढ़ी सीढ़ी चढ़ा जाय, एक साथ उछाल मारकर ऊपर जाने की भूल करने में मुँह के बल गिरने की ही सम्भावना अधिक है।

१७२—१७३ पृष्ट पर वर्णित 'ज्योतिषविज्ञान डाक्टरी,' 'प्रसादोपैथी' और 'ओ३म् नाम जप औषधि' की अवैज्ञानिक पद्धतियों का प्रचार आनन्द कुटीर में होने देना खतरे से खाली नहीं। उसी प्रकार 'अखिल विश्व साधु सम्मेलन' तथा 'अखिल विश्व धर्म संगठन' के आयोजनों को भी हम शङ्का की दृष्टि से देखते हैं, क्यों कि 'अखिल भारतीयता' की की बीमारी से हम भली भाँति परिचित हैं। विनम्रतापूर्वक हमने अपना मतभेद प्रकट कर दिया है और हमें विश्वास है कि हमारा यह अपराध क्षन्तव्य समझा जायगा।

बड़े हर्ष के साथ हमने सुना कि स्वामी जी ने महारोग (कुष्ठ) की चिकित्सा के लिए भी एक केन्द्र खोल दिया है। क्या ही अच्छा हो, यदि स्वामी जी अपना आत्मचरित्र लिख दें, जिससे पाठक उनके व्यक्तित्व के क्रम-विकास से भली भाँति परिचित हो जायँ।

अन्त में एक निवेदन और। वृहदाकार चीजों से हमें डर लगता है, चाहे वे जानवर हों या संस्थाएँ। ज्यों ज्यों संस्थाएँ आकार में बढ़ती जाती हैं, उनकी आत्मा के क्षुद्रतर बनने का खतरा भी बढ़ता जाता है। संख्या तथा साधनों का बाहुल्य कभी तो व्यक्तित्व के लिए विघातक सिद्ध होता है। संस्थाएँ तो व्यक्ति की छाया मात्र होती हैं और आनन्द कुटीर स्वामी जी के व्यक्तित्व की छाया ही है। क्या स्वामी जी ने कुछ सुयोग्य शिष्य ऐसे भी तैयार कर दिए हैं जो उनके अभाव में संस्था का विधिवत् संचालन कर सकें। स्वामी जी सवा सौ वर्ष जीवित रहें और अपना दिव्य संदेश श्रद्धालु जनता तक निरन्तर भेजते—रहें यह हम सब की कामना होनी चाहिए; फिर भी लोकोपयोगी संस्था के चिरस्थायित्व के लिए चिन्तित होना सर्वथा स्वाभाविक है।

अखिल विनय जी का मैं बहुत बहुत कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने मुझे एक कर्मयोगी पुरुष को अपनी श्रद्धाञ्जलि देने का अवसर प्रदान किया। आशा है कि कभी न कभी श्रद्धेय स्वामी जी के तथा उनकी संस्था के दर्शन करने का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त होगा।

१२३, नार्थ ऐवेन्यू,
नई दिल्ली।

बनारसीदास चतुर्वेदी

श्री अग्निन विनय

लेखक की ओर से

महानुभाव।

पुस्तक आपके हाथ में है। यों तो सन् १९४५ से पूर्व ही मुझे पत्र-व्यवहार द्वारा श्री स्वामी जी महाराज के सम्पर्क में आने का अवसर मिला और उनके लिखेनुसार सर्वप्रथम मैंने तीन पुस्तकें 'ब्रह्मचर्य' तथा 'योग का अभ्यास' (दो भाग) मंगा कर पढ़ीं। उन दिनों मेरा मन बहुत विचलित रहा करता था और मेरी यही इच्छा होती थी कि सन्यास ले लूँ। अप्रैल १९४५ ई० में मुझे 'साधना सप्ताह' में सम्मिलित होने का अवसर मिला और पहले-पहल स्वामी जी के दर्शन हुए तथा भाषण भी तब ही सुना। उस भाषण की ओजस्वी वाणी आज भी मानो मेरे कानों में गूँज रही है और उनका ताण्डव नृत्य आज भी हृदय पटल पर अंकित है। उसके बाद तो कई बार स्वामी जी के सत्संग का अवसर मिला और शान्ति मिली।

मुझे स्वामी जी के समन्वयात्मक योग और प्रधानत निष्काम कर्म-योग की व्याख्या ने बहुत प्रभावित किया है। स्वामी जी के दर्शन की अपनी महत्ता है; उन्होंने जीवन-दर्शन को क्रियात्मक जीवन में अपना कर, एक सर्वोत्कृष्ट आदर्श उपस्थित किया है, जो युग युग तक मानव को प्रेरणा देता रहेगा। श्री स्वामी जी का यह उपदेश कि 'संसार में रह कर भी साधना की जा सकती है, जीवन को उच्च बनाया जा सकता है' मैं समझता हूँ कि पथभ्रष्ट मानव के लिए एक नूतन संदेश है। स्वामी जी द्वारा आविष्कृत 'आत्मिक यम' एक प्रभावशाली शस्त्र है और इस शस्त्र को चलाने या बनाने में निपुणता प्राप्त करने के लिए 'आध्यात्मिक दैनन्दिनी' एक अमोघ साधन है। जीवन में आत्म-निरीक्षण का बहुत महत्व है और प्रत्येक व्यक्ति महान् बन सकता है।

श्री स्वामी जी बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न हैं और इसलिए उनके जीवन को मैंने उसी दृष्टिकोण से देखा है, जो मुझे पसन्द है। अतएव मैंने सामान्य मानव को दृष्टिगत रख कर ही इस पुस्तक में श्री स्वामी जी के जीवन, दर्शन, विचारधारा और कार्य पर किंचित् प्रकाश डालने की चेष्टा की है। किन्तु वे आध्यात्मिक महान् विभूति हैं और विभिन्न व्यक्तियों को, जिन्हें सम्पर्क व सत्संग में आने का अवसर मिला है, अलग अलग अनुभव हुए होंगे। यह तो व्यक्तिगत अनुभव की चीज़ है। इस प्रकार समाज-सेवक, ज्ञानी, भक्त, कर्मयोगी, प्रचारक, महात्मा, विश्ववंद्य आदि विविध रूप हैं।

स्वामी जी देश और विदेश के आध्यात्मिक प्रेरक रहे हैं। आपके द्वारा मानव-समाज का तथा धार्मिक जीर्णोद्धार का महान् कार्य सम्पन्न हुआ है। मुझे तो 'अन्धकार में भटकते हुए को प्रकाश मिला है।' इसलिए गुरुदेव के सान्निध्य में रहने का एक अवसर मैं खोज रहा था और इस वर्ष अप्रैल मास में वह मिल सका। मुझे शिवानन्दाश्रम में कुछ समय ठहरने और साधकों के संसर्ग में कुछ क्षण बिताने का मौका मिला। इससे मुझे बहुत लाभ हुआ। मैंने वहाँ एकान्त शान्त वातावरण, सुरम्य स्थली में, गंगा-किनारे, आश्रम में रह कर इस पुस्तक के १२ अध्याय लिख डाले और शेष ६ अध्याय यहाँ लौट कर लिखे। इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता की भाँति यह पुस्तक भी १८ अध्यायों में समाप्त हुई।

मैंने प्रयत्न किया है कि पुस्तक की भाषा सरल एवम् रोचक रहे, ताकि कम जानने वाले और अहिन्दी भाषा-भाषियों के काम में भी यह आवे। अब आप ही इसका निर्णय करेंगे कि इस कार्य में मुझे कितनी सफलता मिली है। श्री गुरुदेव की महती कृपा से मेरे जीवन में सुधार हो रहा है और उसी कृपा के कारण ही मैं इसे निर्विघ्न पूरी

लिख पाया हूँ। बम्बई के मुख्य-मंत्री माननीय श्री बा० गं० खेर का मैं बहुत कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने पुस्तक के लिए दो शब्द लिखने की कृपा की है। ३० जुलाई को, जब मैं इस सम्बन्ध में उनसे मिला तो उन्होंने श्री स्वामी जी के कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी और उनकी लेखनी की दाद दी। सर्व श्री पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, करुणाशंकर पंण्ड्या, गोविन्द वल्लभ पन्त, गीएडाराम चंचल, आदि कई सज्जनों ने सम्मति, सुझाव देकर तथा दैवज्ञशिरोमणि ज्योतिषाचार्य श्री गणेश-जी काशी वाले (गाडर वाड़ा-मध्यप्रदेश) ने स्वामी जी का 'ग्रह लग्न निरूपण' करके मुझे अनुगृहीत किया है।

सा र स्व त स द न,
पि ला नी (ज य पु र)
गणेशचतुर्थी, ६ सितम्बर १९५१

आपका सेवक
अ खि ल वि न य

विषय-सूची

ॐ

श्री सद्गुरु परमात्मने नमः

प्रथम अध्याय

वंश परिचय और प्रारम्भिक जीवन

पूर्व पुरुष श्री अप्पय दीक्षित

पुरातन काल से भारत विद्या व संस्कृति का केन्द्रस्थान रहा है। इस देश में ऋषि-महर्षियों द्वारा संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन प्राचीन काल से चला आता है। आज यह सर्वमान्य है कि वेद सब से प्राचीन पुस्तक है और ये संस्कृत भाषा में लिखे गए। तब यहाँ की बोल-चाल और साहित्य की भाषा भी संस्कृत ही थी। श्री हर्षवर्धन

को यहाँ का अन्तिम हिन्दू सम्राट कहा जाता है। स्वयं वह संस्कृत का उद्भट विद्वान था और 'नागानन्द' आदि कई नाटकों का प्रणेता भी था। संस्कृत साहित्य की यह धारा अविच्छिन्न रूप से अब तक चली आ रही है।

घटना १६ वीं शताब्दी की है। उस समय देश ने पण्डितराज जगन्नाथ जैसे कलाविदों को उत्पन्न किया था। ठीक उसी काल में दक्षिण भारत में संस्कृत साहित्य के अद्वितीय विद्वान और प्रतिभाशाली लेखक श्री अप्पय दीक्षित का बोलबाला था। यदि इतिहास के पृष्ठों को पलटें, तो यह वह काल था, जब की युद्ध समाप्त हो कर, मुगलों का साम्राज्य स्थापित हो चुका था। इसके बाद लगभग ५५० वर्षों तक हिन्दुओं का इस देश में शासन रहा किन्तु वह एकछत्र न था। छोटे-छोटे राजा शान्ति स्थापित करने में असमर्थ रहे। प्रारम्भ में तो मुसलमानों के अत्याचारों से हिन्दू जनता पीड़ित हो उठी और भगवान के सिवाय, उसका कोई आसरा न था। यही कारण है कि उस युग में अनेक सन्त और महात्मा हुए। इसके बाद अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के राज्यकाल में साहित्य, संगीत, कला और धर्म, कर्म आदि की उन्नति हो सकी। उसी काल में वेदान्त और काव्य की रस धारा प्रवाहित करने में पण्डित जगन्नाथ तथा श्री अप्पय दीक्षित समर्थ हो सके।

श्री अप्पय दीक्षित एक प्रतिभाशाली विद्वान थे। वेदान्त को गौरवान्वित करने में आपकी प्रतिभा का बहुत उपयोग हुआ और वह पूर्णतः प्रस्फुटित हो चुकी थी। लेकिन उसका चहुँमुखी विकास हुआ। वेदान्त ही क्या, संस्कृत साहित्य का कोई भी अंग आपने अछूता न छोड़ा। आपने एक सौ आठ ग्रन्थों की रचना की। आपकी

सभी रचनाएँ विद्वत्ता, महत्ता और योग्यता की परिचायक हैं। रीति सम्बन्धी ग्रन्थों में आप का 'कुवलयानन्द' नामक ग्रन्थ इतना प्रसिद्ध हुआ कि आज भी संस्कृत के अध्ययनार्थियों को सर्वप्रथम उसी का अभ्यास कराया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि आप काव्य क्षेत्र में पण्डितराज जगन्नाथ के प्रतिद्वन्दी थे और यही कारण था कि आप के इस ग्रन्थ की, उन्होंने अपनी पुस्तक 'रसगगाधर' में निकट आलोचना की। किन्तु फिर भी उक्त ग्रंथ की लोकप्रियता में कोई अन्तर नहीं आ सका।

श्री अप्पय दीक्षित ने भगवान शिव की प्रशस्ति में जो छन्द रचे हैं, वे अमरछन्द कहे जा सकते हैं। वेदान्त पर आपने 'परिमल' नामक जो भाष्य लिखा है, वह युगों तक आपकी दार्शनिकता का परिचय देता रहेगा। इतना ही नहीं, तत्कालीन प्रचलित वेदान्त के चार मुख्य प्रकारों (वादों) द्वैत, विशिष्टाद्वैत, शिवाद्वैत और अद्वैत—की न्यायपूर्ण व्याख्या भी आपने "चतुर्मतसार संग्रह" (अर्थात न्यायमुक्तावली, न्यायमयूखमल्लिका, न्यायमणिमाला और न्यायमञ्जरी आदि चार पुस्तकों) में अत्यन्त निपुणतापूर्वक की है इस प्रकार आज भी आप पूजित और प्रशसित हैं, अपने जीवन काल में भी आप प्रतिष्ठा तथा यश का अर्जन कर सके। चारों ओर आप का सम्मान था। एक बार आप अपनी स्त्री के नैहर गए तो कई दिनों तक वहाँ की चर्चा का विषय आप ही बने रहे। 'महापण्डित दीक्षित पधार रहे हैं'—सब लोगों की जबान पर यही था और सब ने समुचित सम्मान दिया।

समय पाकर महापुरुषों के जीवन से अनेक चमत्कारिक घटनाएँ भी जुड़ जाती हैं। अप्पय दीक्षित भी भगवान शिव के

अवतार कहे जाते हैं। आप के सम्बन्ध में भी एक घटना प्रसिद्ध है। एक बार जब आप तिरुपति (दक्षिण भारत) के विष्णु मन्दिर में भगवान का दर्शन करने गए, तो शैव होने के कारण वैष्णव पुजारियों ने आपको मन्दिर में न घुसने दिया। प्रातःकाल जब मन्दिर के पट खुले तो महन्त और पुजारियों ने विस्मय-विमुग्ध और भयातुर होकर देखा कि विष्णुमूर्ति शिव-प्रतिमा में परिणत हो गई है। त्रस्त और आश्चर्य चकित महन्त ने अप्पय दीक्षित से क्षमा-याचना की तथा शिव-प्रतिमा को पुनः विष्णुमूर्ति में परिवर्तित कर देने की प्रार्थना भी की। श्री अप्पय दीक्षित के ही वंश में आगे चल कर १६वीं शताब्दी में एक बहुत बड़े विद्वान और सन्त ने जन्म लिया और जो श्री सुन्दरेश स्वामी के नाम से प्रख्यात हुए। उनका जीवन-काल सन् १८३१-१८८१ कहा जाता है। वे शिव जी के अनन्य भक्त थे। केवल २३ वर्ष की छोटी आयु में ही उन्होंने विद्वत् संन्यास ले लिया था और अपने संस्कृत ज्ञान द्वारा, जहाँ कहीं भी जाते, सूत संहिता पर भाषण देकर, नूतन रस की धारा प्रवाहित करते। अनन्त आभ्यन्तर आत्मानुभूति प्राप्त वे एक सिद्ध थे।

कुप्पूस्वामी के पिता

श्री सुन्दरेश स्वामी से भी पूर्व अप्पय दीक्षित की वंश परम्परा में कई महापुरुष पैदा हुए। इन्हीं के कुल में १८वीं शताब्दी में (अप्रसिद्ध किन्तु अवश्य उल्लेखनीय) श्री पी० एस० वेंगु अय्यर का जन्म हुआ। वेंगु अय्यर भी शिव जी के अनन्य भक्त, ज्ञानी और साधु प्रकृति के व्यक्ति थे। दक्षिण भारत के तामिलनाद

में तिरुनेलवली जंक्शन से पश्चिम की ओर, लगभग १० मील दूर पट्टामडाई नामक ग्राम अवस्थित है। पास ही शुभ्र सलिला ताम्रपर्णी कलकल नाद करती बहती रहती है। पट्टामडाई ग्राम कुंजों और लहलहाते धान के खेतों के मध्य रमणीक स्थली में बसा है। ग्राम के चारों ओर सुललित हार की भाँति ताम्रपर्णी से निकली नहर है। यह स्थान मनोहर और कलापूर्ण चटाइयों के लिए समस्त संसार में विख्यात है। यहीं श्री वेंगु अय्यर ने जन्म लिया था। आप ही के सुपुत्र श्री कुप्पुस्वामी आगे चल कर स्वामी शिवानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए।

श्री वेंगु अय्यर एट्टियापुरम् राज्य के तहसीलदार थे और अपने सुचरित्र के कारण सर्वत्र आदृत थे। मद्रास हाईकोर्ट के न्यायाधीश सर सुब्रह्मण्य अय्यर आपके सहपाठी थे और आपको बहुत सम्मान व आदर की दृष्टि से देखा करते थे। आपकी सच्चरित्रता, साधुता और सज्जनता के कारण एट्टियापुरम के राजा व उनकी प्रजा भी आपको श्रद्धेय मानती थी। जो व्यक्ति आप के सम्पर्क में आया, वह आपकी शालीनता से प्रभावित हुए बिना न रहा और सब के मुख से यही निकलता कि वेंगु अय्यर एक महान् पुरुष हैं। 'शिवोऽहम,' 'शिवोऽहम' का उच्चार करते आपकी आँखों से आनन्दाश्रु फूट पड़ते थे। आप के पितामह पट्टामडाई के बड़े जमींदार थे और सभी लोग उन्हें पन्नई मुन्नियर कहते थे। पन्नियर का अर्थ ही जमींदार या भूमिपति होता है। वेंगु अय्यर के भाई श्री अप्पय्य शिवम् संस्कृत के अच्छे विद्वान थे और उन्होंने संस्कृत में कई दार्शनिक पुस्तकें भी लिखीं। जीवन के पिछले दिनों में उन्होंने सन्यास ले लिया था। तिरुनेलवेली जिले में सर्वत्र उनका सम्मान था।

कुप्पूस्वामी का जन्म

पट्टामडाई ग्राम की स्थिति अयोध्या की भांति है। यहाँ अयोध्या और सरयू नदी है तो यहाँ पट्टामडाई के चारों ओर ताम्रपर्णी से निकली नहर 'कन्नडियंकल' है। ताम्रपर्णी दक्षिण भारत की पवित्र और प्रसिद्ध नदी है। इसीलिए वहाँ के लोग इसे 'दक्षिण गंगा' भी कहते हैं और गङ्गा की भाँति ही यह पावन और पुण्य समझी जाती है। वाल्मीकि रामायण में भी इस नदी का वर्णन आता है। यह नदी पहाड़ों की जिन तलहटियों में हो कर बहती है, उनमें ताँबे की खानें हैं और सम्भवतः इसी कारण इसका यह नाम पड़ा है। इस नदी का जल अत्यन्त स्वास्थ्यप्रद और पाचक है। पट्टामडाई ग्राम की यह विशेषता रही है कि यहाँ के प्रायः सभी लोग संगीतप्रेमी होते हैं और उच्च कोटि के गायक हैं। कालान्तर में भी यहाँ बहुत संगीतज्ञ हुए हैं। संस्कृतज्ञ स्व० श्री रामशेष अय्यर द्वारा स्थापित एक हाई स्कूल भी यहाँ है। मनोरम छटा से परिपूर्ण, प्रकृति की गोद में बसे हुए, इसी विशिष्ट गाँव—पट्टामडाई में श्री वेंगु अय्यर के घर बृहस्पतिवार, ८ सितम्बर १८८७ को, प्रातःकाल ४ बज कर १७ मिनट पर, कर्क लग्न और भरणी नक्षत्र में एक बालक ने पदार्पण किया था, जिसका नाम पी० वी० कुप्पूस्वामी अय्यर रक्खा गया। बड़ा हो कर यही बालक सन्यासाश्रम में दीक्षित होने पर 'स्वामी शिवानन्द' के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। कुप्पूस्वामी अपने माता-पिता की अंतिम सन्तान हैं। तामिल पचाग के अनुसार आपकी जन्मतिथि २४ अवनी सर्वजीत है। आप के दो बड़े भाई और थे। सब से बड़े भाई श्री पी० वी० वीर राघव अय्यर, एट्टियापुरम् के राजा के निजी मन्त्री तथा दूसरे श्री पी० वी० सीताराम अय्यर, डाकखाने के इन्सपेक्टर थे। आपकी माता श्रीमती पार्वती अम्मल

धर्मपरायणा और पतिव्रता महिला थीं। प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार होने के कारण उनके घर में ईश-प्रेम बरसता था। सभी लोग भगवद्भक्त थे।

बाल्यकाल और शिक्षा-दीक्षा

प्रकृति नदी की गोद और माता पिता के स्नेहिल वातावरण में बालक कुप्पुस्वामी का विकास हुआ। बचपन से ही आपके मन पर संस्कारों ने अपना आधिपत्य जमा लिया। और सच भी है, बच्चा अनुकरणप्रिय होता है। वह अपने जीवन की आधार-शिला माता और पिता के जीवन को देख कर, स्थापित करता है। बालक कुप्पूस्वामी ने प्रकृति से स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ा और पिता-माता से ईश्वर-परायणता और सच्चरित्रता का। आपके जीवन में दृढ़ता और विश्वास का समन्वय स्थिर हुआ। परिवार में सम्पदा और शक्ति का केन्द्र था; अभाव और चिन्ता का आभास भी न था। इसीलिए बालक कुप्पूस्वामी तीक्ष्ण-बुद्धि, चुस्त और हृष्ट-पुष्ट होने के साथ-साथ परले दर्जे का शरारती भी था। अपनी मातृभूमि की परम्परानुसार उसे मधुर कण्ठ और संगीतप्रेम भी मिला था।

बुद्धि तो तीक्ष्ण थी ही, दिमाग खूब चलता था, साथ ही शिक्षा प्राप्त करने की अभिलाषा थी, ज्ञान प्राप्त करने की भूख थी और यही कारण है कि कुप्पूस्वामी सब प्रकार के खेलों में प्रमुख भाग लेता, जब कभी गायन होता तो उस में भी पहले उपस्थित रहता तथा सर्वोपरि कक्षा में सदैव सब से उच्च रहता। इसीलिए वह अपने आचरण द्वारा शिक्षक तथा सहपाठी छात्रों, सभी का प्रेम-पात्र बन

गया था। परीक्षा में उसे सर्वोच्च स्थान मिला और अपनी योग्यता के कारण स्कूल में अनेक पुरस्कार भी उसे मिलते। सन् १९०१ की बात है। मद्रास के तत्कालीन अंग्रेज राज्यपाल लार्ड आर्मपिल गुरुमलई पहाड़ियों पर शिकार के लिए आ रहे थे। उनके अभिनन्दन में, सारे स्कूल की ओर से, कविता-पाठ करने को १४ वर्षीय कुप्पूस्वामी को ही चुना गया, तथा उसने कुमारपुरम स्टेशन के प्लेटफार्म पर अंगरेजी में कविता-पाठ द्वारा सब को मन्त्रमुग्ध कर दिया। एट्टियापुरम् के राजा स्कूल से १९०३ ई० में उसने मैट्रिक की परीक्षा पास की। उस वर्ष उक्त स्कूल से बैठने वाले ११ परीक्षार्थियों में केवल वही पास हुआ। युवक कुप्पूस्वामी को उच्चशिक्षा के लिए तिरुनलवेली भेजा गया और उसने एस० पी० जी० कॉलेज में नाम लिखाया। उस समय पादरी पेकनहेम वाल्स वहाँ के प्रिंसीपल थे। यद्यपि धार्मिक शिक्षा वहाँ अनिवार्य न थी, वहाँ रह कर आपने ईसाई धर्म के सिद्धान्तों का विधिवत अध्ययन किया और हिन्दू धर्म पर भी दृढ़ रहे। बाइबिल के अध्ययन से ईश्वर की एकाकारता में आपका विश्वास और भी दृढ़ हो चला। ईसाई मिशनरियों के सम्पर्क से आप ने सहिष्णुता, सद्भावना और मानव-सेवा का पाठ पढ़ा। दो साल में आपने 'इण्टर आर्ट्स' (द्वितीय वर्ष कला) परीक्षा पास कर ली। सन् १९०५ में ही आपने मदुरा के तामिल संघ द्वारा संचालित— तामिल परीक्षा भी योग्यतापूर्वक पास कर ली। कॉलेज में पढ़ते हुए विभिन्न प्रकार के खेलों में आपने काफी भाग लिया। शारीरिक शिक्षण पर भी ध्यान दिया। भाषण प्रतियोगिता में भी आपकी अभिरुचि अत्यधिक थी और इसी कारण बाद में आप एक सफल वक्ता बन सके। कॉलेज में एक बार शेक्सपियर का नाटक "अर्द्धरात्रि का स्वप्न" खेला गया। अपने शारीरिक सौन्दर्य के कारण आपको एथेन्स की

हेलेना' का पार्ट मिला, जिसे आपने योग्यतापूर्वक अभिनीत किया। उस रात्रि के सर्वश्रेष्ठ, सफल अभिनेता आप ही रहे। जीवन के सभी क्षेत्रों में योग्यता का प्रदर्शन महापुरुषों की प्रतिभा प्रकट करता है।

इण्टर तो आपने पास कर लिया किन्तु अब डाक्टरी पढ़ने का विचार मन में आया। बहुत सम्भव है, आप में विद्यमान सेवा-भावना का बीज प्रस्फुटित हुआ हो और आप ने यह सोचा होगा कि डाक्टर बन कर जनता जनार्दन की अधिक सेवा की जा सकेगी। आपका मन सेवा साधना में लग चुका था। इन्हीं दिनों आप के पिता जी इस लोक से उठ गए और आप बड़े भाई के साथ रह कर ही (त्रिचनापली में) डाक्टरी का ज्ञान प्राप्त करने में लग गए। किसी भी कार्य में सफलता के लिए दृढ़ता के साथ-साथ, उस कार्य को पूरा करने की प्रबलेच्छा भी आवश्यक होती है। डाक्टर बनने की आपकी आकांक्षा दृढ़ थी और आपने डाक्टरी के प्रत्येक विभाग का विधिवत अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। डाक्टरी के होशियार छात्रों में आपकी गणना होगई। औषध व शल्य चिकित्सा दोनों में ही आप ने निपुणता प्राप्त की तथा एम० बी० बी० एस० की उपाधि ग्रहण की।

डा० कुप्पूस्वामी पत्र सम्पादक बने
"अम्ब्रोसिया" का प्रकाशन

श्री कुप्पूस्वामी न केवल अब एक डाक्टर बन गए थे अब न एक अच्छे ड्रामिस्ट, योग्य लेखक और प्रवीण पत्रकार भी थे। मिशिनरी महाविद्यालय में पढ़ते हुए ही आपने गीत रचने की योग्यता प्राप्त कर ली थी। कण्ठ तो मधुर था ही, आप एक अच्छे गायक बन गये और हार्मोनियम बजाने में भी काफी कुशल

हो गये थे । आपने त्रिचनापली में रह कर ही चिकित्सा-कार्य प्रारम्भ कर दिया तथा जन-स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए एक डाक्टरी-मासिक पत्र "अम्ब्रोसिया" (The Ambrosia) का सम्पादन प्रकाशन भी ३ वर्ष तक किया ।

'अम्ब्रोसिया' का प्रथम अङ्क सितम्बर १९१० में प्रकाशित हुआ था । यह पुस्तकाकार, डेमी साइज में, लगभग ३५ पृष्ठों का निकलता था (कुछेक पृष्ठों में औषधियों के विज्ञापन रहते थे) और वार्षिक मूल्य ३) रु० तथा छात्रों के लिए २) रु० था । पत्र की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए, लिखा जा सकता है कि भारत में प्रकाशित यह अपने विषय का एकमात्र पत्र था । यह जनता की दृष्टि से छपता था, इसलिए डाक्टरी के पारिभाषिक शब्दों को प्रधानता न देकर जनता में सुविधापूर्वक समझे जाने वाले लेख रहते थे । रोगों आदि के नाम व लक्षण तामिल भाषा में भी रहते थे । सभी प्रकार के चिकित्सा सम्बन्धी लेखों (यथा-आयुर्वेदिक, होमियोपैथिक, ऐलोपैथिक) का इसमें समावेश था । अनुभूत नुस्खे भी इस में दिये जाते थे । इस पत्र के प्रथम १२ अङ्क देखकर यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि इस की सामग्री बहुत ठोक-बजाकर दी गई है तथा इसके प्राप्त करने में परिश्रम किया गया है । पत्र-व्यवहार का स्तम्भ भी है । डा० कृष्ण-स्वामी की सम्पादन-कुशलता पर इस मासिक के अङ्क काफी प्रकाश डालते हैं । उनका प्रयत्न यही रहा कि रोगों का जड़ोन्मूलन किया जाय । इस परिश्रम से यह भी प्रमाणित होता है कि उस समय भी आप का अंग्रेजी भाषा पर असाधारण अधिकार था ।

डा० कुप्पूस्वामी अय्यर ने त्रिचनापली में रहकर डाक्टरी की कई पुस्तकें भी प्रकाशित कीं, जैसे—"घरेलू औषधियाँ" (Household Remedies), "फल और स्वास्थ्य" (Fruits and Health), "रोग और उनके तामिल पारिभाषिक" (Diseases and their Tamil terms), "जन-स्वास्थ्य पर चौदह भाषण" (Fourteen Lectures on Public Health) इत्यादि। चिकित्सा विज्ञान की सभी शाखाओं का आपने पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया और अब जीवन-निर्माण के लिए, अपने वास्ते कोई कार्य विशेष निर्धारित करना चाहते थे और सुअवसर पाकर भारत से मलाया चले गए। आपने अपनी योग्यता द्वारा निम्न सम्मान भी प्राप्त किए थे: जन-स्वास्थ्य शिक्षणालय की सदस्यता–M. R. I. P.H. (Member of the Royal Institute of Public Health), रॉयल एशियाटिक सोसायटी क सदस्यता–M. R. A. S. (Member of the Royal Asiatic Society London), स्वच्छता शिक्षणालय के सहायक–A. R. Sa. L. (Associate of the Royal Sanitary Institute, London) आदि। उपर्युक्त चिकित्सा और विशेषकर नेत्र सम्बन्धी रोगों को अच्छा करने में कुप्पूस्वामी ने चिकित्सक की हैसियत से बहुत नाम और यश कमाया था।

द्वितीय अध्याय

मलाया का एक डाक्टर

डा० कुप्पूस्वामी मलाया आगए

महत्वाकांक्षा का जीवन में उच्च स्थान है। यदि जीवन में महत्वाकांक्षा न हो तो आगे बढ़ने का प्रयास ही क्योंकर होगा। उस के बिना संसार में न तो आगे बढ़ा जा सकता है और न सन्तोष का भी उचित स्थान है, किन्तु संतोष शब्द का अर्थ हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने का नहीं। डा० कुप्पुस्वामी अत्यन्त महत्वाकांक्षी व्यक्ति थे।

एक बहुत योग्य डाक्टर बनने की उत्कट अभिलाषा आपके मन में विद्यमान थी और सन् १९१३ में यह डाक्टर मलाया के लिए चल पड़ा। वय केवल २५ वर्ष थी, अनुभव भी विशेष न था। किन्तु एक प्रबलेच्छा थी और यही कारण है कि उस पेशे में आनन्द आता था।

सधाय-मलाया-राज्य में, सेम्री सेम्बिलान नामक स्थान स्थित (मार्ग पर बने) एक सुप्रसिद्ध अस्पताल में, आपने सात वर्ष तक प्रधान चिकित्सक का कार्य किया। और वह जीवन कितना व्यस्त था। अभी एक मरीज का दाँत उखाड़ा जा रहा है, तो थोड़ी देर बाद एक के आँख में दवाई डाली जा रही है। औषधि और शल्य चिकित्सा दोनों का ही प्रयोग किया जा रहा है। कोई भी रोगी बिना दवाई लिए वापिस लौटने न पावे, 'आवश्यक औजार नहीं हैं' यह कह कर किसी को भी निराश करने के पक्ष में आप न थे। अपनी योग्यता और चतुराई के कारण अब मलाया में आपका नाम हो गया था। यश के साथ-साथ धन भी खिंचा चला आया। लेकिन सुख क्या धन में है? क्या स्थावर सम्पत्ति, बैङ्क में जमा किया गया धन, विशाल भवन, सेवा के लिए अनेक नौकर-चाकर, सुख के पथ की ओर ले जा सकते हैं? सुख के लिए धन कमाया जाता है। यही विचार प्रारम्भ में डा० कुप्पुस्वामी के थे और सम्भवतः इसी कारण वे मातृभूमि से इतनी दूर चले आए थे, किन्तु इन में स्थायित्व न था। अब वह 'गरीबों के डाक्टर' बन गए थे।

सन् १९२० में डाक्टर कुप्पुस्वामी सिंगापुर के पास स्थित 'जोहर बाहरु' नामक स्थान में चले आए। वहाँ आप को अपने पेशे में कुशल डाक्टरों पार्सन, ग्रीन, गार्लिक और ग्लेनी का सम्पर्क प्राप्त

हुआ । कैसा भी रोगी क्यों न हो, डा० कुप्पूस्वामी हृदय का सारा उत्साह उड़ेल कर उसका इलाज करते । रोग के बारे में विचार करने आवश्यकता होती तो पुस्तक पढ़ते या अन्य सहयोगियों से विचार-विमर्श करते तथा जब तक रोगी ठीक न हो जाता उन्हें विश्राम न था ।

डा० कुप्पूस्वामी ने अपनी योग्यता, कुशलता, निपुणता और दक्षता के कारण कुछ ही समय में वहाँ भी अपना स्थान बना लिया था । अब आप का ध्यान पैसा कमाने की ओर कम तथा मरीज को स्वस्थ करने की ओर अधिक रहता । कितने ही रोगियों को अपने प्रेमपूर्ण व्यवहार से आप चंगा कर देते । कितने ही रोगी, जिन्हें बड़े डाक्टरों ने असाध्य कहकर जवाब दे दिया, डा० कुप्पूस्वामी के पास आकर ठीक हो जाते । आपका प्रेम-पूर्ण व्यवहार, सेवा शुश्रुषा, रोगियों की स्वयं देख-भाल आदि कई बातें मरीज पर मनोवैज्ञानिक असर डालती थीं और आपके हाथ का स्पर्श मानो जादू का कार्य करता था । अपने आत्म-विश्वास के जरिए रोगियों की भावना-शक्ति को परिपुष्ट करना आप के ही वश की बात थी । आपकी सेवा भावना ही चिकित्सा पद्धति का रहस्य थी, जिसके अभाव में अधिक पढ़े लिखे, अधिक योग्य डाक्टर भी प्राय: असफल रहते ।

डा० कुप्पूस्वामी ने पत्रकारिता का अभ्यास पहले किया था । मलाया में आकर आप की इस वृत्ति को भी प्रोत्साहन मिला । आप में एक विशिष्ट पत्रकार के सभी गुण थे । आप 'मलाया ट्रिब्यून' आदि कई पत्र मंगाते थे, किन्तु समार की प्रतिदिन की घटनाओं अथवा राजनीति के प्रति दिलचस्पी न थी और इधर आप अखबारों के द्वारा क्रिकेट, फुटबाल आदि विविध खेलों के प्रति आकृष्ट हुए ।

प्रारम्भ में इस विषय की अधिक जानकारी न थी, तथापि अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के कारण इन खेलों के सम्बन्ध में आप अच्छे अच्छे लेख लिखने लगे। पीछे आपने प्रत्यक्ष खेल देख कर तथा पुस्तकों द्वारा इस विषय का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया और नियमित रूप से 'मलाया ट्रिब्यून' के खेल-तमाशा विभाग के संवाददाता और सम्पादक भी हो गए।

प्रायः दैनिक कार्य व्यवहार में हम देखते हैं कि बड़े बड़े अफसर अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ शुष्क-व्यवहार करते हैं और उन पर बिना कारण ही रोब डालते हैं। ऐसे लोगों के प्रति उनके सहकारियों में श्रद्धा कैसे हो सकती है? मलाया में अस्पतालों में नीचा कार्य करने वाले अधिकांशत बर्मी या चीनी लोग ही थे। जब कभी उन्हें किसी अफसर से भला-बुरा सुनने को मिलता तो वे झट नौकरी छोड देने को उद्यत रहते, क्योंकि कहीं भी रह कर वे उतना कमा सकते थे। सिविल सर्जन या डाक्टरों के शुष्क एवं अशोभ्य व्यवहारों से छोटे-छोटे कर्मचारियों को काम छोड़ देना पड़ता था। परन्तु डा० कुप्पूस्वामी के व्यवहार से सब सतुष्ट थे और उनके वहाँ रहते, ऐसा क्योंकर हो सकता था। वे अपने शिष्ट और सुव्यवहार से कर्मचारियों को भी प्रसन्न कर पकड़ लाते थे और बडे अफसरों को भी समझा बुझाकर ठीक कर लिया करते। मानवमात्र से प्रेम करने का बीज अकुरित हो उठा था और यह उसकी शुरूआत थी।

कुप्पूस्वामी की डाक्टरी का आदर्श सेवा था

चिकित्सा के साथ सेवा और सद्भावना का सम्मिश्रण करने

म कुप्पुस्वामी को अभूतपूर्व सफलता मिली। आप अपने अधीना पे भी मित्र और मुहिलों में उनके सहायक थे। जिनसे कोई परिचय नहीं, उनके लिए भी आप सहायक और मित्र की तरह अवलम्ब थे। चिकित्सा करते हुए जातिगत भेद भाव और ऊँच-नीच के विनाशकारी व्याप को मिटा देने में आप समर्थ हो सके। आप एक विचित्र ही प्रकार के डाक्टर थे। रोगों का इलाज भी करते और सेवा भी। यदि पथ्य के लिए उसके पास कुछ न होता तो पैसे से भी मदद करते। निर्धन रोगियों के लिए उनके घर का द्वार खुला था, स्वस्थ होने तक उसका परिचर्या का भार भी आप वहन करते और लौटते हुए अपनी जब से खर्च करके कुछ उपहार भी भेंट करते। अत्यन्त मरीजों की सेवा में आप को आनन्द आता था और उनका विशेष ध्यान रखते, बिस्तर साफ करते, असहायावस्था में प्रसन्नतापूर्वक मलादि को भी साफ कर देते।

कुप्पुस्वामी की डाक्टरी का चरम लक्ष्य सेवा था। अपने शरीर, शक्ति और कुशलता में अब अहम् भावना न था वे दूसरों के लिए प्रस्तुत थे। एक बार की घटना है कि एक 'परिहा' (अछूत) स्त्री के बच्चा होने वाला था। उसका अपना कहने को कोई न था और नहीं कोई सहायक था। यह युवक ब्राह्मण डाक्टर सेवा के लिए वहाँ पहुंच गया। और इस प्रकार परिचर्या की मानो वह उसकी सगी बहिन हो। रात भर जागता रहा और यथासम्भव सभी सुविधाएँ प्रस्तुत कर दी। उस स्त्री की कुटिया के द्वार पर, जमीन पर लेटे-लेटे रात काट दी। जब कार्य सम्पन्न हो चुका, तब ही घर लौटे और आगे का क्रम निश्चित किया। इस प्रकार आप में दर्द को मिटाने, दुःख को दूर करने, अन्यों को आराम पहुंचाने तथा सब को मित्रवत्

समझने की उत्कट भावना दृढ हो चुकी थी और उसकी पूर्ति के लिए पतिङ्गे की भांति मर-मिटने का अमित साहस एकत्रित कर लिया था।

एक दिन एक अपरिचित डा० कुप्पूस्वामी के मकान में घुसा। डाक्टर को नमस्कार कर उसने विनती की—"महाराज, मैं इस समय बहुत बड़ी विपत्ति मे फँसा हू और ५००) रु० न मिलने से मेरी इज्जत नष्ट हो जायगी। मैं आप को छोड़ कर किसके पास जाऊँ; कहीं भी कोई मुझे अपना सहायक या शुभचिंतक दिखाई नहीं देता" डाक्टर ने अपनी पास-बुक देखी, किन्तु जितना उसे चाहिए,उतना वहाँ न था। कुछ क्षण हतबुद्धि वे खड़े रहे किन्तु शीघ्र ही चेहरा प्रफुल्लित हो उठा। उसे बैठाया और घर की कोई वस्तु गिरवी रखकर वह धन उसे दे दिया। सेवा-भावना की ये कथाएँ, सत्य और अनेक, घर घर मे फैल गई। आपकी इस मानवता का आधार, अब कर्तव्य का भावनामात्र न रह कर, आध्यात्मिकता का चमत्कार था; जिसकी उत्पत्ति भक्ति के द्वारा प्राप्त वह अनुभूति थी, जब प्रत्येक में भगवान का अंश (या आगे बढकर प्रतिरूप) भासित होने लगता है।

कुप्पूस्वामी आध्यात्मिकता के सागर में डूब गया

डा० कुप्पूस्वामी में चिकित्सक बनने की प्रेरणा देकर भगवान ने आपको सेवा का मर्म सिखाया था और सेवा-भाव को अग्रसर होने में सहायता दी थी। प्राणियों की सेवा और सहायता छोड़ कर, वहाँ न कोई भाव था, न अन्य कोई कार्य। 'स्व' नाम की

कोई वस्तु यहाँ न थी, जो कुछ था, सब भगवान था। अब प्रायः आप भक्ति में तल्लीन हो जाते और आनन्द विभोर होकर मन मयूर नाच उठता। संगीत प्रेम तो था ही, आप शुरू से ही बहुत अच्छा और मधुर गायन करते थे। अब भगवान के भजन और विनय के पद ही अधिकतर गाये जाते। भक्ति का यह रंग दिन प्रतिदिन गाढ़ा होता गया और अपने भक्तों की कथाओं को पढ़ा तथा दिन रात उन्हीं की तरह मस्ती में झूमने लगे। डा० कुप्पुस्वामी अस्पताल में लौटे हैं। आस-पास के बालक और किशोर उनके घर जमा होगए और बड़े प्रेम से कीर्तन हो रहा है। मीरा का माधुर्य, सूर का सम्बल, तुकाराम का तथ्य और चैतन्य की चेतना लेकर, एक नूतन तन्मयता का विकास हुआ, जो भगवान के दिव्य वरदान में कुप्पुस्वामी के हाथ लगी।

डा० कुप्पुस्वामी मलाया के प्रतिष्ठित डाक्टर हैं और किसी पार्टी में उन्हें निमन्त्रित किया गया है। लोग रासरंग की तैयारी में हैं कि इधर डाक्टर का कीर्तन प्रारम्भ हो गया है। और सब लोग उधर आकृष्ट हो गए। करताल पर उनके कर बज उठे, मधुर स्वर मुख से गूँज उठा। कीर्तन का समाँ बँध गया। एक दृश्य इससे भी बढ़ कर। शहर में कहीं पार्टी है, डाक्टर को जान बूझकर या भूल से आमन्त्रित नहीं किया गया, पर डाक्टर प्रतिष्ठा ('प्रेस्टिज') के प्रश्नों में नहीं पड़ते। पता लगते ही, उचित समय पर, बाल-गोपाल के साथ आप पार्टी में पहुँच जाते हैं—"कोई बात नहीं, आप मुझे निमंत्रण देना भूल गये। मैं तो आपका ही हूँ। आइये, थोड़ी देर भगवान का स्मरण करें"। कह कर कीर्तन प्रारम्भ हो जाता है। सब भक्ति के नशे में झूम जाते हैं।

डा० कुप्पूस्वामी के जीवन की एक विशेषता थी । श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने उसको निम्न शब्दों में प्रकट किया है चिकित्सक के जीवन की व्यस्तता में भी उनके पास एकान्त था एकान्त का उपयोग ही जीवन के विकास की सब से प्रधान कुंजी है। उन के पास धन था, तरूणाई से उभरी देह थी, स्वच्छन्द वातावरण था और था प्रतिष्ठित व्यक्तित्व । उनकी दृढता में दुर्ग में निर्बलता का एक भी छिद्र होता, तो वे बह जाते—बहाने वाले प्रवाहों के बीच ही तो वे तैर रहे थे । दैव की कृपा थी, सत्कारों का बल था । उनका एकान्त सगीत से भर गया, पर सगीत-सरिता के भी तो दो तट हैं? एक विनाशी विलास के वैभव से मण्डित और दूसरा भक्ति की भावना से अनुरंजित । उनकी आँखें खुली थीं और उनके पैरों का निर्माण स्थिरता के प्रतीक अ गद की पिण्डलिया के भग्नावशेष से हुआ था वे अपने ही तट चले । सच यह है कि विचलित होने को वे जन्मे ही न थे

सगीत जीवन के पथ म कीर्तन का वाहन बन अग्रसर हुआ । कीर्तन ने भक्ति की तन्मयता को जन्म दिया और इस तन्मयता के ही आगन म उस वैराग्य की सृष्टि हुई, जो महान् डाक्टर कुप्पूस्वामी को महान् महात्मा श्री शिवानन्द के रूप म परिणत कर सका ।

तृतीय अध्याय

कुप्पूस्वामी संन्यासी बन गया

मलाया से फिर भारत को

डा० कुप्पूस्वामी के जीवन में सेवा का स्रोत उमड़ा था। मानव-मात्र में आपने प्रभु के दर्शन आरम्भ कर दिये। प्रभु-भक्ति की धारा अप्रतिहत गति से प्रवाहित हो चली थी। आप की स्थिति और विचारधारा में निरंतर परिवर्तन होता चला गया। डाक्टर की प्रतिष्ठा का प्रश्न तो पहले ही समाप्त हो चला था।

संसार के सभी पदार्थ अब सारहीन और क्षणिक दिखाई देने लगे। उनके प्रति न अब कोई आकर्षण रहा और न किसी प्रकार का मोह। चारों ओर शिव के अतिरिक्त और कोई चीज दिखाई ही न देती थी। आप बहुत आह्लाद, प्रेम और भक्ति के आवेश में 'ॐ नमः शिवाय' की रट लगाने लगे। संगीत साथियों ने अब आप के मस्तिष्क की वृत्ति खराब होने का आरोप लगाया। किसी ने कहा पागलपन की धुन सवार हो गई है। आपने नौकरी से स्तीफा दे दिया। कौन जानता था कि वे क्षण आपके जीवन के मोड़ होंगे, रोगियों का यह चिकित्सक आगे चलकर समाज के राजरोग का चिकित्सक होगा।

डाक्टर के मित्रों और हितैषियों को इस आकस्मिक परिवर्तन पर क्षोभ और आश्चर्य हुआ। कुटुम्बियों ने अपने सांसारिक मापदण्ड से उन्होंने डाक्टर के जीवन को नापा और उसे दुःखमय पाया तथा अपने सारे स्नेह-सम्बन्ध को एकत्र कर समझाने की चेष्टा की, अपनी समझ से श्रेष्ठ मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया, किन्तु सारे उद्योग व्यर्थ गए। डाक्टर के भीतर आत्म जिज्ञासा का भाव पैदा होगया था और वे उसके शमन में असफल रहे। लगभग १० वर्ष मलाया में रह कर १९२३ ई० में गृहस्थी का थोड़ा सा सामान लेकर जहाज से मद्रास उतरे। शेष चीजें तो वहीं सिंगापुर में छूट गई थीं। वह बचा हुआ सामान लेकर अपने एक मित्र के यहाँ पहुँचे, किन्तु वह घर पर न था। ठेले वाले से सामान अन्दर रखवा कर आपने बाहर से ही गृहिणी से कहा, "कह देना कि अमुक व्यक्ति अपना सामान रख कर गए हैं।" आप रास्ते में सोचते जाते थे कि कोई मिल जाय

जो मित्र के नाम सन्देश छोड़ जाऊँ। भगवान की प्रेरणा! मित्र स्वयं आ पहुँचे। उनसे मिल कर आप को अत्यन्त प्रसन्नता हुई तथा यह कह कर 'सारा सामान अपने पास रखें, जरूरत पड़ने पर लिखूँगा' अविश्रान्त भाव से भगवदिच्छा पर भ्रमण करने निकल पड़े। मित्र को लिखने की फिर उन्होंने जरूरत ही न समझी; यह सामान उनके अर्पण हो चुका था।

मलाया और सिंगापुर में रहते हुए डा० कुप्पुस्वामी को साधु-महात्माओं और सन्यासियों के सत्संग का अवसर मिला था। यही कारण है कि भारत से उस देश में जाने वाले अधिकांश लोगों की भांति आपने भोग विलास में विश्रान्ति और मनोरंजन नहीं पाया। आपका मनोरंजन था—दीन दुखियों की सेवा, अध्यात्म-योग-वेदान्त की पुस्तकों का अध्ययन तथा संन्यासियों का सत्संग और उनकी परिचर्या। जब कभी कोई सन्यासी आप के स्थान के पास से गुजरता, आप तुरन्त पहुंच कर घर लिवा लाते तथा सत्संग लाभ करते और जाते हुए रेल-भाड़ा व उपहार देकर विदा करते। पुनः भारत में लौट कर आप की यह इच्छा हुई कि किसी योग्य सन्यासी का सम्पर्क मिले। आप के पास कुछ रुपये बचे थे और मद्रास से सीधा बनारस का टिकट कटाया। कई दिन वहाँ ठहर कर काशी विश्वनाथ के दर्शन किये और अपने को कृतार्थ माना। एक मन्दिर को वहाँ मस्जिद में परिणत कर दिया था। डाक्टर ने यहाँ भगवान की एकाकारता के दर्शन किए। 'मन्दिर में तू है, मस्जिद में तू ही है, हर जगह तू ही तू है।'

कष्ट से ही सहिष्णुता का आविर्भाव हुआ है, ममता के त्याग से ही असली आनन्द की प्राप्ति होती है, काम व भोग से विमुख होने पर ही स्थायी शान्ति हाथ लगती है। डाक्टर काशी से चल कर नासिक और फिर वहाँ से पूना पहुँचे। पैसे तो पास म थे नहीं, यदि किसी ने टिकट कटा दिया तो ठीक अन्यथ, उसकी भी परवाह न थी। किसी ने उतार दिया तो भी ठीक, उसकी चिंता भी न थी। आप आगे बढ़ते जाते थे। 'चल चल रे नौजवान! रुकना तेरा काम नहीं, चलना तेरी शान।' गति ही जीवन है और अकर्मण्यता मृत्यु। आपने अपना जीवन गतिमय बना लिया था। पूना से ७० मील पैदल चल कर पण्ढरपुर पहुँचे। पूना से आप को लोकमान्य तिलक क गीता ज्ञान, महात्मा गोखले की देशभक्ति, तैलङ्ग की सेवा भावना का सन्देश मिला और आपने सोचा कि कर्मकाण्ड की महत्ता भक्ति या ज्ञान मे किसी कदर कम नहीं है। तीर्थस्थान पण्ढरपुर से चल कर आप खेडगाँव पहुँचे और दो दिन तक योगिराज नारायण महाराज के आश्रम में रहकर, आगे धालज म रुके।

ऋषिकेश का पता मिला

निर्मल जलवाहिनी, टेढ़ी मेढ़ी चाल से, कल-कल नाद कर के बहने वाली चन्द्रभागा एक छोटी नदी है। इसी के किनारे धालज का छोटा सा कस्बा बसा हुआ है। सुहावना और मनोमोहक स्थान है। जब कुप्पुस्वामी वहाँ पहुँचे, दिनकर अस्ताचलगामी हो चुका था। निर्मल नभ मे एक एक करके तारे निकलते आ रहे थे, सर्वत्र शान्ति थी मन्द पवन मन्थर

गी ने यह रहा था। डाक्टर को उस वातावरण में अपूर्व चेतना मिली, एक स्थान पर बैठ गए और यहाँ प्रकृति के सौन्दर्य का पान किया। विचार आया कि क्या ही अच्छा होता यहाँ रहकर भगवान चिंतन का अवसर मिल सकता। "अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥" जिसने सबकी भगवान के हाथ छोड़ दी है, उसको फिर डर किस बात का? जो भक्त अनन्य भाव से प्रभु को भजता है, उसकी सब से अधिक चिन्ता उसी को रहती है और वह सब प्रकार की व्यवस्था करता है। बालक का वृद्ध पोस्टमास्टर उस एकान्त स्थान में पहुँच गया, जहाँ कुप्पूस्वामी बैठा था, (यद्यपि रात काफी ढल चुकी थी) और अपने घर ले आया।

वृद्ध पोस्टमास्टर धर्मात्मा और भक्त पुरुष था तथा उसका और कोई न था। उनके अनुरोध पर डाक्टर चार मास बालक में रहा। वहाँ रहकर आपने भगवन्नाम कीर्तन और साधना में काफी समय लगाया। पोस्टमास्टर का गृहकार्य (भोजन बनाने, कुएँ से पानी लाने तथा अन्य प्रकार में) में सहयोग भी मिला और सत्संग का अवसर भी। उस कस्बे के बच्चे, बूढ़े, अधेड़, युवक, स्त्री-पुरुष सभी डाक्टर की सेवाओं व सहायता के कारण कृतज्ञ थे। देहाती डाक का हरकारा सुबह को गया शाम को कई मील का चक्कर लगाकर जब लौटता तो डाक्टर उसके थक कर सो जाने पर पैर दबाते तथा भोजन व पानी की सुविधा का ध्यान रखते। उसको कष्ट में देखकर डाक्टर के हृदय में करुणा उमड़ पड़ती और उसके मना करने पर भी आप न मानते। चार मास बाद किसी शान्त और एकान्त स्थान में रहकर तपस्या

करने की आप की इच्छा हुई। सच्चा परमात्मा ने आप को कल्याण का मार्ग बता दिया और मार्ग व्यय के लिए २५) रु० भी दिये।

कुप्पूस्वामी अब 'स्वामी शिवानन्द सरस्वती' बने

मई सन् १९२४ की ८ तारीख थी। उसी दिन आज से डा० कुप्पूस्वामी पहले पहल ऋषिकेश पहुँचे। यहाँ के एकान्त शान्त वातावरण ने आपके चित्त को प्रसन्न कर दिया। एक दिन सदा की भांति जब आप गंगास्नान को गए तो एक परम तेजस्वी संन्यासी आपके दृष्टिगत हुए। उनके ओज और आकर्षक व्यक्तित्व ने डाक्टर को मोह लिया। मन ही मन आपने उनका शिष्यत्व ग्रहण करने का विचार कर लिया। वह परम तेजस्वी संन्यासी बनारस के शृंगेरी मठ के परमहंस स्वामी विश्वानन्द थे। उनके मन में भी डाक्टर को देखकर यह स्फुरणा हुई कि इस व्यक्ति को संन्यासाश्रम में दीक्षित कर लिया जाय और इसी लिए उन्होंने पास बुलाकर अपना मन्तव्य प्रकट किया। लीला के अन्तर्यामी की यह आज्ञा थी। १ जून १९२४ को शाम समारोह हुआ तथा गृहस्थ के वस्त्रों को त्याग कर भक्ति के पीछे चलाने डा० कुप्पूस्वामी ने संन्यासियों के गैरिक वस्त्र धारण कर लिए और गुरु ने आपका नाम 'स्वामी शिवानन्द सरस्वती' रखा तथा तत्त्वमसि का उपदेश दिया। काम, क्रोध, मोह और आसक्ति का परित्याग करने के लिए संन्यास की व्यवस्था की गई। महर्षि याज्ञवल्क्य स्वामी तोता पुरी से [illegible] लेकर संन्यासी बने थे। शङ्कराचार्य से शास्त्रार्थ

करने वाले दिग्गज पंडित मण्डन मिश्र संन्यास लेकर सुरेश्वराचार्य कहलाये। उन्हीं की परम्परा में स्वामी विश्वानन्द जी संन्यासी हुए, जिनसे संन्यास दीक्षा लेकर 'स्वामी शिवानन्द सरस्वती' आज प्रकाश-पुञ्ज रूप हमारे मध्य विराजमान हैं।

गुरु परम्परा

सत्-युग : ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र

त्रेता युग : वशिष्ठ, शक्ति, पराशर

द्वापर युग : व्यास, शुकदेव

कलि-युग : गोविन्द, शङ्कराचार्य

पद्मपाद | सुरेश्वराचार्य | हस्तामलक | तोटकाचार्य

(शृंगेरी मठ)

|

स्वामी विश्वानन्द सरस्वती

|

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

(आनन्द कुटीर)

चतुर्थ अध्याय

आनन्द-कुटीर का सन्त

डाक्टर सन्यासी की भूख बढ चली

संन्यास दीक्षा देकर गुरुदेव श्री विश्वानन्द जी सरस्वती तो बनारस लौट गए, लेकिन स्वामी शिवानन्द जी उनकी आज्ञा लेकर यहीं रह गए। आप के मन में यह भावना दृढ हो चली कि यत्र-तत्र विचरण करने में क्या रखा है घोर तपस्या में क्या नहीं लीन हो जाते? अपने अनुभव और ज्ञान से संसार को प्रकाश दो, भूले भटकों को रास्ता

की स्थापना की और इस के द्वारा एक वर्ष तक साधु सन्यासियों, मर्मारस्थ प्रेम ग्रामियों की सेवा में संलग्न रहे। उक्त स्थान पर आज भी यह औषधालय चल रहा है। अब चारों ओर 'डाक्टर सन्यासी' के नाम से आप प्रख्यात हो चले।

जब भूख लगती है, पेट गाना शुरू कर देता है। हमें भी भोजन की भूख लगती है और हम पेट में चूहे दौड़ना अनुभव करते हैं। इसी प्रकार कार्य करने की भूख होती है, सेवा करने की भी भूख होती है। डाक्टर सन्यासी की सेवा-भूख बढ़ चली थी और वह हर समय उस भूख से पीड़ित रहते। उन दिनों आप का यह नियम बन गया कि जल्दी उठकर जप व स्वाध्याय के अनन्तर प्रतिदिन प्रातःकाल साधुओं की कुटिया में जाकर उनके सुख दुःख के समाचार पूछते। क्षीण स्वास्थ्य-साधु के लिए क्षेत्र में घी, दूध, दही का प्रबन्ध करते। किसी साधु के बीमार होने का समाचार पाकर शुश्रूषा के लिए पवन वेग से दौड़ पड़ते। उस के लिए भिक्षा माँग कर ले आते, चिकित्सा करते, कपड़े धोते और अशक्तावस्था में सब तरह की सेवा करते। आप की सेवा-भूख इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि जब देखते अमुक सन्यासी शौच स्नान आदि के लिए बाहर गया है तो उसकी कुटिया झाड़ बुहार कर साफ कर देते, गंगाजी से ताजा जल लाकर रख देते।

आप के शरीर में तो सेवा का मान था और मन में सेवा की पराकाष्ठा—जाज्वल्यमान भावना। जिसे भी समय कोई आया, आपने रोग को देखकर दवा दी, कोई तो अर्द्धरात्रि के समय आता और उसे भी आप सान्त्वना व औषधि देकर विदा करते। बद्रीनाथ और केदार के यात्रियों को मार्ग में स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए आपने

बाँटना आपका क्रम हो बन गया था। मार्ग बीहड़ था और यात्रा दुष्कर; अतएव यात्री को आप ७ या ८ दवाइयों की एक पुड़िया दिया करते। एक दिन एक बद्री यात्री वृद्ध साधु शाम के वक्त आप के पास आया। आपने वह पुड़िया उसे भी दे दी और वह चला गया। लेकिन उसके चले जाने के बाद स्वामी जी को ख्याल आया कि उसे अमृतधारा और दे दी जाती तो अधिक बेहतर होता। अन्य कोई होता तो यह सोच कर कि उसने अपना कर्तव्य कर दिया, रात्रि को सुख की नींद लेता, परन्तु आप को विश्राम कहाँ? रह रह कर यह विचार स्वामी जी के मन में आता कि 'मैंने वह दवा न दी और जितनी सेवा कर सकता था वह न की।' दूसरे दिन भोर होने से पूर्व ही आप उस बद्री यात्री को दवा देने चल पड़े। लेकिन वह तो और भी पहले निकल पड़ा था। लक्ष्मणझूले के बाद गरुड़ चट्टी पर भी वह न मिला और आप आगे फूल चट्टी पहुँच गए तथा उसे वहाँ भी न पाकर और आगे बढ़े। पाँच मील दौड़ते रहने के बाद स्वामीजी उस संन्यासी को पा सके और दवा की शीशी उन्हें दे दी। तब तक ६ बज चुके थे और शीघ्र ही अपनी कुटी पर पहुँचना था ताकि आप अन्न क्षेत्र से दैनिक भिक्षा समय पर ला सकें। एक अपरिचित के लिए इतना श्रम सेवा की पराकाष्ठा ही थी।

वह साधना का काल था। स्वामीजी की कुटिया की संख्या ८३ थी अतः अन्न क्षेत्र से लेने वालों की कतार में भी आप को ८३वें स्थान पर खड़ा होना पड़ता। मध्याह्न काल की कड़ी धूप और भिक्षा-प्रदाता आराम से बाँटता। वहाँ भिक्षा लेना स्वयं एक कठोर साधना थी। वे लोग इन साधु संन्यासियों को भिखमंगे और कुत्तों के समान भोजन पर पलने वाले समझते। स्वामीजी ने साधु समाज को संगठित

किया और उस के विरुद्ध आन्दोलन भी। उनकी कुटिया नष्ट कर दी गई, किन्तु ये अत्याचार तो आए दिन सब को सहने पड़ते थे। विजयश्री आप के हाथ लगी।

स्वामीजी के लिए जप-तप, ध्यान और साधन से भी अधिक सेवा का माहात्म्य था। एक बीमार की सेवा आपके लिए तप से कहीं बढ़कर वस्तु है और इसी कारण ऋषिकेश में एक साधारण साधु-स्वामी आत्मानन्द सख्त बीमार होगए तो परिचर्या के लिए आप स्वर्गाश्रम से वहां चले आए और लगभग तीन सप्ताह तक उनके पास रह कर सेवा करते रहे, जब तक कि वह खतरे से बाहर न होगया। निष्काम सेवा चित्त वृत्तियों के निरोध—योग से भी अधिक दुष्कर है, किन्तु इस में प्रेम का सन्देश अन्तर्निहित है। प्रेम का यही प्रवाह कुछ काल पूर्व ईसा, बुद्ध और गांधी द्वारा बहा था। निष्काम-सेवा में सब से अधिक बाधक है—शारीरिक आलस्य और वह स्वामीजी में कोसों दूर था।

एक बार की बात है कि रामकृष्ण मिशन के एक संन्यासी स्वामी चिन्मयानन्द पर भयंकर चेचक रोग ने प्रहार कर दिया। स्वामीजी ने २-३ सप्ताह तक निरन्तर उनके पास रहकर सेवा की। पथ्य, सफाई, स्वास्थ्य सभी का ध्यान रखा और नदी से भर कर पानी लाते। मूक भावना से की गई सेवा महत्वपूर्ण होती है, लेकिन यह छोटों की श्रद्धा भावना से प्रेरित बड़ों की सेवा न थी। इस समय स्वामी जी की आयु लगभग ४० वर्ष थी और वह सन्यासी उम्र में छोटा ही था। ४० वर्ष की अवस्था पाकर व्यक्ति में स्वतः ही आदर और सम्मान की

भावना जाग्रत हो उठती है। लेकिन स्वामीजी ने वय में अधिक होते हुए भी बच्चों की सरलता को बनाये रखा। स्वर्गाश्रम से ७ मील दूर नीलकण्ठ महादेव के मन्दिर की कठिन चढ़ाई से एक वृद्ध महिला लौटी तो उसके दोनों पैर सूज गए थे। वह थक कर चूर हो गई थी। निष्कपट भाव से स्वामीजी उस महिला की सेवा में लग गये और पैरों की मालिश करके आराम पहुँचाया।

सरलता और सेवा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जितनी ही सेवा की जायगी, जीवन उतना ही सरल होगा। स्वामी जी सदैव सेवा का अवसर ढूंढने के लिए प्रयत्नशील रहते और कहते कि सेवाका अवसर कभी न चूको। श्वान अपने मालिक के पहरे पर सदैव तत्पर रहता है, सो भांति सेवा करने के लिए सदैव तत्पर रहो। देखो, सोचो कि अपने आस-पास वालों की क्या सेवा की जा सकती है। ऐसा वातावरण तैयार करो कि सेवा के लिए क्षेत्र तैयार हो सके। कभी सहायता की अपेक्षा वाले व्यक्ति अज्ञानवश सेवा न लेना चाहेंगे, ऐसे मौके पर आगे बढ़कर त्वरित गति से सेवा करो। सन्त ज्ञानानन्द लखनऊ के अस्पताल में बीमार पड़ा था और अपने स्थान से चल कर पट्टी बंधने वाले स्थान पर भी न जा सकता था, तिस पर भी स्वामीजी की सहायता उसे वाञ्छित न थी। लेकिन स्वामी जी नित्य ही अपने कंधों पर लादकर चिकित्सा के लिये ले जाते और शयनकक्ष में लाते। एक बार सिंगाई की भक्त रानी नाव से सवार होकर गंगासागर की यात्रा पर जा रही थीं। नाव तरंग में डोल उठी और रानी घबराहट से परेशान थीं। स्वामि के

विचारों में आतङ्कित वह स्वामी जी की मदद न चाहती थी, यद्यपि अवस्था ७५ वर्ष की थी। स्वामीजी ने उसके शब्दों पर ध्यान न देकर तुरन्त स्टीमर में चढा दिया, तब वहीं उसे शान्ति मिली।

परिव्राजक जीवन

स्वामीजी अपने साधन पथ पर वेग से बढने लगे और साथ-साथ प्रसिद्धि भी होती गई, किन्तु वह मार्ग में बाधक थी, यहाँतक कि कभी कभी तो आप की कुटिया पर इतनी भीड हो जाती कि कार्य करना भी कठिन हो जाता। अतएव ऐसे अवसर पर अन्यत्र छिप जाने के अतिरिक्त कोई मार्ग न था। दो वर्ष तक ऋषिकेश में रहकर आपने पुन: परिव्राजक जीवन को अपना लिया और एक वर्ष इसी भाति बिताया। १९२५ में आप उत्तरप्रदेश के बिजनौर जिले में स्थित शेरकोट रियासत में पहुँचे। धामपुर में शेरकोट की महारानी श्रीमती फूलकुमारी देवी ने आपका अपूर्व स्वागत किया मण्डी की महारानी श्रीमती ललिता-कुमारी देवी भी भजन में सम्मिलित हुईं। एक दिन तो आप अकेले ही ग्राम के पेड के नीचे रात के ० बजे तक हार्मोनियम पर गाते रहे। कई दिन वहाँ रह कर भजन और कीर्तन किया तथा नहर के किनारे किनारे पैदल ही चल कर हरिद्वार आए। नगे पाँव चलना और सडक के किनारे मैदान में सोने में भी आनन्द का अनुभव हुआ।

आपने ग्वालियर, सीतापुर, लखीमपुर खेडी, लाहौर, काश्मीर और रावलपिण्डी आदि स्थानो की यात्रा की तथा सब जगह सकीर्तन का पुनर्जागृत किया। सकीर्तन-सम्मेलनों के लिए उत्तरप्रदेश और बिहार से भक्तो के निमत्रण पाकर आप जाते और राम धुन जगाते। आपने इस से पूर्व स्वर्गाश्रम में रह कर ६ वर्ष तक एकान्त साधना भी की और मनोवेगों द्वारा निकले ज्ञान को लिखा था। द्रव्याभाव से कागज की सुविधा न होने से पुराने लिफाफों के दूसरी ओर लिख लेते। उस समय की संकलित सामग्री अब पुस्तकों के रूप में प्रकाशित

हो चुकी है। स्वामी परमानन्द जी ने अपने एक पत्र में लिखा है कि वे उन दिनों ऋषिकेश से १) का कागज खरीद कर लाया करते थे और स्वामी जी उस पर अपने विचार लिखा करते।

स्वामी जी ने सन् १९३१ में कैलाश-मानसरोवर की कष्टकर यात्रा भी की। बहुत काल तक घण्टों गंगा में खड़े रहकर जप करने से आप कमर दर्द से पीड़ित हो गए। कमर में दीर्घस्थायी दर्द होते हुए भी आपने अलमोड़ा से कैलाश मानसरोवर की यात्रा पैदल ही की और इस प्रकार ४७५ मील नंगे पैर चले। ऊबड़-खाबड़ मार्ग, कोणात्मक पत्थर, रास्ते की चढ़ाई उतराई आप को विचलित न कर सकी। आपने उस काल में चारों धामों की यात्रा की। रामेश्वरम् गए, योगिराज अरविन्द का आश्रम, महर्षि रमण का आश्रम भी देखा और दक्षिण के कई तीर्थ स्थानों की यात्रा की। परिव्राजकावस्था में घूमते हुए आप संकीर्तन करते और जहाँ जाते लोगों को उपदेशामृत का पान भी कराते। लौटकर आपने 'बद्रीनाथ' और 'कैलाश' की यात्रा पर दो पुस्तकें भी लिखीं।

"आनन्द कुटीर" की स्थापना

पानी की शक्ति का मन्थन कर विज्ञान की कृपा से आज बिजली बनाई गई है। उस विद्युत से अनेक स्थानों पर तरह-तरह के कारखाने खुले हुए हैं तथा विविध वस्तुओं का वहाँ निर्माण होता है। शक्ति के केन्द्रीकरण से चमत्कार पैदा हो सकता है। यदि मानव अपनी शक्ति का केन्द्रीकरण कर डाले तो कोई कारण नहीं कि उसे जीवन में निराशा का सामना करना पड़े, सफलता देवी उसके चरणों में लोटेगी। देश में उत्तर से लेकर दूर दक्षिण तक और पूर्व से लेकर पश्चिमी सिरे

तक स्वामीजी ने भ्रमण किया तथा लोगों की सांसारिकता के प्रति बढ़ती हुई लालसा के मार्ग को अवरुद्ध करके आध्यात्मिकता का पथ प्रशस्त किया। आप सन् १९३२ में पुनः ऋषिकेश लौट आए, किन्तु इस बार स्वर्गाश्रम न जाकर वहीं, मुनि की रेती स्थान में, गंगा के दाहिने तट पर बस गए। यह मनोरम स्थल स्वर्गाश्रम के ठीक सामने गंगा के दूसरे किनारे पर ऋषिकेश से लगभग डेढ़ मील दूर है। स्वामी जी आनन्दमय हैं। और सब को प्रसन्न व आनन्दित देखना चाहते हैं और इस लिए आपकी कुटीर आनन्ददायी हुई तथा 'आनन्द कुटीर' नामकरण किया गया।

स्वामी जी को इस नए स्थान पर आये थोड़े ही दिन हुए थे कि नित्य सैकड़ों की संख्या में लोग दर्शनार्थ आने लगे, कुछ लोग शङ्का समाधान के लिये आते, कोई दर्शन निराश प्रदर्शन पाने के लिए तथा अन्य कोई योग वेदान्त की शिक्षा लेने के लिए। इस प्रकार 'आनन्द कुटीर' आध्यात्मिक साधना का प्रभावोत्पादक केन्द्र ही बन गया और क्रमशः विकास होता गया। गंगा के किनारे इसकी मनोरम स्थिति है। सामने गंगा, पीछे टेहरी राज्य की पर्वतमालाएँ, एक ओर ऋषिकेश और तिसरी ओर हरे हरे वृक्षों से भरा हुआ सघन वन। आज तो 'आनन्द कुटीर' बढ़ कर वर्तमान रूप में शिवानन्दाश्रम बन गया है। अनेक साधक यहां रह रहे हैं, प्रायः नित्य ही भक्त भी आते रहते हैं, और ठहरते हैं। देश ही नहीं विदेश से भी भक्त आकर यहां ठहरते हैं।

——ॐ——

पञ्चम अध्याय

उत्थान के पथ पर

कठोर साधना

— ०*० —

बिना कठिन श्रम के, आसानी से प्राप्त की गई वस्तु का हमारी दृष्टि में उतना मान नहीं होता—हो नहीं सकता, जितना कि उस वस्तु के लिए होता है, जिसके लिए अथक परिश्रम करना पड़ा है। महात्मा गौतम बुद्ध ने अनेक वर्षों तक शरीर को तपस्या की अग्नि में तपाया और एक दिन बोधिवृक्ष के नीचे वे 'बुद्ध' अर्थात ज्ञानी हो गए। हमारे

के उद्धार के लिए आपने प्रचलित भाषा में लोगों को अपने अनुभव और ज्ञान का वृष्टि की। स्वामी शिवानन्द जी की अर्न्तवृत्तियाँ तो बहुत पहले ही जाग्रत हो उठी थीं, मीरा की भांति भक्तिविह्वल हो वे गा उठते और भगवान से तादात्म्य स्थापित करने के लिए बेचैन हो उठे। स्वर्गाश्रम में रहकर आपकी यौगिक साधना ६ वर्षों तक अप्रतिहत गति से चलती रही। न जाने कितने दिन निरन्न और निर्जल बीते। इस विशाल देह ने गर्मी और बरसातें अभग्न भाव से सहीं और कितनी ही रातें अपलक बिताईं।

कठोर तप की इस साधना में लीन रहते हुए भी स्वामीजी लोक-धर्म की उपेक्षा न कर सके अपने चारों ओर फैले क्रन्दन की अवहेलना न कर पाये, इस के बारे में लिख ही चुके हैं। लोकान्तर होकर भी लोक संग्रह स्वामी जी की विशेषता रही, किन्तु अपनी साधना में वे व्याघात न चाहते थे। सिरई की भूतपूर्व रानी स्वामीजी की बहुत भक्त थीं। स्वर्गाश्रम में उनका एक बंगला था और वे जब आती तो २-३ मास तक ठहरती। आप स्वामी जी के लिए बहुत से खाद्य पदार्थ भेजा करतीं। स्वामी जी उन दिनों कठोर साधना में तल्लीन थे, अतः वे चीजों को अन्यों में बाँट दिया करते। फिर भी स्वामी जी के पास ये वस्तुएँ जाती रही। एक दिन रानी साहबा ने भण्डारा किया। उन की इच्छा थी कि स्वामी जी के साथ बैठकर खायें और इसी लिए स्वयं जा जाकर सब साधुओं को आमन्त्रित किया। साधना काल चालू था और स्वामी जी ने अनुभव किया कि उनको इन चीजों से बचना चाहिए और अपने शिष्य को बुलाकर आपने कहा कि कुटिया को बाहर से बन्द कर ताला लगा दो और चौथे दिन खोलना- स्वयं अन्दर बैठ गए। रानी का सेवक भोजन लेकर कुटी पर ही पहुंचा, ताला देख

पर प्रतीक्षा की, पर निराश लौट गया। आप ने तीन दिन तक कुछ न लिया—न अन्न और न जल। समाधि निष्ठा में यह आदर देख देते। रानी साहबा को स्वामी जी के दर्शन न हुए। सबेरे तो वे चली गईं। चौथे दिन बाद सुनने पर स्वामी जी को इस समाचार से बहुत प्रसन्नता हुई।

स्वामी जी ने नंगे सिर और नंगे पैरों मीलों की यात्रा की। सन्यास के अपने आरम्भिक दिनों में कड़कती धूप में महाराष्ट्र की भूमि पर चले, मिल गया तो खा लिया अन्यथा भोजन की भी चिन्ता नहीं। मूसलधार वर्षा में आपने यात्राएँ की हैं, जब वर्षा ने शरीर पर गड्ढे कर दिये, तो अपने हाथ दो वस्त्रों में ठिठुरते रह जाते। बदन पर का वस्त्र तार-तार हो गया है, किन्तु उसकी आप को चिन्ता न रहती, वह तो बाह्य उपकरण है। आज भी आप का भोजन तथा वस्त्र अत्यन्त सादगी पूर्ण है। स्वामीजी सदैव ही सोचा करते—निरंतर साधना आवश्यक है, न जाने कब पुराने संस्कार जागृत हो उठें और करा-कराया स्वाहा हो जाये। ६३ वर्ष से ऊपर अवस्था हो जाने पर, आज भी आप एकादशी का व्रत रखते हैं और कभी तो यह एक दो दिन अधिक भी चलता है।

स्वामीजी मानते हैं कि आध्यात्मिकता का कोई सीधा स्वर्गीय पथ नहीं है, इस लिए सेवा और साधना नितान्त आवश्यक हैं तथापि पद-पद पर गिरने का डर है। स्वामीजी स्वयं, आनन्दाश्रम के सन्त श्री रामदास, उपासनी महाराज के उत्तराधिकारी मकेरी, स्वामी आकार और स्त्री शिक्षा के पक्षपाती हैं और नारी का आदर करते हैं, किन्तु ब्रह्मा, नारद और विश्वामित्र जैसे सत्पुरुष भी लिंग भेद से अप्रभावित न रह सके, जैसे कि हिन्दू धर्म शास्त्रों के पढ़ने से स्पष्ट है।

इसी लिए स्वामी जी स्त्री सम्पर्क के विरोधी हैं। किसी भी स्त्री द्वारा अपने कोई भी अंग छुए जाने के पक्ष में आप नहीं हैं। केवल यही क्यों, जब कोई साधक, नवागतुक या दर्शनार्थी आपके चरण छू लेता तो आप तुरन्त उसके चरण छू देते। कोई आगन्तुक उन्हें पहले प्रणाम न करे, यह उनकी निरन्तर सतर्कता है। एक दिन आप किसी ध्यान में थे कि एक नए आगन्तुक ने झुक कर प्रणाम कर लिया। दूसरे दिन जब वह विदा लेने गया तो स्वामी जी ने साधना में उसके पैर छूकर कल के ऋण का परिशोध कर दिया। साधना में श्रेष्ठत्व की भावना (श्रेष्ठ समझने या दूसरों द्वारा माने जाने) को अपने बिल्कुल नाश कर दिया है।

प्रेम-प्रचारक योगी

समता की भावना ने सेवा को जन्म दिया। सबको अपने में और अपने को सब में देखने की समदृष्टि ने अहंकार का बेड़ा गर्क कर दिया। सब की सेवा करने से सब के प्रति स्नेह जागृत हुआ, प्रेम की मधुर सृष्टि हुई। अहंकार नष्ट हुआ, ऊँच नीच का भेद भाव मिट चला, तो स्नेह का द्वार खुल गया। इसी भांति स्वामी जी प्रेम धर्म के प्रचारक हुए। आप प्रेम के व्याख्याता हुए, प्रेम-दर्शन के प्रणेता बन कर चहुं ओर प्रेम की वर्षा कर दी—गली गली, गांव गांव, नगर नगर, जिले, राज्य व देश में प्रेम की ध्वनि गूँज उठी। सब स्थानों में प्रेम की लहर व्याप्त होगई। विश्वबन्धुत्व की भावना इस प्रेम का ही एक रूप है। सारे विश्व को प्रेम की लड़ी में पिरोने के लिए आप प्रयत्नशील हो उठे। अन्तर राष्ट्रीय देशों में प्रेम का निनाद गूँज उठा।

स्वामी जी ने पहले स्वयं राम का प्रेम किया और उस प्रेम की अजस्र धारा प्रवाहित हो चली। आनन्द कुटीर से यह धारा वर्

और भारत के कोने कोने में जा पहुँचा। भारत की परिधि को पार कर-विश्व में जहाँ कहीं मात्र भी मनुष्य था। यह मनुष्यता का नूतन संदेश लेकर पहुँची। जड़वादी विश्व में आत्मचेतना का जयघोष लेकर पहुँची। 'तुम्हें शान्ति चाहिए तो आओ पहले प्रेम करना सीखो।' स्वामी जी की प्रेम रस पगी मनोभावना मचल उठी—प्रेम करना सीखो, प्यार करो। व्यक्ति से प्रेम करो, सब से प्रेम करो। अपने मित्र की ही भाँति शत्रु को भी प्रेम करो—प्रेम-नदी में शत्रुता रूपी मल छूट जायगा। मूक पशुओं को भी प्रेम करो, मानो कि वे भी मानवीय हैं। ऐसा प्रेम करो कि विश्वप्रेम की धारा में कुटुम्ब, जाति, समाज या स्थानविशेष के बन्धन बह कर नष्ट हो जायें। विशुद्ध प्रेम करो। इसी प्रेम के वशीभूत होकर तुलसी दास ने डाकुओं द्वारा लूटे जाने पर, यह प्रार्थना की थी कि उन्हें वह सामान उनके यहाँ छोड़ आने की अनुमति भी दी जाय। इसी प्रेम के कारण महात्मा ईसा ने अपने फासी देने वालों के लिए (स्वर्ग में जाकर) परम पिता से मुक्ति प्रदान करने की याचना की थी। इसी प्रेम के प्रचारक स्वामी शिवानन्द हैं।

स्वामी जी कहते हैं—सब को प्रेम करो भगवान के सब रूपों को प्रेम करो प्रभु के सब नामों को प्रेम करो। 'एकसद् विप्रा बहुधा वदन्ति'। राम का भक्त राम को चाहता है, कृष्ण का भक्त कृष्ण को चाहता है, शिव का भक्त शिव को चाहता है और श्रद्धा भक्ति से पूजा आराधना करता है। किन्तु स्वामी जी सीता राम को भी उतना ही चाहते हैं, जितना राधेश्याम को या शिव पार्वती को। दक्षिण भारत के सन्तों में सन्त माणिक्य वाचकर उस व्यक्ति को देखना भी पसन्द न करते थे, जिसके मस्तक पर शैवों की पवित्र भस्मी न लगी हो, सन्त ज्ञानसम्बन्धर

के पास नहीं जा सकता था जो शिव या हर का प्रशंसक हो; संत तिरुज्ञान-सम्बू शैवों का ही सेवा करते थे और इसी प्रकार सन्त सुन्दरमूर्ति शिव की आराधना में लीन किन्तु वे मानव-स्पर्श भी न करते थे। वैष्णव सन्त केवल हरि, नारायण, राम और कृष्ण को छोड़ कर अन्य की बात सुनना भी पसन्द न करते थे। शङ्कराचार्य केवल अद्वैत के पक्षपाती थे और अन्य किसी द्वैतावस्था को कहीं भी, कभी भी मानने को तैयार न होते थे। सन्त पट्टिनाथ ने जब अपना लाखों की सम्पत्ति त्यागी, अपने को सर्वाधिक धनी मानते थे। संत तायुमानवर अपने और ईश्वर के बीच मन को सब से बड़ा बाधा मानते थे। संत तिरुवल्लुवर गृहस्थ थे और वे उसे ही सब योगों में श्रेष्ठ मानते थे। स्वामी शिवानन्द जी ने प्रेम के बल से सब का सार लेकर, प्रेम-धर्म का आचरण किया और दूसरों को भी वैसा ही करने को कहा। चाहे कोई किसी धर्म, पंथ या जाति का क्यों न हो, आपने प्रेम-साधना पर जोर दिया और सब के लिए सदाचरण का पथ बताया।

स्वामी जी का योग प्रेम-योग है। योग के समन्वय में आप को विश्वास है। गहन तपश्चर्या का यही निष्कर्ष है। आप कर्म-भक्त योगी के साथ साथ कर्म-ज्ञान योगी हैं। आधुनिक काल में प्रत्येक व्यक्ति के लिए योग के समन्वय की उपयोगिता और आवश्यकता आप प्रकट करते हैं। कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग और ज्ञानयोग— योग चतुष्टय को आप हर आदमी के लिए आवश्यक मानते हैं। प्रेम का संदेश लेकर आप सेवा के मार्ग पर अग्रसर हुए थे और चारों योग अविभक्त मानते हैं। हृदय की शुद्धि के लिए सेवा आवश्यक है और उसमें प्रेम की पुट होनी चाहिए। प्रेम ही प्रकट रूप में सेवा है। जब व्यक्ति में प्रेम होगा, तब ही उसकी सेवा की जा

सकेगी। ज्ञान प्रेम का ही विस्तार है और प्रेम तो संयुक्त ज्ञान ही है। निस्वार्थ सेवा ही कर्म योग है, भगवान के प्रति अतिशय भक्ति-भावना ही भक्तियोग है, आत्म संयम का पथ ही राजयोग है और दर्शनशास्त्र के जरिये प्रभु से एकाकारता ही ज्ञानयोग कहलाता है। योग के समन्वय द्वारा ही मन, मस्तिष्क और हाथ की शक्तियों का विकसित करके पूर्णत्व प्राप्त किया जा सकता है।

विनीत सेवक

विपत्ति आने पर ही किसी व्यक्ति की परख होती है। कष्टों की भट्ठी में जिसने समत्व-भावना को नष्ट न होने दिया, वही योगी है। प्रेम की कसौटी है—प्रेम की पीर अपने प्यारे के लिए मर मिटने की अमर भावना। प्रेम की परीक्षा है—सेवा का माद्दा, आप सुख में अथवा दुःख में कितनी सेवा कर सकते हैं। निष्काम भाव से और अविचलित रूप में की गई सेवा ही प्रेम के पथ को प्रशस्त बनाती है। सच्चा प्रेमी ही सच्चा सेवक बन सकता है। दरिद्र-नारायण की सेवा ही प्रेम का रूप है। दीन-हीन, असहाय और पीड़ितों की सेवा ही प्रेमनगर का सीधा मार्ग है। स्वामी शिवानन्द जी ने सेवा के सागर में गोता लगाया और परीक्षा लेने के लिए फिर आपको प्रेम की भट्ठी में तपाया गया, आप खरे निकले। सेवा का पद नीचा नहीं, बहुत ऊँचा है और इतना ऊँचा कि सहसा कल्पना नहीं की जा सकती। भगवान कृष्ण ने महाभारत में वर्णित राजसूय यज्ञ में इसी लिए अभ्यागतों के चरण धोने का कार्य लिया, स्वामी जी भी सेवा के सर्वोच्च आदर्श पर चल कर आज एक सेवक बन गए।

सेवक स्वामी जी सब से 'महाराज जी' कह कर सम्बोधन करते हैं। प्रत्येक को वह 'आप' कह कर ही सम्बोधन करते हैं, चाहे वह उम्र में कितना ही छोटा क्यों न हो, चाहे वह मेहतर ही क्यों न हो। घृणा को त्याग कर समता की स्थापना और लौकिक प्रेम व नारायणभाव की प्रतिष्ठा में इससे सहायता मिलता है। बड़ा तो वही है—जिसके सेवा कार्य अधिक हों, उम्र में बड़ा या धन में बड़ा बड़ा नहीं। स्वामी जी यूरोपीय सन्यासी—साधू लेकर रुग्णावस्था में, चारपाई पर लिटाकर सिर पर लाकर ऋषिकेश के पञ्जाबी-सिंध-क्षेत्र अस्पताल में छोड़ आए। सन्यासियों, साधुओं और पास-पड़ोस के रोगी की ध्यान और विश्वास के साथ आप सेवा करते हैं। दवा, पैसा, दूध व खिचड़ी आदि से उनकी आवश्यकता-पूर्ति करते हैं। बीमार की सेवा आप का परमधर्म है यही आपकी साधना, जप-तप, मनन का अङ्ग भी है।

स्वामी विनोदप्रिय हैं। सेवक का कर्तव्य है कि वह अपने मालिक को रुष्ट न होने और सदैव प्रसन्न रक्खे। स्वामी जी अपने विनोदों से सबको प्रसन्न रखते हैं, हास्य-विनोद द्वारा रोगों का निवारण करते हैं। आप के चेहरे की मुस्कराहट शान्ति का प्रसार करती है। आप मजाक करते हैं किन्तु शिक्षित और सुधारात्मक ढंग से। कभी तो वह विनोदात्मक मजाक किसी की जीवनधारा को ही पलटने में समर्थ होती है, डूबता हुआ व्यक्ति तिनके का ठौर पाता है और सही सलामत निकल आता है। सङ्कीर्त्तनों में ओ३म् का मधुर गुञ्जार और राम नाम की सिंह-गर्जना सोये हुओं में जीवन-ज्योति जलाती है, जागृति की लहर पैदा करती है, उनकी हृदय-वीणा के तार झङ्कृत हो उठते हैं। प्रभात-फेरी होती है और आप भाषण देते हैं।

——✣——

षष्ठम अध्याय

भावाभिव्यक्ति

ओजस्वी पत्रकार

स्वाध्याय और साधना अबाध गति से चलती रही थी। बढ़ती हुई ज्ञान पिपासा सत्ता के क्रियात्मक रूप द्वारा निखर उठी थी। आत्मानुभूति को प्रकट करने के लिए स्वामी जी की लेखनी चल पड़ी। पूर्वाश्रम में रहते हुए ही आप को लिखने का अच्छा अभ्यास हो गया था इसलिए मनोभावों को लिपिबद्ध करने में अब बहुत

आसानी रही। साधना के प्रारम्भिक काल में, कागज के अभाव में ऋषिकेश की सड़कों पर से कूड़े के ढेर में से कागज निकाल कर लिफाफों के भीतरी भाग का उपयोग कर लिया करते। प्रेरणा होती और आप झट उन बातों को कागज पर लिख लेते तथा कुछ समय उपरान्त तो यह क्रम ही बन गया।

स्वतन्त्र रूप से लिखने वाले जानते हैं कि प्रारम्भ में पत्रों में लेख छपाना कितना कठिन कार्य है; किन्तु आप के लेखों में तेज था, निर्भीकता थी, सरलता थी, आध्यात्मिकता थी, वे हृदय की वस्तु थे और सीधे पाठक के हृदय को प्रभावित करते थे। संन्यास लेने के बाद ही समय निकाल कर कई पत्र पत्रिकाओं में लिखना शुरु किया और अप्रसिद्ध होते हुए भी अपनी मार्मिकता के कारण उन्हें स्थान मिलने लगे, कई प्रसिद्ध पत्रिकाओं में भी वे छपे। जब कभी कागज और टिकट मिल जाता आप तुरन्त पत्र पत्रिकाओं के लिए लेख भेजते। स्वामी जी आत्म ज्ञान की सीढ़ी पर पैर धर रहे थे कि सीतापुर के एक भक्त श्री चन्द्रनारायण हर्कुली ने आपको पाँच रुपए दूध ले कर बरतने के लिए दिए। यह सन् १९२९ की बात है। आप चाहते थे कि अपने ज्ञान को सीमित न रखा जाय तथा सब उसका आनन्दोपभोग करें। आपने उन रुपयों का उपयोग एक हृदय प्रेरक पुस्तिका "ब्रह्मविद्या" छपवाने में किया और जी. ए. नटेशन कम्पनी द्वारा मुद्रित इसकी ५०० प्रतियाँ निःशुल्क ही लोगों में वितरित की गईं। सन्यासाश्रम में आने के बाद यह स्वामी जी की सर्व प्रथम रचना थी, जो छापे में छपी। फिर तो यह क्रम बढ़ता ही गया। आज तो न जाने कितने हजार ऐसी विभिन्न प्रतियां छप कर जनता के हृदयपरिवर्तन में समर्थ हुई हैं और लगभग लाख से ऊपर पृष्ठ संख्या मुद्रित रचनाओं की हो गई है।

आज तो स्वामी जी आध्यात्मिक विषय के माने हुए लेखक हैं, आप के लेखों में अनुभूति की प्रधानता रहती है, पाठक के मन पर वे सीधा असर करती हैं उन्हें पढ़कर उसे शान्ति और सुख मिलता है उसे आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा मिलती है, वर्तमान स्थिति से ऊँचे उठने के लिए सम्बल प्राप्त होता है। आज स्वामीजी का अपना पत्र 'दिव्य जीवन' ही ६ ७ भाषाओं में निकलता है और इसके अतिरिक्त आप के आश्रम से 'योग वेदान्त' अंगरेजी पत्र प्रति मास प्रकाशित होता है तथा इसका मासिक हिन्दी सस्करण भी जुलाई सन् १९५७ से प्रारम्भ हो गया है। इन में आप नियमित लिखते हैं। इनके अतिरिक्त विगत २०-२५ वर्षों से 'माइ मैगजीन' (मद्रास), 'कल्याण' और अंगरेजी 'कल्याण कल्पतरु' (गोरखपुर), उर्दू 'ओ३म्' पत्रिका में लिखते हैं। आज तो किसी भी भारतीय भाषा का पत्र उठाकर देख लीजिए, उसमें आपको स्वामीजी का लेख मौलिक या अनूदित अवश्य ही मिल जायगा। आप अधिकाशत अंगरेजी में ही लिखते हैं। आपने हजारों संस्थाओं को प्रेरणाप्रद सन्देश भेजे हैं।

मँजे हुए लेखक

वह ब्रिटिश साम्राज्यशाही का युग था। अपनी कूटनीति के द्वारा उन्होंने अनेक वर्षों तक इस विशाल देश पर शासन किया। केवल शासन ही किया होता और चले जाते तो कुछ न था, किन्तु उन्होंने आर्थिक दीवाले के साथ साथ मानसिक दीवाला भी दिया। उन्होंने भारतीय संस्कृति पर आघात किया, भरपूर यह चेष्टा की कि लोग अपने धर्म, सभ्यता, संस्कृति को विस्मृत कर पश्चिम की ओर देखें, पाश्चात्यों के रीति-रिवाज, रहन-सहन को अपनावें। अपने प्रयत्न में वे बहुत

कुछ सफल भी हुए क्योंकि इस देश का शासन छोड़ आज उन्हें चार साल होगए, किन्तु मानसिक दासता अब भी बनी है। सच पूछिए तो इसका प्रारम्भ, सन् १८३५ के बाद लार्ड मैकाले की विनाशकारी शिक्षा योजना से हुआ था। उसने क्लर्क गढ़ने की योजना रची और फल यह हुआ कि संस्कृत का स्थान अंग्रेजी ने ले लिया। अधिकांश लोग तथाकथित 'बाबू' बनने के लिए अंग्रेजी पढ़ने लगे, अंग्रेजी का पढ़ना सभी स्कूल और कालेजों में अनिवार्य कर दिया गया। आज भी वह परिपाटी बदली नहीं है।

देश में सर्वत्र अंग्रेजी का बोलबाला था, मातृभाषा में लिखना और बोलना अपना अपमान समझा जाता था और अंग्रेजी में सम्भाषण करना एक तरह की शान। यहाँ की जनता अपने धर्म को भूल गई, कर्तव्य को भुला बैठी, विगत गौरव विस्मरण होगया, नास्तिकता की लहर चारों ओर फैल गई। संस्कृत का पठन-पाठन सर्वसाधारण से दूर जा पड़ा और वह केवल कतिपय ब्राह्मणों के लिए सुरक्षित रहा तथा वे पंडित भी रूढ़िवाद और साम्प्रदायिकता से ग्रस्त, जो अपना ज्ञान दूसरों को देना न चाहें। उनमें भी अधिकांश मामूली संस्कृत पढ़कर पूजा-तर्पण करा देना, यजमान के यहाँ दुर्गा सप्तशती और अन्य कथा का पाठ करने को ही अपने ज्ञान की पराकाष्ठा मानते। धर्मशास्त्रों—वेद, उपनिषद् गीतादि के अध्ययन की न उन्हें ही इच्छा थी और न जनसाधारण को यह सुविधा प्राप्त थी तथा न इतना समय ही प्राप्त था। फल यह हुआ कि हम अपने धर्म महत्व को भूल बैठे। ठीक ऐसे समय में ऐसे ही वातावरण में पले हुए होने के कारण रोग व कारण को समझकर, स्वामी शिवानन्द जी ने अपनी पुस्तकों के द्वारा भारतीय संस्कृति को विनाश के गर्त में गिरने से

अपनी अनुभवसिद्ध वार्ता को ही पाठकों के समक्ष रखता है। जिन्हें आप से मिलने का अवसर नहीं मिला, वे ही आशङ्का करते हैं कि इतनी ढेर सी किताबें लिख डालना 'कुछ इधर से लिया, कुछ उधर से' की कला का खेल मात्र होगा। लेकिन आज भी आप इतना लिखते हैं कि आश्रम के ११ टाइपराइटर निरंतर खड़खड़ाते ही रहते हैं। आध्यात्मिक ज्ञान के प्रसार के लिए यह सन्त दिन रात लगा रहता है, आपके अध्ययन-कक्ष में पूरी की अलमारियाँ इटी पड़ी हैं। आप जो कुछ लिखते हैं, उसे प्रेस में देने से पूर्व दुबारा लिखने की आवश्यकता नहीं पड़ती सीधे इसी लिपि लगा से पाण्डुलिपियाँ तैयार हो जाती हैं और इस प्रकार एक साथ ही ३-४ पुस्तकें साथ साथ लिखी जा जाती हैं, जब जो विचार आया, उसे उसी पुस्तक की पाण्डुलिपि में लिख डाला। आप प्रतिदिन कुछ न कुछ पुस्तक के लिए अवश्य लिखते हैं और यह क्रम आज वर्षों से चला आ रहा है।

लगन का चमत्कार

महाराष्ट्र के सन्त ज्ञानेश्वर ने जब गीता का ज्ञान सर्वसाधारण की भाषा में लिखा तो विद्वानों ने उसकी हँसी उड़ाई, पुराणपन्थियों ने उसका विरोध किया, नास्तिकों का वह उपहास बना, लेकिन वे दूरदर्शी थे। एकनाथ महाराज ने संस्कृत न जानने वालों के लिए भागवत सुलभ कर दिया, आन्ध्रदेश में राम कथा का गुणगान पोतना ने किया, तामिल नाड में कम्बर ने और मंत्र तुलसीदास की रामायण तो समस्त भारत में घर-घर हो गई। ठीक इसी प्रकार अपनी स्थानीय भाषाओं में महाभारत का अनुवाद करके लक्ष्मीकवि ने कनड और मोरोपन्त ने मराठी की बहुत सेवा की है। निश्चलदास ने अपने 'विचारसागर' में

वेदान्त के उदात्त विचारों को सरल ढंग से जनता के समक्ष रखा। स्वामी शिवानन्द जी ने हिन्दू धर्म शास्त्रों के विचार का आधुनिक विश्व के लिए उपस्थित किया। हिन्दू दर्शन-शास्त्रों पर वैसे तो पाश्चात्य और यहाँ के विद्वानों ने भी मोटे-मोटे पोथे लिखे हैं लेकिन वह पाण्डित्य प्रदर्शन से पूर्ण और जनता के लिए तो कठिन बना रहा, मूल संस्कृत न जानने के कारण सर्वसाधारण उस ज्ञान से वंचित ही रहा। स्वामी जी ने उन शास्त्रों को, पुराने सिद्धान्तों को नवीन युग के प्रकाश में, सर्व-साधारण के शब्दों में विश्लेषित करके रखा है। स्वामी जी की पहली वृहद् पुस्तक 'योग का अभ्यास' (प्रेक्टिस आफ योग) प्रथम भाग १९२९ ई० में लिखी गई जो काश्मीर के दीवान जगततराय की आर्थिक सहायता से गणेश एण्ड कं० (मद्रास) द्वारा प्रकाशित की गई थी। ऐसी दूसरी पुस्तक थी —'वेदान्त का अभ्यास' (प्रेक्टिस आफ वेदान्त) और यह भी वहीं से छपी थी। बाद में दोनों ही पुस्तकों का प्रकाशनाधिकार— 'माई मैगजीन' (मद्रास) पत्रिका के सम्पादक श्री पी०के० विनायगम् को दिया गया तथा वहीं से 'हिमालय पुस्तक माला' के अंतर्गत 'राजयोग', 'प्रेरणा पद', आध्यात्मिक पाठ', 'श्वासविज्ञान' (साइन्स आफ प्राणायाम), 'योगासन', 'कुण्डलिनी योग' तथा 'योग का अभ्यास (दो भाग) प्रकाशित हुए। इस प्रकार स्वामी जी ने जन-साधारण में फैली योग के प्रति भ्रान्ति को दूर करने का प्रयत्न किया। आपने बताया कि समाज में रह कर भी, गृहस्थ में रह कर भी योग-साधना की जा सकती है। इसके बाद तो आपने योग और वेदान्त विषयक अनेक पुस्तकें लिखीं, जिन में मुख्य ये हैं—योग का सरल पथ, योग के तत्व, योग, योग की घरेलू कसरतें, योग-वेदान्त-कोश, समन्वयात्मक योग, राजयोग, संकीर्तन योग, समाधि-योग, संगीत-लीला योग, कर्मयोग का अभ्यास, भक्तियोग का अभ्यास, योग के क्रियात्मक-

पाठ, ब्रह्मचर्य, ज्ञानयोग, हठयोग, जपयोग, मन को वश में करने के उपाय (दो भाग), योग, और वेदान्त पर कुछ भाषण, क्रियात्मक साधना, सन्यास की आवश्यकता, वैराग्य के पथ पर, वैराग्यमाला, वेदान्त-ज्योति आदि।

स्वामी जी ने सभी प्रकार की पुस्तकें लिखी हैं—छात्रोपयोगी, स्त्रियोपयोगी और सर्वजनोपयोगी। स्त्री धर्म तथा नारी को सलाह-दो स्त्रियों के लिए सुन्दर पुस्तकें हैं। आप की अधिकांश पुस्तकें सर्व-साधारण के लिए बहुत उपयोगी हैं और उन्हें पढ कर गया-बीता व्यक्ति भी अपने जीवन को सुधार सकता है। आप ने नाटक, जीवनी और कहानियों के रूप में भी कई पुस्तकें लिखी हैं। 'सतों के चरित्र' (दो भाग) में विभिन्न सतों के सक्षिप्त रेखाचित्र दिये हैं; 'विद्यार्थी जीवन में सफलता', 'जीवन में निश्चित सफलता', विद्यार्थी वर्ग को लक्ष्य में रख कर लिखी गई हैं। 'ब्रह्मचर्य नाटक', 'दिव्य जीवन', 'राधा का प्रेम', 'शिवलीला', 'उपनिषद नाटक' तथा दो एकाङ्की 'काम व क्रोध', 'भगवद्गीता' आदि सभी शिक्षादायक छोटे-छोटे नाटक हैं, जिनको विद्यालयों में अभिनय किया जा सकता है। 'महाभारत की कहानियाँ', दार्शनिक कहानियाँ', दिव्य कहानियाँ आदि कई कहानियों की पुस्तकें हैं। हिन्दू धर्म-शास्त्रों पर आपने सरल भाषा में अनेक पुस्तकें लिखी हैं। जैसे 'भगवद्गीता' (पूर्ण), गीतासार, 'रामायण-सार', 'हिन्दू धर्म', 'हिन्दुओं के व्रत और त्योहार', 'भगवान शिव की पूजा', भगवान कृष्ण की लीलाएँ और पूजा, दस उपनिषद, व्यस्त व्यक्तियों के लिए उपनिषद, लघु उपनिषद, कैलाश-यात्रा, आदि। घायल की प्राथमिक चिकित्सा, घरेलू डाक्टर, स्वास्थ्य और भोजन, स्वास्थ्य और दीर्घ-

जीवन, स्वास्थ्य और सुख, आदि स्वास्थ्य विषयक पुस्तकें भी आपने लिखी हैं, क्योंकि यदि स्वास्थ्य ठीक है तो सारे कार्य ठीक हो सकते हैं।

विशिष्ट लेखन-शैली

स्वामी जी की लिखने की अपनी ही शैली है। छोटे छोटे शब्द और छोटे ही वाक्य किन्तु उनकी भाव प्रवणता 'गम्भीर घाव' करती है। अपने लेखों, अपनी रचना में आप हृदय को उण्डेल देते हैं और हृदय की भाषा में ही उसे लिखते हैं, अतः वह सन्देश हृदय को बेध कर निकल जाता है, हृदय में उथल पुथल मचा देता है। आपने अपनी रचनाओं को क्रियात्मक धर्म, क्रियात्मक दर्शन और क्रियात्मक साधना के समन्वय से ओत-प्रोत कर दिया है और यही कारण है वह पाठक को सोचने के लिए बाध्य कर देते हैं कि वह भी क्रियात्मक बने।

स्वामी जी की रचनाओं के पढ़ने से भली प्रकार स्पष्ट हो जायगा कि आपने विषय को सुगम, स्पष्ट और बोधगम्य बनाने के उद्देश्य से योग के विभिन्न अंगों का समावेश प्रायः सभी पुस्तकों में किया है। भक्तियोग की पुस्तक में भी भक्ति के अतिरिक्त राजयोग, कर्मयोग और वेदान्त की बातें मिलेंगी, क्योंकि आप योग-समन्वय के पक्षपाती हैं। एक दर्जन से भी अधिक पुस्तकों में आपने योगासन और प्राणायाम पर बल दिया वैराग्य की भावना जागृत करने वाले कुछ अंश प्रायः प्रत्येक पुस्तक में मिलेंगे। वेदान्त और ज्ञान-योग की पुस्तकों में भी आपने भक्ति, संकीर्तन और कर्मयोग का समावेश किया है। आपका कथन है कि जिस किसी के हाथ में एक भी

पुस्तक पढ़ जाए, वह संसार को तरने का मार्ग प्राप्त करले। प्रथम अध्याय में पाठक की ज्ञान पिपासा को जागृत करेंगे। और अगले अध्यायों में धीरे धीरे वह बुझती जान पड़ेगी, किन्तु कर्म करने की प्रेरणा उसमें सन्निहित रहेगी।

स्वामी जी जो कुछ भी लिखते हैं—साधक के लिए। इसलिए वह कार्य की कसौटी पर कसा जा सकता है। आपका उद्देश्य यही रहता है कि साधकगण लिखे हुए को पढ़ें, प्रेरणा प्राप्त करें और लाभ उठायें। आप का प्रत्येक लेख अपने आप में पूर्ण होता है, उसमें कुछ न कुछ निष्कर्ष निहित रहेगा। आप का यह प्रयत्न नहीं रहता कि पुस्तक के अध्याय एक दूसरे पर आश्रित रहें और इस प्रकार शिथिलता को नहीं रहने देते। प्रत्येक पैराग्राफ में पूर्वपक्ष और सिद्धान्त दोनों को भर देते हैं और फिर अलग अलग तथ्यों पर विचार करते रहते हैं। यही कार्य में सन्यास है कल पर कुछ क्या छोड़ा जाए? इसमें मन में संकल्प रहता है और संकल्प, चाहे फिर वह कैसा भी क्यों न हो, एक प्रकार का बंधन है। जब कभी कोई विचार स्वामी जी के मन में उदय होता है तो तुरन्त आप उसे प्रकट कर देते हैं और एक ही बार में लिख डालते हैं। यदि आप किसी पत्र-पत्रिका के लिए लिखते हैं तो एक ही पृष्ठ में सारी साधना का निचोड़ डाल देते हैं ताकि जिस किसी के हाथ में वह पड़े, उसे अधिक से अधिक लाभ हो। इसीलिए आपकी प्रत्येक पुस्तक आध्यात्मिक ज्ञान का सद्धर्म ग्रन्थ ही समझिए। पुस्तक के नाम से ही विषय स्पष्ट हो जाता है।

मासिक पत्र लेखन

अपने आध्यात्मिक सन्देश के प्रचार में स्वामी जी को अपूर्व सफलता मिली है। इतने विविध विषयों पर इतनी अधिक पुस्तकें लिखने

वाले केवल आप ही हैं। और आज तक आप अनगिनत लेख लिख चुके हैं; लेकिन इनसे भी ऊपर है—आप का पत्र लेखन। पत्र लिखना भी एक कला है। सीमित शब्दों में विस्तृत भाव को व्यक्त कर देना पत्र लेखन की विशेषता है। आपके पास नित्य ही दर्जनों पत्र देश और विदेश से आते हैं। और आपके वश में सब का उत्तर दिया जाता है। कोई अपनी दुःख भरी गाथा कहता है, कोई अपनी गिरावट की कहानी, कोई पारिवारिक जीवन से तंग, आशा और निराशा के भूले में भूल रहा है, तो कोई विघ्न बाधाओं से घबराकर संघर्ष से भाग निकलना चाहता है और आत्म हत्या से बढ़कर ख्याल उसके मन में नहीं आता, अन्य कोई अपनी पत्नी के देहान्त से वैराग्य की लहरों में हिलोरें ले रहा है तथा सन्यास की आकांक्षा है। ऐसे ही अनेक समस्याओं से परिपूर्ण पत्र नित्य ही स्वामीजी को मिलते हैं।

स्वामी जी सब पत्रों को पढ़ते हैं और उनकी समस्याओं का उत्तर देते हैं। जवाब में आपका पत्र अत्यन्त संक्षिप्त होगा, किन्तु शब्दों का चयन उचित भावों को अभिव्यक्त करता है। निराश दिल में, वह प्राण का संचार करता है। वह व्यक्ति जो कुछ समय पहले उदास चित्त लेकर किंकर्तव्यविमूढ़ सा बैठा था, प्रफुल्लित हो उठता है। स्वामीजी का एक एक पत्र इतना प्रभावोत्पादक और मार्मिक होता है कि प्रात कर्णों के धधकते मन पर ठण्डा पानी पड़कर वह शान्ति का आभास पाता है। वह अपनी शक्ति का अनुभव करने लगता है। उसमें द्विगुणित उत्साह पैदा हो जाता है। सैकड़ों और हजारों मील दूर बैठा व्यक्ति स्वामी जी को अपने समक्ष महसूस करता है। उसकी शङ्काएँ नष्ट हो जाती हैं या पत्र से हल हो जाती हैं।

निराशा के सागर में डूबते उतराते व्यक्ति को स्वामी जी अपने अपने हाथ से लिखकर पत्र भेजते हैं। वह और भी सुख तथा शान्ति का संदेश पहुँचाता है। भावुकता की आधारशिला पर मनुष्य का निर्माण हुआ है। मार्ग में जहाँ बाधा आई या जरा भी ठेस पहुँची, वह मानसिक संतुलन खो बैठता है। संसार उसकी निगाह में असार बन जाता है, ऐसे संसार को वह जल्दी से छोड़ देना चाहता है, इसी लिए सन्यास लेने या आत्म हत्या का विचार उसके मन में आता है। ऐसे व्यक्ति को स्वामी जी का प्रेरणाप्रद पत्र आनन्द की धारा में बहा देता है। स्वामीजी प्रभु से उसकी शुभाकांक्षा करते हैं और वह व्यक्ति आशीर्वाद पाकर अपने को कृत कृत्य मानता हुआ, कर्म मार्ग पर अग्रसर होने की तैयारी करता है। स्वामीजी की ओजस्विनी लेखनी मुर्दे में प्राण फूँकती है। अपनी शक्ति को न पहचानने वाला व्यक्ति मुर्दे से क्या कम है?

स्वामी जी द्वारा प्रचारित आध्यात्मिक दैनन्दिनी की रिपोर्ट साधकगण सुधार, पथदर्शन और आदेश के लिए भेजते हैं। उसके उत्तर में भी आप पत्र भेजकर साधकों, गृहस्थ-अनुयायियों को प्रोत्साहित करते हैं। ऐसे ही हजारों पत्र अब तक आप लिख चुके हैं। ऐसे कुछेक पत्र पुस्तकाकार भी प्रकाशित हुए हैं। चार पुस्तकें इस भांति हैं—'प्रेरणाप्रद पत्र' (इन्सपायरिंग लेटर्स) २. 'शिवानन्द के पत्र डा० छत्रपति के नाम' (शिवानन्दाज लेटर्स टू डाक्टर छत्रपति), ३. 'गजानन के नाम पत्र' (लेटर्स टू गजानन)—इसका हिन्दी अनुवाद "जीवन ज्योति" शीर्षक में छपा है। ४ 'मित्र के नाम पत्र' (लेटर्स टू श्री एम. सी. मित्र) पुस्तक भी छप चुकी है। स्वामीजी का एक पत्र देखिए :—

ॐ

१ मई सन् १९५३ ई०

वत्सला,

साधारण वस्त्र धारण करो। रेशम तथा आभूषण मत पहनो किन्तु विनम्रता के कंगन, पवित्रता का हार, सतीत्व की मुद्रिका, सहिष्णुता की लौंग और शान्ति की कर्ण मुद्रिका धारण करो। इस से तुम सुन्दरियों में सुन्दरी हो जाओगी। इसका अभ्यास कर अनुभव करो।

ध्यान धारण कर, साधन की खोज करो। यह ईश्वरीय साधन आनन्द, शान्ति तथा प्रसन्नता से परिपूर्ण भूमा है। इस में पूर्ण सामञ्जस्य तथा पवित्र हर्ष प्राप्त होता है। सर्वदा प्रसन्न रहो। ईश्वर का तुम पर अनुग्रह हो।

शिवानन्द

सप्तम अध्याय

कुशल कीर्तनकार एवं ओजस्वी वक्ता

प्रवचन-प्रवीण

यह संसार विषमताओं से परिपूर्ण है। प्रायः देखा जाता है कि किसी में कोई विशेष गुण है तो कोई अवगुण भी। कोई किसी विद्या विशेष में निपुण है तो अन्य किसी ज्ञान से बिलकुल शून्य। अच्छे चित्रकार चित्र तो बहुत सुन्दर बना लेंगे। किन्तु अधिकांश की हस्तलेख-शैली इतनी सुन्दर नहीं होती। कई व्यक्ति लिख तो बहुत अच्छा लेते

है किन्तु अपने मनोभावों को ठीक एक जनता में प्रकट करना उनके वश की बात नहीं। स्वामी शिवानन्द जी ऐसे ही उच्चकोटि के लेखक हैं, उनकी वाणी में भी अपूर्व ओज है और आप एक सफल वक्ता हैं। यह ईश्वर प्रदत्त देन है और इस के लिए साधना भी परमावश्यक है। विश्व के वक्ताओं में स्वामी शिवानन्द जी, डा० राधाकृष्णन, स्वर्गीय श्री निवास शास्त्री आदि साधकों का नाम स्मरणीय रहेगा।

किसी भी वक्ता की विशेषता यही है कि वह श्रोताओं को अपने भाषण द्वारा मन्त्र-मुग्ध-सा कर दे और श्रोता उस समय वक्ता के साथ एकाकारता का अनुभव करने लगें। आपने ऐसे व्यक्तियों की वक्तृताएँ सुनी होंगी, जो शब्दाडम्बर में फँस कर, हाव-भाव के द्वारा कुछ समय तक तो श्रोताओं को अपनी बुद्धि-चातुरी से इतना प्रभावित कर देते हैं कि 'वाह-वाह' की ध्वनि से वातावरण गूँज उठता है किन्तु उनका कुछ भी स्थायी प्रभाव नहीं होता। स्वामी जी की भाषण शैली अपनी ही निराली है। आप मनन करते हुए बोलेंगे, लेकिन वह सब अत्यन्त भावपूर्ण ओज-रस परिपूरित होता है। हजारों की भीड़ में निस्तब्धता पूर्वक सुनना और बोलते समय क्या मजाल है कि कोई शोरगुल या शान्ति-भंग हो। शब्दों की भावप्रवणता, भाषा की एकरसता, मधुरता और प्रवाह तथा हृदय के अन्तरतम से निकले, अनुभूतात्मक विचार आप के भाषण में ओज माधुर्य व शान्ति लाते हैं। श्रोता उन्हीं विचारों में लीन हो जाते हैं तथा भाषण के बाद वे शब्द उस रस-रंग का नयी प्रेरणा देते हैं। श्रोता को वे कर्तव्य की वेदी पर जुट जाने का आह्वान करते हैं।

स्वामी जी के भाषणों से अनुभव की पुष्टि होती है। आप गंभीर से गंभीर विषयों का सरल, सरस एवम् प्रसादमयी भाषा और स्पष्ट

शैली में इतना सुन्दरता के साथ प्रस्तुत करते हैं कि वह श्रोताओं के हृदय में एकत्रित शङ्काओं का समाधान करता हुआ, एक नवीन पथ की ओर संकेत करता हुआ होता है। दैनिक जीवन की समस्याओं, हिन्दु धर्मशास्त्र और संस्कृति, विद्यार्थी जीवन की सफलता, भगवद्-प्राप्ति का सीधा उपाय, योग का अनुसरण, कर्तव्य, धर्म, अनुशासन, नियमितता, संयम, आदि विषयों पर जिनका क्रियात्मक जीवन से सम्बन्ध है, अधिकार पूर्वक भाषण करते हैं। अपने भाषणों में आपका सदैव यही ध्यान रहता है कि वे साधारण मनुष्य का पथ-दर्शन करें, संसार के विभिन्न व्यापारों में फंसा व्यक्ति अपनी स्थिति पर विचार करे और उत्तम कर्म की ओर अग्रसर हो। आप का उद्देश्य यही रहता है कि मनुष्य अपने को पहचाने, अपने अन्दर निहित शक्ति का आभास पावे और उत्तम आचरण द्वारा उत्तम आदर्श स्थापित करे तथा इसी जीवन में मुक्ति पाने के पथ का अनुगमन करे।

भाषणों की विशेषता

स्वामी जी की पुस्तकों की ही भांति भाषणों में विद्वत्ता का प्रदर्शन नहीं होता, साधकों के जीवन की उन्नति करने के लिए क्रियात्मक साधनों का उन में भली प्रकार समावेश होता है। मनुष्य की हृद्गत भावनाओं को आपके भाषणों से आत्म-निरीक्षण का अवसर मिलता है, उसके चाल-चलन में वे परिवर्त्तन लाते हैं और मन। पथ-दर्शन पाता है। वह व्यक्ति आध्यात्मिकता की धारा में बहने लगता है। जड़ता के समर्थक भौतिकवादियों और नास्तिकों के विचार आपका भाषण सुन कर नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं और उन्हें अनुभव होने लगता है कि अब तक वे एक गलत मार्ग पर चल रहे थे। बुद्धिजीवियों को कर्मयोग के पथ पर चलने का संदेश मिला है।

स्वामी जी के भाषणों में गंभीर विषय का सीधे-सादे शब्दों में प्रतिपादन तो होता ही है, यथा-प्रसंग और हास्य रस लाकर उसमें रोचकता भी आप उत्पन्न कर देते हैं, तथापि केवल मनोरंजन के लिए वे नहीं होते। उनमें जीवन का संदेश निहित रहता है। यदि कभी कोई व्यक्ति कोने में बैठा हुआ दूसरे ही ध्यान में मग्न रहता है तो आप 'ओ३म' का गंभीर घोष करके आगे बढ़ते हैं। उस व्यक्ति का ध्यान उधर ही आकृष्ट होजाता है, छोटे बच्चे भी चुप होकर स्वामी जी को निहारने लगते हैं। आपका गंभीर व्यक्तित्व भाषण को और भी प्रभावशाली बना देता है।

संसार जब विज्ञान की बातें करता है। जब ट्रूमैन-एटली-स्टालिन और एटम बम-हाइड्रोजन बम की चर्चा लोगों के हरदम मुख पर रहती है — स्वामी जी विज्ञानों के विज्ञान-आध्यात्मिक ज्ञान की बातें करते हैं और एटम से भी अधिक प्रभावशाली 'ओ३म्' की व्याख्या करते हैं। इस अक्षर में इतनी शक्ति है कि यदि पूर्ण-विश्वास के साथ इसका उच्चार किया जाय तो विश्व की बड़ी से बड़ी शक्ति को यह हिला सकता है, पत्थर में भी प्राण फूँक सकता है। दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक घण्टों खड़े रहकर अपने विषय पर बोलते हैं और सम्बन्धित विषय की काफी सामग्री देते हैं। किन्तु वह मात्र बौद्धिक मनोरंजन होता है। उनके भाषणों में मनुष्य की सांसारिक वृत्तियों का रुख टालने की शक्ति नहीं होती। अनेक दार्शनिकों के उद्धरण व सफलतापूर्वक अपने भाषण में दे सकेंगे, पर उनमें इतनी शक्ति नहीं होती कि श्रोता को सत्य के पथ पर चलने के लिए, निष्काम भाव में, आध्यात्मिक साधना के लिए प्रेरित कर सकें। आध्यात्मिक चेतना, शाश्वत शान्ति और अमरत्व के लिए इसकी अपेक्षा है और स्वामी शिवानन्द का भाषण ही इसके लिए अमृतधारा है।

जिन्हें साधना—सप्ताह (अप्रैल या दिसम्बर) में सम्मिलित होने का अवसर मिला है अथवा अन्य पर्व स्वामी जी के भाषण सुनने को मिले हैं, वे कह सकते हैं कि स्वामी शिवानन्द जी की वक्तृताएं प्रेरणा के अखिल स्रोत हैं। इन पंक्तियों के लेखक को ऐसा अवसर सर्वप्रथम सन् १९४५ में मिला था। आपके भाषणों में आर्षवाक्यों की फुलझड़ियाँ बरसती हैं जो हृदय पर सीधा असर करती हैं। स्वामी जी के भाषणों के पीछे आपकी सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य की अथक-साधना छिपी रहती है। आपकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आप जो कहते हैं वही करते हैं और वही करते हैं जो कहते हैं। भाषण का प्रारम्भ—'अमर आत्माओ' के सम्बोधन से अत्यन्त मार्मिक शैली में होता है और वही तेजस्विता, ओज व प्रवाह, मध्य में तथा अन्त तक बना रहता है। स्वामी जी ने 'अखिल भारतीय यात्रा' के अवसर पर २३ अक्टूबर १९५० को हैदराबाद में दस हजार व्यक्तियों के मध्य जो भाषण दिया था, उस के कुछ अंश देखिए —

'आज ही अभी, आध्यात्मिक दौलत के लिए प्रयत्न प्रारम्भ कर दो। कृपा कर उठो, जागो और सोओ मत। यह मन बड़ा चंचल है। प्रतिक्षण यह शरारत मन तुम्हें धोखा देता है। इसकी गतिविधि पर बुद्धिमत्तापूर्ण विचार करो। यदि इस मन को ज्ञान का प्रकाश दिखा दो इसकी चंचलता वैसे ही नष्ट हो जायगी, जैसे नीरो (रोशनी) के सामने अंधेरा।

"आध्यात्मिक पथ पर उन्नति के लिए, जीवन को स्वस्थ व सुखी बनाने के लिए मनोवैज्ञानिक बनना अत्यावश्यकीय है। बिगड़ी हुई मानसिक स्थिति ही अधिकांश शारीरिक कष्टों का कारण है।

नियमित जीवन बिताओ। श्रम के निश्चित घण्टे और निश्चित विश्राम आवश्यक है, तब ही तुम स्वस्थ एवं सुखी हो सकोगे तथा साधना का समय भी मिलेगा तभी तुम्हें अपने लिए रात में सत्संग मिल सकेगी। रात को १० बजे सोओ और प्रातः ४ बजे उठो, तुम्हारे स्नायु बलवान होंगे। छुट्टियों के दिन मनोरंजन के नाम पर शक्ति का ह्रास करके, स्नायविक दुर्बलता को न आने दो। यदि तुम छुट्टी के दिन मौन रखो, सारा समय साधना में लगाओ तो मात्र छः महीने में मेरे कथन की सत्यता सिद्ध हो जायगा।

"गप-शप को बन्द करो और शक्ति सञ्चित होगी। मानसिक शांति और स्वास्थ्य के लिए निरर्थक कार्यों में तल्लीन न हो। प्रत्येक कार्य का विश्लेषण कर सोचो कि 'क्या वह जीवनोद्देश्य की प्राप्ति में सहायक है' और यदि नहीं तो उससे दूर ही रहो। चिन्ता स्नायुशक्ति के ह्रास का सब से बड़ा कारण है। भक्त या साधक को अपने भगवान में विश्वास होता है, इसलिए वह कभी चिन्ता न करेगा। वह हमेशा प्रसन्न, निर्भीक और निश्चिन्त रहता है और उसे आत्म विश्वास होता है।

"क्रोध से बचो। १० मिनट के क्रोध में दो दिन निरन्तर रह कर हल चलाने से अधिक शक्ति नष्ट होती है। शांत बनो। अपने अन्दर झांको। दूसरों के उत्कर्ष की प्रशंसा करो तुम्हारा द्वेष नहीं रहेगा। द्वेष हीनभावना को पैदा कर स्वास्थ्य और मन को गिराता है। भूतकाल को भूल कर, भविष्य की चिंता न कर के वर्तमान को देखो—भविष्य सुन्दर ही होगा। असावधान व्यक्ति समय को यों ही गुजार देता है और फिर कार्य के लिए उसे समय नहीं मिलता।

"कार्य कितना भी कठिन क्यों न हो, यदि तुम्हें पूर्ण करना है तो हाथ में ले लो और अपनी सारी शक्ति उस पर केन्द्रित कर दो। कार्य कोई कठिन नहीं होता। मन पर काबू करो। अपने निर्णय शीघ्र ही कर लिया करो। अपने कष्ट दूसरों को न दो। शिकायत की आदत त्याग दो, नहीं तो शिकायतें जिन्दगी बन जायगी। अपनी असफलता का दोष दूसरे का न दो। अपने दृष्टिकोण में, विचारने के ढंग में परिवर्तन कर देना कि अपने नियन्त्रण से बाहर के कार्यों को लेने और पूरा कर देने में ही बुद्धिमत्ता है। अपनी मानसिक शक्ति को केन्द्रित करो और उसे ह्रास होने से बचाओ, अन्तर्शक्तियों को जाग्रत कर, आत्मानुभव प्राप्त करो।"

संकीर्तन महिमा

"भगवद् प्राप्ति का सब से सस्ता, सब से सरल, निश्चयात्मक और शीघ्रतम तरीका संकीर्तन ही है। इस लिए कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने की आवश्यकता नहीं। कीर्तन करने से, भगवन्नाम की मन्त्र शक्ति से कुण्डलिनी अपने आप जाग उठेगी। संकीर्तन किस प्रकार पुरान कुसंस्कारों को बदल डालता है, किस प्रकार मानसिक द्रव्य को बदलता है। आसुरी स्वभाव को किस प्रकार शुद्ध स्वभाव में परिणत कर देता है और कैसे यह भक्त को भगवान का साक्षात्कार करा देता है, यह भारी रहस्य है। किन्तु तार्किक तर्क से संकीर्तन की क्रियाविधि को नहीं समझ सकते।"

"प्रत्येक शब्द में महान शक्ति होती है। गरम पकौड़ी का नाम लेते ही मुँह में पानी भर जाता है। विष्ठा का नाम लेते ही उबकाई आती है। जब साधारण शब्दों की यह बात है तो परमात्मा के पवित्र

नामों का तो कहना ही क्या है। भगवान का प्रत्येक नाम दिव्य शक्तियों और अमृत से पूर्ण है। भगवान के नाम में विचित्र ही शक्ति है। इसलिए भाव और प्रेम के साथ कीर्तन किया जाता है। कीर्तन से मल, विक्षेप और आवरण नष्ट होते हैं। राम-राम कहने से मन एकाग्र हो जाता है। यह निम्नलयता में लीन हो जाता और हृदय में आपको भगवान का दर्शन कराता है। भगवान का नाम भगवान के समान ही कल्याणकारी है। भगवान चैतन्य हैं और इसी प्रकार भगवान का नाम भी चैतन्य है।"

"स्वर या वर्ण से विहीन मन्त्र के उच्चारण से अनिष्ट फल की सम्भावना हो जाती है। परन्तु भगवन्नाम में यह बात नहीं है। ये नाम किसी प्रकार गाये जा सकते हैं। 'उल्टा नाम जपत जग जाना। वालमीकि भये ब्रह्म समाना।' सारा संसार जानता है कि ऋषि वाल्मीकि जी पहले रत्नाकर नाम के डाकू थे। राम नाम उल्टा 'मरा-मरा' जपते जपते ब्रह्मस्वरूप हो गये।

राम राम जपते रहो, रीझ भजो या खीज।
उलटा पुलटा ऊपजे, जस धरति में बीज॥

इकट्ठे बैठकर भगवान के नामों को एक स्वर और एक लय से शुद्ध भाव से गाने को ही 'संकीर्तन' कहते हैं। यह यथार्थ विज्ञान है, क्योंकि यह शीघ्र ही मन को उन्नत करता है और भाव को उच्चतम अवस्था तक बढ़ा देता है। अधिकांश व्यक्तियों के लिए 'संकीर्तन योग' या 'जप योग' ही समीचीन है।

कीर्तन-महामन्त्र

प्रभु से एकाकारता स्थापित करने के लिए व मन की शुद्धि के संकीर्तन का बहुत माहात्म्य है। इसीलिए स्वामी जी का प्रिय कीर्तन

महामंत्र-कीर्तन है :—

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे,
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे,

यही कारण है कि शिवानन्दाश्रम के भव्य 'भजन-भवन' में ३-१२-१९४३ से विश्व शान्ति के लिए अखण्ड महामंत्र का कीर्तन चल रहा है। विगत ७ वर्ष से यह कीर्तन निरन्तर दिन-रात होता रहा है। भक्ति विह्वल हो मीरा गा उठी थी—'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई' उसी भाँति स्वामी जी मधुर लय-ध्वनि में गाते हैं :—

'अजरानन्द, अमरानन्द, अचलानन्द हूँ,
हर हाल में अलमस्त, सच्चिदानन्द हूँ।'

और :—

'थोड़ा खाओ, थोड़ा पीओ, थोड़ा बोलो, थोड़ी करो सेवा, थोड़ा आसन, थोड़ा प्राणायाम, थोड़ा भजन, थोड़ा निदिध्यासन।

साधारण मनुष्य को शुद्ध शास्त्रीय सिद्धान्त मधुर मुरीली तान में गाकर सुनाए हुए अच्छी प्रकार समझ में आते हैं। गायन और सकीर्तन के द्वारा, वह आत्मा के सगीत में लीन हो जाता है। पूर्वकाल के ऋषियों ने अपनी श्रेष्ठ रचनायें पद्य अथवा संगीत रूप में लिखी हैं। रामायण, महाभारत, भागवत और दूसरे धर्मग्रंथ पद्यात्मक हैं। उन्हें अच्छी प्रकार गाया भी जा सकता है। स्वामी जी ने इसी को लक्ष्य में रख कर पद्यात्मक पुस्तकों की भी रचना की है। 'दिव्य जीवन भजनावली' में स्वामी जी द्वारा सकीर्तन, पर्यटन में गाये जाने वाले कीर्तन और

भजनों का संग्रह किया गया है। इसके अतिरिक्त "रामायणसौन्दर्य", "भक्तिमाला", "गीता-सार", "ज्ञान-ज्योति", "सम्पत्तिशाली कैसे बनें", "प्रसन्नता, आनन्द व अमरता", "ज्ञान के मोती", "विनोद में दर्शन शास्त्र", "योग और दर्शन-संगीत में", "पुष्पाञ्जली", "वैराग्यमाला", "वेदान्त-ज्योति", "ज्ञान विनोद में", "आनन्द की लहरें" आदि अनेक पुस्तकें कविताओं में ही लिखी गई हैं। इस प्रकार आपने कवि-हृदय भी पाया है।

स्वामी जी कीर्तन करते हुए आनन्द में मग्न हो जाते हैं और साथ ही श्रोताओं को, जो साथ ही कीर्तन करते हैं—आनन्द की धारा में बहा देते हैं। आपकी स्वर लहरी बड़ी मधुर और सुरीली होने से आप सर्वदा अपने श्रोताओं के हृदयों को मन मुग्ध बना देते हैं। आप अपने कीर्तन में भाषा की ओर विशेष ध्यान न देकर— अंग्रेजी, हिन्दी और संस्कृत के मिले-जुले भजनों में दार्शनिक सिद्धान्तों, साधना सम्बन्धी उपदेशों, भक्ति और वैराग्य विषयक तत्वों को, श्रोताओं को सरलता से समझाने में विशेष प्रयत्न करते हैं। और यही कारण है कि आपकी शिष्य मण्डली और अभिभावक वर्ग तथा अन्य व्यक्ति आपके श्रीमुख से इन भजनों और उपदेशों को सुनने के लिए सदा लालायित रहते हैं।

ग्रामोफोन रेकार्ड

स्वामी जी के हृदय के उद्गार, आपका अगाध ज्ञान, सरल और नवीन उपदेश शैली, दार्शनिक शब्दों तथा दृष्टान्तों का चुनाव आपके भजनों की विशेषता है। इन भजनों को अपने ढंग से गाया जा सकता

है। इनकी विशेष राग रागिनी की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। जिन सज्जनों ने एक दो बार भी श्रीस्वामी जी के श्रीमुख से इन भजनों को सुना है, उनके लिए इनका गाना कठिन नहीं। आपके कीर्तन व भजनों के रिकार्ड भी तैयार हो चुके हैं और उनकी सहायता से भी इनको गाना सुगम हो गया है। इस आश्रम में भाषण और भजन रिकार्ड करने की मशीन है और स्वामी जी महाराज के भाषण व कीर्तन भजनों के अनेक रिकार्ड बन चुके हैं। आपने पद्यात्मक रूप से, अपनी शैली में रामायण व गीता के सार को गाया है, आध्यात्मिक भाषणों के रिकार्ड बने हैं।

अवकाश के समय भजन व कीर्तन गाओ, इससे प्रेरणा मिलेगी। स्वामी जी के ग्रामोफोन रिकार्ड बजा कर सैकड़ों और हजारों मील दूर बैठ कर स्वामी जी की वाणी का रसास्वादन किया जा सकता है। इनसे आप को स्मरण रहेगा कि क्या क्या साधना करनी है और आप में, उन में से किस किस साधना में त्रुटि है तथा आपको उक्त त्रुटि के परिष्कार की प्रेरणा मिलेगी। जब कभी आप निष्ठा की कमी, आलस्यवश या अवकाश के अभाव से दैनिक साधना में प्रमाद करोगे तो स्वामी जी के भजन और महामन्त्र का कीर्तन आप को अपने कर्तव्य का स्मरण करावेंगे। हर एक भजन के साथ भगवान के नाम भी जुड़े हुए हैं और उनकी पुनरुक्ति होती है, इस प्रकार उनका गाना भी एक प्रकार का साधन ही है।

श्री स्वामी जी का सुप्रसिद्ध कर्मयोगी का गीत सुनिए:—

हरी के प्रेमी हरी हरी बोलो
आओ प्यारे मिल कर गाओ

हरि चरण में ध्यान लगाओ
दुख में सुख में हरि हरि बोलो।
अभिमान त्यागो, सेवा करो।
नारायण नारायण नारायण नारायण
ब्राह्मण सन्यासी अभिमान त्यागो
स्त्री पुरुष का अभिमान त्यागो
डाक्टर जज का अभिमान त्यागो
राजा जमींदार अभिमान त्यागो
पण्डित वैज्ञानिक अभिमान त्यागो
प्रोफेसर इञ्जीनियर अभिमान त्यागो
कलेक्टर तहसीलदार अभिमान त्यागो
वैराग्य त्याग का अभिमान त्यागो
त्याग कर्त्तापन का अभिमान त्यागो।
नारायण नारायण नारायण नारायण
सुमरन सदा करो हरि हरि हरि हरि
कीर्तन सदा करो सीताराम राधेश्याम
हर एक मुख में भगवान देखो।
अपनी वस्तु दूसरों को भी बाटो।
अनुकूलता मिल बढ़ाओ
नारायण भाव से सेवा सदा करो
निमित्त कारण सदा विचारो

अहंकार त्याग कर कर्म करो सब
निमित्त भावों को बसाओ मन में
कर्म फलों की आशा त्यागो
नारायण नारायण नारायण नारायण
सदा कर्म-फल प्रभु को सौंपो
रक्खो मन की समता समत्व दृष्टि
निष्काम-सेवा से शुद्ध चित्त करो
तब ही आप को आत्म-ज्ञान मिले
हरि के प्रेमी हरी हरी बोलो
आओ प्यारे मिल कर गाओ

अष्टम अध्याय

दिनचर्या व अनुपम कार्य-क्षमता

साधना-काल में

—०:०:०—

स्वर्गाश्रम में साधना करते हुए भी स्वामी जी का दैनिक कार्य-क्रम बहुत संयमित तथा नियमित था। नित्य प्रति ब्रह्म-मुहूर्त में उठकर आप जोर-जोर से भगवन्नाम लेते हुए गंगातट की ओर स्नान करने चलते। सभी सन्यासियों के लिए यह समय-निर्देशन का कार्य करता। शौच, स्नानादि से निवृत्त होकर आप अपनी कुटिया में लौट

याते और ८६ बजे तक जप एवम् ध्यान मे सारा समय लगाते। इस के बाद आप जनता की सेवा शुश्रूषा और चिकित्सा कार्य में लग जाते। कभी कभी तो इस कार्य मे दो बज जाते और तत्पश्चात् कमण्डल लेकर भिक्षा मागने के लिए क्षेत्र की ओर चल पडते। भोजनान्तर तनिक विश्राम लेकर आपकी लेखनी चल उठती। शाम को अन्य साधुओ मे मिलकर दु ख सुख की कथा गाथा सुनते और कभी कभी उनको धार्मिक उपाख्यान भी सुनाते। रात्रि को पुन जप-तप, अध्ययन, मनन का दौर प्रारम्भ होजाता।

कैलास की यात्रा से लौटने के बाद, यानी सन् १६३१ के बाद मे, 'आनन्द कुटीर' म आकर आप का जीवन और भी व्यस्त हो चला। अब अत्यधिक जप–ध्यान–साधना का स्थान लोक–कल्याणकारी कर्म–भावना ने लेलिया। आप जनता के अधिक–से अधिक हित सम्पादन म लग गए। प्रात तीन बजे शैय्या का परित्याग कर प्रार्थना, भजन–कीर्तन और मनन द्वारा मानसिक शुद्धि का कार्य भी अबाध गति से चलता रहा। आसन और प्राणायाम का क्रम भी शारीरिक उन्नति के लिए रुका नहीं। शीर्षासन आप को विशेष प्रिय है। इसके बाद लिखने के कार्य मे व्यस्त होजाते, बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय आपकी लेखनी चलती रहती और तब सर्व जन सुखाय आप—१० बजे के अनन्तर देश और विदेश के साधकों से पत्र–व्यवहार, आश्रमवासियों के कार्य विभाजन, रोगियों की सेवा, औषधालय में बैठ कर दवा देना आदि कार्य होता। प्रकाशित साहित्य मुफ्त भेजने वाले को कुछ हिदायतें, रसोईघर मे भोजनाध्यक्ष को कुछ सुझाव, मिलने आने वाले यात्रियों व दर्शनार्थियों से बात–चीत अथवा कोई कीर्तन गुनगुनाते रहना। इसके बाद कुछ समय "कैवल्य गुहा" में शान्ति से गुजारना,

शिष्य वर्ग की साधना में कुछ सुधार, बाहर से आने वाले साधकों को मनन या कुछ उपदेश देकर, बच्चों के स्कूल में जा पहुँचना तथा उन्हें कीर्तन सिखाना व उन में संक्षिप्त भाषण करना। 'भजन भवन' का दौड़ते हुए चक्कर लगाकर, अपनी कुटीर में जा पहुँचना। भोजन के बाद थोड़ा विश्राम और कलम का चल पड़ना तथा पुनः वही कार्य-क्रम चालू हो जाता। रात्रि को कीर्तन की मधुर लय में मस्त मग्न हो जाते।

वर्तमान दिनचर्या

श्री स्वामी जी ने अपनी आत्मकथा (शिवगीता) में लिखा है कि आपकी दिनचर्या भगवान बुद्ध की-सी है। हमेशा एकान्त में रहना, नियमित रूप से आसन व व्यायाम करना—शीर्षासन, सर्वांगासन तथा अन्य आसन तथा प्राणायाम करना—जप, कीर्तन और मनन करना, लिखना, धार्मिक, पुनीत पुस्तकों का अध्ययन करना। थोड़े समय के लिए एकान्त कमरे से कार्य, सेवा व मिलने के लिए बाहर निकलना। हमेशा किसी कार्य में व्यस्त रहना और एक मिनट भी व्यर्थ नष्ट न करना थोड़ा बोलना अधिक सोचना, और अधिक मनन करना तथा उससे भी अधिक सेवा-कार्य करना। हर समय आत्मा की पूजा करना तथा दूसरों की भलाई के लिए ही कार्य करना, आपके जीवन का मुख्य क्रम है।

प्रात जल्दी ही उठ कर, नित्यकर्म से निवृत्त हो कर आप आसन प्राणायाम और निदिध्यासन में लग जाते हैं। आप का कथन भी है कि यौगिक क्रियाओं के अभ्यास में नियमित रहना चाहिए और इसमें

कभी भूल न हो। यदि प्रात आसनादि न हो सके तो १०–११ बजे कर लेने चाहिए। मनन के लिए आप कई बार समय देते हैं। लिखने, पढ़ने और भोजन से पूर्व आप कुछ समय मनन मे लगाते हैं। टहलते समय, गगा जी में स्नान करते हुए और शाम के वक्त गगा के किनारे एक पत्थर पर बैठ कर आप मनन करते हैं। आप कहते हैं कि मनन तो प्रात उठने से लेकर रात्रि को सोने तक चलते ही रहना चाहिए, यह साधना का सबसे आसान और आकर्षक रूप है तथा विनाशक विचारों से दूर रखता है। मनन बन्द कमरे में बैठ कर इष्ट देवता का ध्यान करने से ही नहीं होता, जप और मनन तो चलते हुए, कार्यालय में लिखते हुए, नहाते हुए, खाना खाते हुए या बातें करते हुए अथवा तागे में या रेल में होते हो रहना चाहिये। ६ बजते ही आप "शिवानन्द हारक जयन्ती भवन" में (जहा शिवानन्द प्रकाशन सस्थान, 'दिव्य जीवन' पत्रिका आदि का कार्यालय है) आजाते हैं। प्रतिदिन वहाँ गीता पर एक घण्टा प्रवचन स्वामी गीतानन्द जी करते हैं, जो ६ से १० तक होता है। आप यदा–कदा उसमे भी सम्मिलित होते हैं, नहीं तो अपने स्थान पर बैठ कर किसी पुस्तक का पारायण करते रहते हैं अथवा पत्रों के उत्तर लिखाते हैं। वहाँ आप १०॥ बजे और कभी कभी ११ बज या उसके बाद तक ठहरते हैं तथा साधकों और दर्शनार्थियों से मिलते हैं उनकी समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं और आश्रम की गति–विधि को सुसचालित करते हैं।

लगभग १०॥ बजे भोजन की पहली पंक्ति की घण्टी बजती है और सभी आश्रम वासी भोजनार्थ चले जाते हैं। उसके बाद ही आप अपने कुटीर में पधारते हैं। फल और दूध का भोजन लेते हैं तथा किंचित विश्राम के अनन्तर लिखने का क्रम चालू हो जाता है। हम

पीछे लिख चुके हैं कि किस प्रकार आप अपने प्रतिभा-प्रसार से एक ही साथ ३-४ पुस्तकें और वे भी विविध विषयक, लिखने में समर्थ होते हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के लिये लेख लिखते हैं। डाक्टर भी आप का जब-तब निरीक्षण का श्रम करते हैं और यही आपका अनुशासन है। आपका दैनिक जीवन अत्यन्त व्यस्त है और वह भी दूसरों के लिए। आज जब दुनिया स्वार्थपरायणता में तल्लीन है, स्वामी शिवानन्द अपने जीवन का प्रत्येक क्षण दूसरों की भलाई में व्यतीत करते हैं, दूसरों की सेवा करने के साधनों पर आप सोचते हैं, सेवा का अधिकतम वातावरण तैयार करते हैं अपने शिष्य वर्ग को सेवा-कार्य में लगाये रखते हैं और यही कहते कि निष्काम सेवा ही कर्म योग है, सर्वश्रेष्ठ योग है और मुक्ति का साधन-सच्चा पथ है।

शाम को लगभग ५ बजे, स्वामी जी पुनः दफ्तर अथवा भवन में आ जाते हैं। इस समय तो दर्शनार्थियों का ताँता लगा रहता है। देश और विदेशों में आज 'दिव्य जीवन संघ' की सैकड़ों शाखाएँ हैं और हजारों-लाखों ही साधक स्वामी जी के बताये पथ का अनुसरण कर रहे हैं। महीने में कितने ही हजार साधकों को आप पत्र भेजते हैं। नित्य ही कोई न कोई ऐसे साधक, समीप या दूर से स्वामी जी के दर्शनार्थ या प्रत्यक्ष शंका-निवारणार्थ आते रहते हैं। स्वामी जी सभी से उनका परिचय पूछते हैं। सब को दिव्य जीवन की संदेशात्मक विज्ञप्ति दिखलाते हैं— अंग्रेजी जानने वालों को अंग्रेजी में, हिन्दी, तामिल तेलुगु या अन्य मातृभाषाओं वालों को उन-उन भाषाओं में। 'दिव्य जीवन' पत्रिकाओं का नमूनाङ्क भी भेंट करते हैं और योग्य व्यक्तियों को अपनी पुस्तक भी। अपनी पुस्तकें भेंट करने में स्वामी जी की प्रसन्नता शैली है आप साधक की उसकी रुचि का विषय पूछते हैं और उस विषय

की ही एक या दो या अधिक पुस्तक अपने आशीर्वाद सहित पुस्तक पर अपने हाथ से लिख कर साधक को भेंट करेंगे।

शाम के वक्त ही स्वामी जी नित्य की डाक देखते हैं। प्रति दिन आपके पास साधकों और जिज्ञासुओं के दर्जनों ही पत्र अनेक भाषाओं में आते हैं। आप उन्हें, आवश्यक, अत्यावश्यक और तुरन्त जवाब देने वाले पत्रों में विभाजित कर लेते हैं। तुरन्त उत्तर देने वालों को तत्काल ही पत्र लिखा देते हैं या स्वयं ही अपने हाथ से लिखते हैं। इसी प्रकार अन्य पत्रों का भी उत्तर जाता है। स्वामी जी की पत्र लेखन शैली की अपनी विशिष्टता है। आप उत्तर देने वाले पत्रों में पूछे गए प्रश्नों पर पढ़ते हुए ही लाल व नीली पेन्सिल से निशान बना लेते हैं और इसी लिए साधक को अपने पत्र का पूरा-पूरा उत्तर पाकर अतीव प्रसन्नता व संतोष की प्राप्ति होती है मुमुक्षुओं को आप अपनी पुस्तकें भी आशीर्वाद सहित भेंट करते हैं। प्रायः नित्य ही दर्जनों पैकेट इस प्रकार विश्व भर के साधकों और जिज्ञासुओं को भेंट में जाते हैं और स्वामी जी पोस्ट आफिस में जाने से पूर्व उनका पता व पैकिंग देखते हैं तथा एक के बाद अन्य पैकेट देखते हैं तो 'ओ३म' कहते जाते हैं, जहाँ पते आदि में कोई त्रुटि हुई तो तुरन्त निर्देश करते हैं आप की स्मरण-शक्ति अब भी बहुत तेज है। इसका एक उदाहरण सुनिये— १७ सितम्बर १९५० को जब आप 'अखिल भारतीय यात्रा' करते हुए पटना पहुँचे तो इलाहाबाद के भूतपूर्व न्यायाधीश श्री कमलाकान्त वर्मा आप से मिलने आये। उनके आते ही स्वामी जी ने कहा 'आप ने १० वर्ष पूर्व मुझे एक पत्र लिखा था' और वर्मा जी ने उसका अनुमोदन किया।

स्वामी जी गोष्ठी में काम लेना जानते हैं और कोई भी सेवा कार्य कम समय में अधिक योग्यता पूर्वक करने में अत्यन्त समर्थ होते हैं। एक ही बार में ८–६ व्यक्तियों से विभिन्न कार्यों के बारे में पूछते हैं, निर्देश करते हैं और कार्य करा लेते हैं। स्वामी जी सदैव ही कहते हैं— अपने हाथ से कार्य करो और मन से भगवान का स्मरण करते रहो। स्वामी जी पुकारते हैं :—

००० ओ३म, सिकन्दर, यहाँ आओ, यह उत्तर लिख लो और टाइप करके अभी मुझे दो।

००० ओ३म, निजनाथ स्वामी जी, अपनी गऊओं को ठण्ड से बचाने के लिए सिलने को दिये गए जूट के बोरों का क्या हुआ? कृपया दर्जी के पास जावें और आज ही सिलकर, कमूर्तिश्वरा स्थित अपने बगीचे में पहुँचा दिये जायें।

००० अजी, चैतन्य, यहाँ आओ। मनुष्य का वास्तविक सौन्दर्य तो आन्तरिक है। बालों की छटनी न कराओ। जाओ और सब मुण्डवा डालो। नाई प्रतीक्षा कर रहा है। बाल कटा कर मेरे पास आना।

००० शिवशान जी, यह लेख प्रेस में देना है, इसे पढ़ लीजिये और बताइये घटाना–बढ़ाना तो नहीं है?

००० हरिकृष्ण! वह लिफाफा मुझे दो, जिस पर पता करके डाकघर में भेजने को हमने कहा था। मैंने पत्र के साथ बुलेटिन सलग्न करने को कहा था, क्या ऐसा कर दिया? तुम 'ना' करते हो। स्वयं मेरा भी यही ख्याल था। वह लिफाफा और बुलेटिन लाओ। (फिर स्वामीजी लिफाफा खोलकर बुलेटिन रखते हैं, चिपकाते हैं और डाकघर में ले जाते हैं।)

❁❁❁ श्रीनिवास राव, क्या आपने वह पता, जो कल हमने दिया था, सम्मानित सूची में दर्ज कर लिया? [श्रीनिवास राव जी : हां, स्वामीजी, मैंने तदनुसार कर लिया है।]

❁❁❁ ओ३म्, कैलाशानन्द, क्या आप कल रामाश्रम में प्रसाद दे आये थे? [*कैलाश — जी हाँ, मैं प्रसाद दे आया था।*]

❁❁❁ ओ३म्, अरुणजी, उस कोढी को जूते देने के लिए आप से कहा था? नहीं दिये, यह अच्छा रहा! मैं जानता हूँ कि आप चौथी बार भी भूल जायेंगे। अब उन्हें शाश्वत स्वामी को दे दो और वह उचित व्यक्ति को दे देंगे।

इसी प्रकार स्वामीजी कार्यालय में बैठे हुए प्रश्नोत्तर में ही शिक्षा भी देंगे। विनोद में कभी ऐसे प्रश्न भी पूछ बैठेंगे कि हास्यरसधारा फूट पड़ेगी, सभी खिलखिला उठेंगे। बाहर से आने वाले साधकों के जीवन क्रम, दुःख-सुख की कथा पूछेंगे, डाक्टर को बुलाकर सुझाव देंगे। बद्रीनाथ या गंगोत्तरी जाने वाले अपने साधक से कहेंगे कि लौटते हुए, आश्रम में ही ठहरें, आदि, आदि।

शाम को श्रीस्वामी जी ६॥ बजे तक कार्यालय में बैठ कर पत्र व्यवहार तथा अन्य कार्य करते हैं, कभी कभी तो ७ या ७॥ भी बज जाते हैं। इस काल में आप कभी भी निठल्ले नहीं रहते। 'दिव्य-जीवन' पत्रिका के परिवर्तन में आने वाले *अखबार-पत्रिकाएँ प्राय* नित्य ही सब देख जाते हैं, कोई लेख अध्ययन के योग्य समझा तो उस पत्र-पत्रिका को अलग रख लेते हैं और अपनी कुटीर में ले जायेंगे। शाम को स्नान, ध्यान से निवृत्त होकर ठीक ६ बजे पुनः भजन के लिए उपस्थित होते हैं। ज्योंही ६ के घण्टे बजे, *आप स्वामीजी*

को आते हुए देख लीजिए। यह नियमितता आपके जीवन में सफलता का रहस्य है। भजन 'हरि कृपा भवन' के सामने के विस्तृत छत पर होता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम, मुरलीमनोहर और उमापति शंकर की तस्वीरें मंच पर नित्य ही सुसज्जित की जाती है। पहले से ही भागवत या रामायण का पाठ होता है। एक साधक विष्णु स्तोत्र पढ़ता है, हार्मोनियम की मधुर लय के साथ भजन होते हैं, किसी का भाषण होता है और तत्पश्चात स्वामी जी कीर्तन करते हैं। स्वामी जी नित्य ही कीर्तन करते हैं। और 'ओ३म' की ध्वनि से समस्त वातावरण गूँज उठता है। कभी मंत्र मात्र कीर्तन होता है तो कभी कोई अन्य। आरती के अनन्तर प्रसाद वितरित होता है। और स्वामी जी किसी न किसी विषय पर व्यक्तिगत रूप से चर्चा करते हैं, प्राय सब के बारे में पूछते हैं, अतिथियों के लिए विशेष हिदायतें देते हैं और १०॥ बजे के लगभग या कभी कुछ देर से अपनी कुटिया को जाते हैं। फिर मनन, अध्ययन व संक्षिप्त निद्रा।

बहुमुखी प्रतिभा

स्वामी जी का जीवन-क्रम देखने से स्पष्ट होता है कि आप में विभिन्न प्रतिभाओं का अपूर्व सम्मिलन होगया है। आप के जीवन को देख कर ईर्ष्या होती है। डा० भीखनलाल आत्रेय ने आपके लिए ठीक ही कहा है कि "स्वामी जी ने जीवन-दर्शन को कार्य में रूपान्तरित कर दिया है।" स्नेह, सेवा और साधना की आप साकार प्रतिमा हैं। यदि एक शब्द में कहा जाय तो 'स्नेह' आप के जीवन की कुंजी है, आपने सब से स्नेह करना सीखा है, आप ने अब तक स्नेह-साधना में अपना जीवन लगाया, आप का जीवन 'स्नेह' और जीवन का लक्ष्य स्नेह है तथा इस स्नेह धारा को अखण्ड रूप से प्रवाहित करने का आप का

मधुर स्वप्न है तथा इस भूमि पर अनेक बार जन्म लेकर आगे भी आप विश्व पर स्नेह-वृष्टि करना चाहते हैं, विश्व को स्नेह के बन्धन में बाँधना चाहते हैं। यह स्नेह विश्व-बन्धुत्व की भावना से भी ऊपर है। इस स्नेह की रक्षा के लिए आपने सेवा रूपी शस्त्र को ले रखा है। आप का स्नेह माता का सा स्नेह है। स्नेह लुटाने में ही आप का विश्वास है और इसी लिए 'लो और दो' के सिद्धान्त में नहीं, प्रत्युत 'दो और केवल दो' के सिद्धान्त के आप प्रबल समर्थक हैं। निरंतर देना ही आपने सीखा है। अपने पूर्वाश्रम में भी आप दान ही करते थे—भूखा-भिखमंगा आया, याचना की और आपने अपने हिस्से का भोजन दे डाला। श्राद्ध के अवसर पर एक रुपये की जगह १०) रुपये देकर प्रसन्नता का अनुभव करते। जीवमात्र की प्रसन्नता, आप की अपनी प्रसन्नता है। दान देने का वह क्रम आज भी चालू है—शान्ति, सुख और समता के प्रसार के लिये आज आप निरंतर स्नेह-दान कर रहे हैं।

युग-युग से योग सर्वसाधारण के लिए एक हौआ बना हुआ था। आपने सरल स्पष्ट शब्दों में योग का सार सब के लिए प्रस्तुत किया कुछ शब्दों में योग और वेदान्त का सार आपने एकत्र कर दिया है और वे ये हैं — 'सेवा, स्नेह, दान, शुद्धि, साधना, आत्मानुभव।' सर्वशास्त्रों का सार छोटे वाक्यों में सीमित करके आपने अपनी अपूर्व प्रतिभा और गहन अध्ययन का आभास दिया है और वे निम्न भांति हैं—'भले बनो, भला करो, कृपालु बनो, दयालु बनो। मनुष्य की सेवा ही भगवान की सेवा है, थोड़ा बोलो, संयमित शब्दों में मधुर वाणी बोलो, बोलने में शक्ति को नष्ट मत करो, उसे साधना में लगाओ, आत्म-विश्वास रखो, विश्वास ही सुख की कुंजी है।"

स्वामी जी की लेखनी में प्रेरक शक्ति है, वह प्राण फूंकने वाली है, वह कर्तव्य का आह्वान करती है, शान्ति-प्रदायिनी और कष्ट-

हारिणी है तथा आपकी वाणी ओजमय है, वह निराश को आशा का संदेश देती है, वह किंकर्तव्यविमूढ़ को पथ दिखाता है, शान्तिदायिनी है, आनन्ददायिनी है। लेखनी और भाषण आपके जीवन के दर्पण हैं, क्योंकि जो कुछ आप करते हैं, किया है, वही लिखा है, वही कहते हैं। आप ने साधकों को लक्ष्य करके लिखा, आपने सर्वसाधारण को सुखी बनाने के लिये लिखा और इसलिये उस में अनुकूल भाषा, भाव शैली को अपनाया। आज भी आप प्रतिदिन लिखते हैं; हाँ, प्रतिदिन कुछ न कुछ उपयोगी रचना अवश्य करते हैं। आप प्रेरणाप्रद पत्र लिखते हैं, आप पुस्तक के लिए व पत्रिका के लिए लिखते हैं और विश्व में आशा का अमर संदेश भेजते हैं। आप भाषण करते हैं, उस में जीवन का संदेश निहित होता है, उस में विद्वत्ता की भावना नहीं, दूसरों पर रोब डालना उस का लक्ष्य नहीं होता, उस में दैनिक जीवन को सुधारने की चेष्टा होती है, वह हृदय से निकलता है और श्रोता के हृदय पर असर डालता है।

अ० भा० यात्रा

आप आनन्द कुटीर में बैठकर आध्यात्मिक किरणों का प्रसार चहु ओर करते हैं। केवल यही नहीं आप घूम घूम कर भी प्रचार करते हैं। भाषण द्वारा, कीर्तन द्वारा, दर्शन द्वारा। आपने सन् १९३१ से १९४० तक उत्तर प्रदेश, दिल्ली, बिहार, पंजाब, कलकत्ता और आन्ध्र प्रदेश की यात्रा की और कीर्तन, सत्संग के अतिरिक्त लोगों को योगासन व प्राणायाम की क्रियात्मक शिक्षा भी दी। निम्न स्थानों पर योग और आध्यात्मिक विषयों पर भाषण दिये — उत्तर प्रदेश में—कमलापुर, सिधौली, लहरपुर, खैराबाद, लखीमपुर खेरी, लखनऊ, सीतापुर, अयोध्या, नीमीसार, सिधई, रुड़की, मथुरा, वृन्दावन, हरद्वार, देहरादून, आगरा,

इटावा, मैनपुरी, मेरठ, शिकोहाबाद। दिल्ली तथा मध्यभारत में ग्वालियर। बिहार में — मुँगेर, गया, पटना और पुरी। कलकत्ता और जम्मू व श्रीनगर में। पंजाब में—लाहौर, अम्बाला, कसूर, अमृतसर और रावलपिण्डी। आन्ध्र प्रदेश में— कोकोनाडा, नेल्लूर, तोतापल्ली, वेंकटनगरम् और वाल्टेयर आदि स्थान।

अभी पिछले वर्ष ही आप 'अखिल भारतीय यात्रा' करके लौटे हैं। दक्षिण में रामेश्वर और लंका तथा पूर्व में पटना, पुरी तथा कलकत्ता तक यात्रा की तथा विभिन्न स्थानों पर 'दिव्य जीवन संघ' की शाखाओं का निरीक्षण किया। ६ सितम्बर १९५० तक इस यात्रा मण्डली ने निम्न स्थानों की यात्रा की और स्वामीजी ने कीर्तन, भाषण द्वारा आध्यात्मिक जाग्रति उत्पन्न की।

हरद्वार, हरदोई, लखनऊ, बाराबंकी, फैजाबाद, बनारस, सारनाथ, पटना, हाजीपुर, गया, कलकत्ता, वाल्टेयर, राजमहेंद्री, कोव्वुर, विजयवाड़ा, मद्रास, विल्लुपुरम्, चिदम्बरम, अन्नमलाई नगर, धर्मपुरम, तंजोर, त्रिचनापली, पुडुकोट्टई, कण्डुक्थन, रामेश्वरम, (लंका में) थोताम्बा, लक्ष्मनेर तथा पुनः लौट कर धनुषकोडी, मदुरा, विरुधनगर, तिरुनेलवेली, पद्ममडाई, नगरकोविल, त्रिवेन्द्रम्, कोचीन, कोयम्बेट्टर, बंगलोर, मैसूर, हैदराबाद, पूना, बम्बई, अमलसाद, बड़ौदा, अहमदाबाद, साबरमति तथा दिल्ली।

इस यात्रा का मुख्य उद्देश्य साधारण लोगों को संकीर्तन तथा रामनाम की महिमा से परिचित करना था। इस यात्रा में सर्वप्रथम राजमहेन्द्री में म्युनिसिपैलिटी की ओर से 'नागरिक सम्मान' दिया गया

और फिर तो मद्रास, कोलम्बो, बँगलोर आदि स्थानों में भी यह सम्मान प्राप्त हुआ। जिस स्थान पर गये, वहीं का स्टेशन ही मन्दिर-स्वरूप या तीर्थ स्थान बन जाता, लोगों के ठट्ठ के ठट्ठ जुट जाते। श्री स्वामी जी ने ऑल इण्डिया रेडियो द्वारा भी बम्बई (धर्मों की एकता), पटना (भारत का सर्वोच्च आदर्श), कलकत्ता (भगवद् प्रार्थना), विजयवाड़ा (धर्म सम्बन्धी मेरे विचार), और हैदराबाद (दुर्गा-पूजा का महत्व) आदि स्थानों पर भाषण किये। तिरुनेलवेली में मुसलमानों द्वारा भी अभिनन्दन पत्र दिया गया। कोलम्बो के ईसाई मेयर ने मान-पत्र भेंट किया था। कुछ प्रमुख स्थानों पर भिन्न-भिन्न विषयों पर भाषण किये, उनकी तालिका नीचे दी जा रही है :—

अन्नमलाई—(विश्वविद्यालय में) छात्रों को कैसे शिक्षित किया जाय।

कलकत्ता—(विश्वविद्यालय में) आदर्श जीवन कैसे बितावें। (एम०सी०एम०विद्यालय) दिव्य-जीवन के प्रकाश-स्तम्भ, (स्त्रियों की सभा-चित्तरंजन ऐवेन्यु) साधना, (दिव्य-जीवन-संघ-शाखा) मनुष्य की सेवा ही प्रभु की सेवा है (जनता में) वेदान्त का सार।

कोलम्बो—(विश्वविद्यालय में) निर्भय बनाने वाला विज्ञान, (टाउन हाल) धार्मिक समरसता की विशेषताएँ (रामकृष्ण मिशन) निःस्वार्थता की कसौटी वैराग्य है।

कोव्वूर—(स्कूल के मैदान में लगभग डेढ़ लाख व्यक्तियों की भीड़ में) समन्वयात्मक साधना।

गया—(संस्कृत विद्यालय में)-परमात्मा की प्राप्ति। (गया कॉलेज)-उच्च आन्तरिक व्यक्तित्व प्राप्त करो।

(जनता में)—अजर अमर को ढूँढो।

पटना—(बी.एन. कौलेज)—जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करो।

(सिनेट हाल)—दिव्य जीवन की चर्चा।

(दयानन्द स्कूल)-वास्तविक शिक्षा।

(गंगा किनारे)—मैं कौन हूँ?

पूना—(मीरा स्कूल)—आध्यात्मिक आदर्श यौवनकाल में ही।

(तिलक मन्दिर)—दिव्य जीवन के पथ पर चलो।

फेजाबाद—(जनता में)—आश्रम और सिद्धि।

(छात्रों को सलाह)

बम्बई—(लक्ष्मीबाग)—कर्मयोगी कैसे बनें।

(माधवबाग)—गीता का सन्देश।

(आस्तिक समाज)—भक्ति पथ पर चलो।

(भारतीय विद्यालय)—आत्मसाक्षात्कार विश्व की पारस्परिक आधीनता का आधार है।

बनारस—(दिव्य जीवन शाखा)—महामन्त्र का माहात्म्य।

(ब्रह्मसमाज)—भगवद् प्राप्ति का पथ।

(श्री शाही के मकान पर)—साधू कौन है?

(विश्वविद्यालय में)—पूर्णत्व का साधन—योग।

(सेन्ट्रल हिन्दू गर्ल्स स्कूल)—नारी की शक्ति।

मद्रास—(दिव्य जीवन जार्ज टाउन शाखा)—तुम्हारा वैकुण्ठ यहीं है।

(पत्रकारों में)—ज्ञान के सन्देशवाहक।

(श्रीनिवास गांधी बालिका निलयम्)—धर्म के रहस्य।

(आतर धर्म अन्तर्राष्ट्रीय सगठन)—सब धर्मों की मूलभूत एकता।

(जनता में)—सनातन-जीवन की खोज में।

(ट्रॉम्बिन)-राष्ट्रीय स्वास्थ्य की रीढ़-योग।

(अडयार)-स्त्रियों की शिक्षा।

मदुरा — मानसिक सन्तुलन और शान्ति का योग

राजमहेन्द्री—(आर्ट्स कॉलेज) सुख किस में?;

(रामकृष्ण सेवा समिति)कर्मयोग का रहस्य।

लखनऊ — बेचैनी और मनन

वाल्टेयर — (प्रेम-समाज)चिथड़ों में अपने भगवान का स्वागत करो,

(आन्ध्र विश्वविद्यालय) आन्तरिक पूर्णता की आवश्यकता;

(टाउन हॉल में) भगवान का नाम सर्वोपरि है।

विजयवाडा—(कॉलेज में) विद्यार्थी के कर्तव्य,

(राममोहन पुस्तकालय)स्वयं को पहचानो।

हाजीपुर—(जनता में)सर्कीर्तन योग; (रोटरी क्लब) विश्वभ्रातृत्व।

त्रिवेन्द्रम—जीवन के चार महान जोड़क (reckoners)

नवम अध्याय

स्वामीजी का व्यक्तित्व

अपूर्व समन्वय

चैतन्य महाप्रभु और मीरा की भक्ति विह्वलता, महात्मा ईसा की शान्ति और सत्य, भगवान बुद्ध की करुणा, शङ्कर और आचार्य विवेकानन्द का ज्ञान, रामकृष्ण परमहंस की सरलता और स्वामी रामतीर्थ की मस्ती लेकर एक व्यक्ति इस धरा पर विद्यमान है, जिसने अस्पृश्यता, निवारण, सामाजिक नवनिर्माण और जाति पाँति के उन्मूलन-कार्य

मे सादगी का समावेश किया है तथा जो मर्यादा पुरुषोत्तम राम और योगिराज कृष्ण के आदर्श को लेकर आज जी रहा है। वह एक दार्शनिक होते हुए भी महान सन्त है और सन्त होकर भी महामानव है; वह मानव के वेष में देव है और सेवा सुरगाति का सन्देश लेकर विश्व मे अवतरित हुआ है। स्वामी शिवानन्द के जीवन मे सभी सद्गुणों का समावेश हो गया है। यह हमारा परम सौभाग्य है कि इस बीसवीं शती में हम उन्हें चलते-फिरते, उठते जागते, खाते पीते और समस्त संसार मे स्नेह की वृष्टि करते देख रहे हैं।

स्वामी शिवानन्द को कोई योगी कहता है, कोई सन्त, कोई युगद्रष्टा, कोई मनीषी और कोई 'खिचड़ी-आदमी'। हाँ आप योगी हैं; योग की सभी शाखाओं मे आप पूर्ण पारंगत हैं। आप कर्मयोगी हैं और साथ ही साथ भक्त, हठयोगी, राजयोगी और ज्ञानयोगी भी। आपने अनेक साधकों को योग के सभी अंगों की शिक्षा दी है। आपने उन्हें आसन, प्राणायाम और निष्काम सेवा का पाठ पढ़ाया है। आप समन्वयात्मक योगी हैं, आज विश्व के व्यस्त जीवन मे मानवता कराह उठती है अतः आप सब को योग चतुष्टय की शिक्षा देते हैं और निष्काम कर्मयोग पर जोर देते हैं। सेवा हृदय की शुद्धि का साधन है और सर्वलीन भगवान की एकाकारता स्थापित करने का सब से सुगम मार्ग। आप किसी योग विशेष को प्रधानता नहीं देते, प्रत्युत सब का समन्वय, सभी को क्रियात्मक जीवन में देखना चाहते हैं और भगवान के सभी नाम-रूपों का स्मरण, जप श्रेष्ठ समझते हैं और किसी विशेष देव को प्रधानता नहीं देते, इस लिए रायबहादुर अलखकुमार सिन्हा जैसे व्यक्ति 'खिचड़ी आदमी' कहते हैं।

लेकिन सभी पदार्थों को मिलाकर बनाई गई, खिचड़ी कितनी स्वादिष्ट होती है। सप्ताह में खिचड़ी वाले दिन की उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा की जाती है। आप इस युग के लिए एक नवीन सदेश लेकर आए हैं, इस लिए कोई आप को मसीहा कहते हैं।

"जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति तिन देखी तैसी।" सच तो यह है कि आप पीडित मानवता के लिए आशा का सन्देश लेकर आये हैं; चिता की चिता मे जलने वाले मानव के लिए सुख और शान्ति का परवाना लेकर आए हैं, शोषित और दुखित के लिए समता, स्नेह और प्रसन्नता का वरदान लेकर आए हैं। 'सन्देश नहीं आप स्वर्ग लोक का लाए हैं, इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आए हैं'—अतः आप जीवन-मत हैं; युग की विभूति हैं।

कहते हैं, देवताओं का आगमन जब होता है तो उनके पैर भूमि पर नहीं टिकते, वे भूमि से ऊँचे उठे रहते हैं। सम्भवतः यह अलंकारिक भाषा में कहा गया होगा और सर्वसाधारण के मन में यह बात सच ही स्थान पागई। लेकिन इस में असत्य का अंश भी कहाँ है? चुपके से कोई व्यक्ति आए, उसकी पद-ध्वनि का आभास भी न होने पाये और कोई कार्य करके चला जाय अथवा एकाएक उपस्थिति का हमें ज्ञान हो तो उस कर्म में देवत्व का ही भाव झलकता है। स्वामी जी का यह अभ्यास है कि चलते हुए पैरों से शोर नहीं होता और जब तक आप मौके पर आ न जायँ, आभास भी नहीं मिलता। आते ही अपनी ओजमयी वाणी में आप ही शुरुआत करेंगे— 'ओ३म नमोःशिवाय', 'ओ३म नम नारायणाय' तथा अपने पास अपरिचित भी सम्मोहन शक्ति का अनुभव करता है। स्वामी जी सेवा करने के लिए चुपचाप जाते हैं और बहुत शान्ति से लौट आते हैं। सेवक शोर नहीं मचाता।

मूक गेरुक भूमि से ऊपर उठ कर ही आता है और अपना कार्य करके चला जाता है। यही 'निष्काम कर्मयोग' है।

स्वामी जी शक्ति और स्फूर्ति के अविरल स्रोत हैं। कार्य करते रहने में ही आप का विश्वास है, किन्तु वह कार्य निष्क्रियता से आलस्य में डूब कर मन्दगति से, या भूल कर फिर कभी करने के पक्ष में नहीं। आप कार्य हाथ में लेते हैं और उसे पूरा करके ही छोड़ते हैं। नयी योजना बनाते हैं, नए कार्य लेते हैं और उन्हें भली प्रकार सम्पादित करना ही आप का लक्ष्य रहता है। ६४ वर्ष की अवस्था हो जाने पर भी, १६वर्षीय युवक का सा आपका हृदय है और कभी वृद्धावस्था की झलक भी नहीं पाते। जिसका मन युवकों का सा है उसका शरीर भी वैसा ही बन जायगा। शरीर तो मन का सेवक है, मन का दास बनकर शरीर सचमुच आपका आज्ञाकारी दास बन जायगा। यही कारण है कि स्वामी जी अब भी इतना श्रम कर लेते हैं। श्रम परिश्रम, कार्य, कार्य और कार्य ही आप चाहते हैं और घण्टों का कार्य करते हुए कभी थकान का अनुभव नहीं करते। शक्ति व उन्मुक्तता बनी ही रहती है। स्वामी जी का शरीर सुगठित और ऊँचाई ६ फुट है।

अनुशासन की भावना

२२-७-४७ की रात है। भजन की समाप्ति पर स्वामी जी विश्वनाथ पहाड़ी से नीचे आ रहे थे। भीड़ में से किसी ने कहा कि आज कल शिवज्ञान पत्रिका विभाग में बड़ी मेहनत से कार्य करते हैं और बड़े नियमित हैं। झट से स्वामी जी ने हँसते हुए जवाब दिया—'हाँ, यह तो ठीक है, किन्तु वे तुन ने-घोड़े हैं।' जिस प्रकार शिकारी कुत्ता पहले प्रयत्न में तो बड़े जोर से झपटेगा और तेज दौड़ लगायगा, किन्तु

अधिक समय तक न नहीं टिकता, अपनी निद्रा निकाल कर हाँफने लगता है। यही हाल तुम्हारे घोड़े का होता है। प्रारम्भ में तो वह बड़ा स्फूर्ति दिखाएगा और यन्त्र के मझधार में जम कर खड़ा होजायगा अथवा लौटने का प्रयत्न करेगा। इसी प्रकार शिवज्ञान को प्रारम्भिक स्फूर्ति और उछल कूद छोड़ कर साधना में नियमितता लानी चाहिए। नियमितता के आप कट्टर समर्थक हैं और मुझ पर किसी की प्रशंसा कैसी? मुँह पर प्रशंसा का अर्थ तो है उस व्यक्ति विशेष को गिराना, अवस्था से पदच्युत करना। अब तत्काल स्वामीजी ने भीड़ में से गोविन्द जी को पुकारा।

ओ३म, गोविन्द जी, आज शाम को तो आप चबूतरे पर घूम-घूम कर—वैवाहिक क्रिया की भाँति—अखण्ड कीर्तन कर रहे थे। चक्कर काटते हुए कीर्तन तो वृद्धों के लिए है, जो बैठ कर निद्रालस्य में लीन हो जाते हैं अथवा एक ही स्थिति में काफी देर तक नहीं बैठ सकते। आप जैसे नवयुवकों को तो पद्मासन या सिद्धासन लगा कर, राम और कृष्ण की मूर्तियों पर ध्यान लगाते हुए, कीर्तन करना चाहिए।

[तत्पश्चात स्वामी जी नारायण स्वामी अय्यर की ओर मुड़े और पुकारा—] 'आजी नारायण स्वामी, कल ६ बजे आपने घण्टा इतनी जल्दी-जल्दी बजाया, मानो कि भगवान के साथ एक घण्टे कीर्तन का ठेका कर रखा हो, वह समाप्त होते ही भाग जाना चाहते हैं। जब तक कीर्तन की अखण्डता के लिए अन्य व्यक्ति न आवे, आप क्या १५ मिनट तक और कीर्तन नहीं कर सकते?'

'जी हाँ, स्वामी जी, कल मुझे शौच की हाजत तेज होगई थी, इसलिए जल्दी की'—नारायण स्वामी ने कहा। स्वामी जी—'ऐसी स्थिति

न तो कोई बात नहीं, किन्तु प्रत्येक संकीर्तन करना को अन्य व्यक्ति के आने तक, यदि वह कुछ देर से आवे तो भी, कीर्तन करते रहना चाहिए और एक ठेकेदार की भाँति कार्य न किया जाना चाहिए।'

स्वामी जी अनुशासनहीनता को अभिशाप समझते हैं न केवल भौतिक उन्नति बल्कि आध्यात्मिक उन्नति में भी यह बहुत बाधक है जीवन में नियमितता, और समय पर कार्य करने की आदत न हो, वह कैसा जीवन ? वह जीवन तो व्यक्ति या समाज के ऊपर भार है। इस लिए स्वामी जी ममता के साथ-साथ अनुशासन के हामी हैं। साधना-सप्ताह में एक साधक प्रातःकालीन शिक्षण के समय अनुपस्थित रहा। स्वामी जी के द्वारा कृष्ण भगवान के सामने, कान पकड़ कर बैठकें लगाने का दण्ड उसे मिला। चाहे कोई भी साधक क्यों न हो, अनुशासन भंग करने पर यही दण्ड मिलता है। दूसरों के अनुशासन भंग करने पर उनकी ओर से स्वयं बैठकें लगा कर आप आत्म-दण्ड लेते।

जाड़ा में जब अत्यधिक शीत के कारण ऋषिकेश की सड़क पर मोटर का इञ्जिन ठण्डा हो जाता है तो अन्य लोगों के साथ मोटर को धक्का लगाने वालों में आप भी सम्मिलित हो जाते हैं। इन्हीं सब के द्वारा आपने जीवन को तपस्या की भट्ठी में तपाया है और आप घृणा, ईर्ष्या, राग-द्वेष की भावनाओं से ऊँचे उठकर आपने मानवीय कमजोरियों से छुटकारा पाया है तथा जीवन कंचन के समान बन गया है। यही कारण है कि अन्य आश्रमों की भाँति आनन्द कुटीर के साधक गणों को प्रतिदिन प्रातःकाल अपने गुरु के समक्ष दण्डवत करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। आप नहीं चाहते कि कोई झुक कर या लेट कर प्रणाम करे तथा पहिले आप स्वयं ही प्रणाम करेंगे। अन्य आश्रमों

के गुरु, मण्डलेश्वर या महन्त चाहते हैं कि उनके शिष्य प्रातः सर्वप्रथम चरणों में झुकें, लेकिन स्वामी शिवानन्द यह आवश्यक नहीं समझते और आपका कथन है कि दण्डवत लेने से अभिमान की उत्पत्ति होती है। आप विशेष आसन पर बैठना पसन्द नहीं करते, भजन करते समय सबके साथ ही फर्श पर या कालीन पर बैठेंगे। आप बीमारों और संन्यासियों के पैर दबायेंगे, मालिश करेंगे, लेकिन अपने लिए दूसरों से ऐसा कराना वाञ्छनीय नहीं समझते। आप गले में हार डलवाने की अपेक्षा, फूलों का हार दूसरों के डालने में ही प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

स्वामी जी के कर्म और क्रियात्मक दैनिक जीवन की शिक्षा का अपूर्व साधन है। प्रत्येक कार्य को आप भगवान की पूजा मानते हैं। अपने हाथ से अपना काम करना, आत्म निर्भरता श्रेष्ठ समझते हैं। जब कोई आश्रमवासी पानी ले जाता होगा या कोयले ढोयेगा, आप भी उच्चता का अभिमान त्याग कर उस का साथ देते हैं। मजदूर जब सीमेंट ले जाता है तो आप भी उसकी मदद करते हैं। मरीजों की सेवा करने में आप को विशेष आनन्द आता है। आप किसी कार्य को भी छोटा नहीं समझते। भंगी को आप 'स्वास्थ्य रक्षक' (हेल्थ—आफिसर') कहते हैं। आप का कथन है कि यह भंगी मनुष्य के बाह्य मल को साफ करता है और भगवान आन्तरिक मल (काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मात्सर्य आदि को शुद्ध करते हैं। दोनों ही स्वास्थ्यरक्षक हैं, इसने अपना धर्म सीधे भगवान से ग्रहण किया है। स्वामी जी को अपनी प्रारम्भिक प्रेरणायें शौच करते हुये मिला करती थी और वहाँ वर्तमान समस्याओं का सही हल मिलता। आप की प्रायः सभी प्रारम्भिक कृतियाँ उन्हीं प्रेरणाओं के परिणाम हैं, जिन्हें आप शौच

के अनन्तर कागज पर लिख लिया करते थे। इस लिए उनकी और उनके कर्म तो आप की निगाहों में और भी आदरणीय हैं।

स्वामी जी तो शुद्ध-बुद्ध और आत्मज्ञानी हैं। जब एक साधक ने पूछा कि 'आप तो आनन्द में रहते हैं, न किसी प्रकार की पारिवारिक चिन्ता है और न कोई कष्ट है' तब आप ने तुरन्त ही उत्तर दिया था, कि छोटे से परिवार से निकल कर वृहद् परिवार में आप आगए हैं और सारा समाज आप का परिवार बन गया है। विश्व के कोने-कोने में आपके साधक फैले हैं और उनकी आध्यात्मिक उन्नति की चिन्ता सर्वाधिक आप को रहती है। पत्रों द्वारा शंका निवारण करना व साधना के लिए उत्साहित करना, पुस्तकें भेजना आदि अनेक कार्य हैं। कितने ही साधक 'आनन्द कुटीर' में रहते हैं। प्रतिदिन प्रात लंगर में लगभग ३०० व्यक्ति भोजन पाते हैं। अन्य कार्यों औषधालय, डाकखर्च, पुस्तकें छपवाने, प्रेरणात्मक विज्ञप्तियां छपवाने तथा पत्रिकाओं के प्रकाशन में भी व्यय होता है और प्रतिमास लगभग २० हजार रुपया इस कार्य पर व्यय होजाता है, जिस का प्रबन्ध आप ही करते हैं। आप आत्म-ज्ञानी होते हुए भी अन्यों के भले के लिए सब कार्य करते हैं, आज भी विश्वनाथ मंदिर की प्रदक्षिणा करते हैं तथा भगवान की प्रतिमा के समक्ष, साष्टांग नमस्कार करते हैं 'महाजनो येन गतः स पन्था।' आप कोरे वेदान्ती नहीं, प्रत्युत कर्मठ व क्रियात्मक वेदान्ती हैं।

एक बार (२८-२-१९४७) दो अपरिचित स्वामी जी के पास आये (जो फौज छोड़कर लौटे थे) और आश्रम में साधक बन कर रहना चाहते थे। स्वामी जी बिना किसी भेद भाव के किसी भी व्यक्ति को आश्रम के बढ़ते हुए खर्च की चिंता न करते हुए, अपने पास साधना के लिए रख लेते हैं, क्योंकि आप सदैव कहते हैं— आत्म-साक्षात्कार

सब पर जन्मसिद्ध अधिकार है। स्वामी जी उन दोनों भूतपूर्व सैनिकों को पत्रिका विभाग में ले आए और शिवानन्द के पास ले जाकर कहा— 'इन की सब हिदायतों का अक्षरशः पालन करना होगा। उनमें अनुशासन या काम में जी चुराने की भावना नहीं होगी। दूसरों में निज भगवान की सेवा करना सीखो, फिर ईश्वर-साक्षात्कार करो। आश्रम में अपने 'मैं' या 'अहम्' को त्यागना पड़ेगा।'

'भजन भवन' में अखण्ड कीर्तन हो रहा है, संकीर्तन कर्त्ता बारी-बारी से एक-एक घण्टा आते हैं। आश्रमवासियों को संकीर्तन के लिए श्री श्रीधरस्वामी बारी देते हैं। एक दिन कैलाशचन्द्र नामक युवक ने, जो साधना के लिए आश्रम में ठहरा था, श्रीधरस्वामी की आज्ञा न मानी। तब, स्वामी जी ने अनुशासन भंग करने के लिए दण्ड स्वरूप आश्रम छोड़ देने को कहा। बिना अनुशासन के कोई भी काम सुचारु रूप से नहीं चल सकता। क्षमा मांग लेने पर फिर उन्हें आश्रम में रखा गया। इस प्रकार एक अन्य साधक मुकुन्ददास को सिगरेट पीने की आदत थी और प्रतिदिन वह बीच में ही काम छोड़ कर कहीं चले जाते थे। स्वामी जी ने उनसे भी कहा और बतलाया 'तम्बाकू पीने से मज्जातन्तु खराब हो गए हैं तथा यही कारण है कि सिरदर्द रहता है तथा आप एक बार में घण्टे आध घण्टे बैठ कर भी काम नहीं कर सकते। आप घर लौट सकते हैं और दुबारा यहाँ आने की आवश्यकता नहीं।' इस से उन पर बहुत प्रभाव पड़ा तथा बुरी आदतें छोड़ कर, वे नियमपूर्वक कार्य करने लगे।

आनन्दकुटीर के समीप ही रामाश्रम है। वहाँ एक अवसरप्राप्त वकील और एक संन्यासी रहते हैं, जो शिवानन्दाश्रम के लंगर में ही भोजन करते हैं। ३ वर्ष पूर्व, क्या होता था कि उन के लिए भोजन वहाँ

भेजा जाया करता, भोजनालय के अध्यक्ष श्री विश्वेश्वर ने जब यह बात स्वामी जी को बताई और कहा कि भोजन की थाली 'नय समय पर बजती है तथा इतने समीप होने हुए भी किसी व्यक्ति के हाथ भोजन भेजना पड़ता है। स्वामी जी तो अनुशासन के कायल हैं ही आपने तत्काल यह नियम बना दिया कि भोजनालय में ही प्रत्येक को भोजन परोसा जाय और वह भी भोजन के समय पर ही। तब से वही नियम लागू है। एक दिन (१४-३-४७) आश्रम के चिकित्सक किसी मरीज पर खीझ रहे थे क्योंकि उसने कहे मुताबिक न किया था और कह रहा कि यदि यह आवश्यक उपचार न करेगा तो कल से जन्म पर पट्टी न बांधेंगे। इस प्रकार वे चिल्ला रहे थे कि स्वामी जी वहां पहुंच गए और जख्म धोकर अपने हाथ से भली प्रकार पट्टी बांध दी। चिकित्सक को सेवा और मरीज को आज्ञाकारिता का पाठ मिला।

जीवन की सरलता

पिछले दिनों किसी व्यक्ति ने पूछा—'स्वामी जी ! बिच्छू जहरीला जानवर है, उसे आप मारने क्यों नहीं देते ?' 'मनुष्य तो बिच्छू से भी जहरीला है' —यही स्वामी का उत्तर था। जब तक मनुष्य सेवा और साधना द्वारा अपने जहर को दूर नहीं कर लेता, वह खतरनाक और जहरीला बना रहता है।' गत वर्ष गोविन्द नामक एक नवयुवक साधना के लिए आश्रम में आया था। वह राग द्वेष से लिप्त था। जाड़े की ऋतु था। स्वामी जी सायंकालीन कीर्तन के लिए 'भजन भवन' में आकर बैठे थे कि उसने कुल्हाड़ी से तीन प्रहार किए। 'जाको राखे साईयाँ, मार सकै नहिं कोय।' पहला प्रहार किवाड़ पर लगा—स्वामी जी दरवाजे के पास ही बैठे थे। दूसरा प्रहार ऊपर टंगे चित्र पर और तीसरा प्रहार स्वामी जी के

सिर पर लगा। किन्तु जाड़े के कारण मापा पचा होने के कारण चोट न लगी और कुल्हाड़ा हाथ पर मोच कर के रह गया। वह युवक पकड़ लिया गया। अन्य साधक मारने को दौड़े, किन्तु स्वामी जी ने कहा, 'ओजी, पद्मनाभ स्वामी! इन्हें ले जाओ और किसी किस्म की चोट न आवे।' पुलिस ने आकर उसे गिरफ्तार कर लिया। परन्तु स्वामी जी उसके जीवन को संकट में डालने के पक्ष में न थे। उसे दोसा तथा दक्षिणभारतीय मुख्य पदार्थ खिलाए तथा पुलिस को कह कर छुड़वा दिया और वापिस घर लौटने के लिए एक साधक को दिल्ली तक साथ भेजा और नई पोशाक तथा रेल भाड़ा देकर विदा किया। स्वामी जी उसके चरणों में झुके और क्षमा मांगी। यह सरलता के साथ महानता थी।

गांधी जी के जीवन की सफलता और महानता इसी में निहित है कि वे अपनी लगन के पक्के थे। जो सोच लेते वह कार्य सारी शक्ति लगा कर करते। कहते हैं कि जब गांधी जी के सुपुत्र श्री देवदास गांधी ('हिन्दुस्तान टाइम्स' नई दिल्ली के प्रबन्ध-सम्पादक) का विवाह श्री राजगोपालाचार्य की सुपुत्री के साथ हुआ तो पहला कार्य गांधी जी ने किया, वह था-हाथ में तसला तथा झाड़ू लेकर निकटवर्ती कुछ स्थान की सफाई करना। नवल-युग्म को दूल्हे के पिता की ओर से यही विवाह की भेंट थी। यही कारण है कि बापू अपना जीवनादर्श स्थापित कर सके। स्वामी जी भी इसी प्रकार क्रियात्मक ज्ञान के पक्षपाती हैं। सन् १९४५ में एक ३० वर्षीय ग्रेज्युएट साधक को सन्यास दिया गया था और वे 'शिवतत्वानन्द' कहलाए। स्वामी जी उसे बहुत प्यार करते थे और सभी अच्छी अच्छी खाने की वस्तुएँ उन्हें मिलतीं। लेकिन वे अपनी कमजोरियों को न त्याग सके। प्रशंसा करने पर फूल कर कुप्पा बन जाते।

यहाँ स्वामी 'शिवतत्त्वानन्द' एक बार एक विशेष दान समिति के कर्त्ता-धर्त्ता बनाए गए तो उन्होंने कई हजार रुपये तक पत्र-व्यवहार द्वारा एकत्र कर लिए। स्वामी जी सब पर विश्वास करते हैं और इसलिए कागज-पत्रों व चन्दा एकत्र करने के सर्वाधिकार उन्हें प्राप्त थे। उस विभाग में कार्य बढ़ने से स्वामी जी ने यह कार्य-विशेष 'दिव्य जीवन मण्डल' के मंत्री को सौंप देने के लिए कहा, किन्तु इसके विपरीत 'शिवतत्त्वानन्द' जी ने कहा कि इस समिति में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार किसी को नहीं है। स्वामी जी ने उन्हें समझाने की चेष्टा की पर वह टस से मस न हुए। यह २०-१०-१९४६ के प्रात: १० बजे की घटना है। शाम को ६ बजे स्वामी जी ने भजन के पश्चात् यह भी कहा कि यहाँ एक साधक है जो गुरु की आज्ञा नहीं मानता, भगवान विश्वनाथ उसकी विद्रोहात्मक शक्ति का शमन करें। रात को ही वह संन्यासी गायब हो गया। फिर उसने स्वामी जी को वकील का नोटिस भी भेजा। कुछ समय बाद स्वामी जी ने उसका पता चलवाया और २५) का मनीआर्डर भेजते हुए शुभ कामनाएँ भी प्रेषित की कि वह घर न लौट कर निष्कामता पर चले तथा ऋषिकेश में व गंगा किनारे अन्यत्र साधना करे। वही संन्यासी ७-३-४७ को स्वामी जी से मिलने आया। आपने प्रेम से स्वास्थ्य समाचार व कुशलक्षेम पूछी तथा फल व दूध दिया भोजन की अन्यत्र व्यवस्था कर दी। इस प्रकार एक भूले को पथ दिखाया। यह प्रसंग यद्यपि स्वामी जी की कमजोरी बतलाता है और प्रकट करता है कि आपकी प्रेम-भावना का किस प्रकार नाजायज लाभ उठाया गया। किन्तु यह आप की महानता का भी द्योतक है, आप 'कृष्ण, कृष्ण' की जय करते हैं और कार्य में भी वही भाव सार्थक हुआ।

स्वभाव

स्वामी जी के स्वभाव में बड़ा सुलभ माधुर्य है। आप बच्चों को तथा बड़ों को सभी को बहुत स्नेह करते हैं, किन्तु बालक तो आप को बहुत ही प्रिय हैं। संभवतः इस लिए कि वे राष्ट्र के भावी नागरिक और देश के कर्णधार होते हैं। ११ सितम्बर १९५० की बात है। फैजाबाद स्टेशन पर यात्रा गाड़ी खड़ी थी। आप मार्ग में जल्दी ही श्री रामशरण मिश्र के निवास स्थान पर सत्संग के लिए जा रहे थे कि गाड़ी के निकट ही एक ओर कुछ बच्चे खड़े थे। आप झट वहाँ पहुँच गए और केलों की डलिया मंगाली। कीर्तन करने लगे और सब से भगवान का नाम गवाया तथा प्रसाद के रूप में केले वितरित कर दिए। आपने आत्मकथा ('शिवगीता') में लिखा भी है—'बच्चों का सा मेरा स्वभाव है। इसीलिए मैं सब में मिल कर, एक हो जाता हूं, मैं हमेशा खुश और प्रसन्न रहता हूं तथा दूसरों को प्रसन्न व सुखी बनाता हूँ। मैं विनोदप्रिय हूं और विनोद के द्वारा सबको प्रसन्न करता हूँ। मैं हमेशा मधुर बोलता हूं। मैं द्रुतगति से चलता हूँ। सेवा मेरे स्वभाव का अङ्ग बन गया है, बिना सेवा किये मैं नहीं रह सकता। सेवा ने मुझे ऊँचा उठाया है, शुद्ध किया है।"

स्वामी जी प्रकृति के प्रेमी हैं, सौन्दर्य, कला, गायन, नृत्य और काव्य के रसिक हैं। आप गाते हैं, हार्मोनियम बजाते हैं, 'दिव्य-जीवन-नाटक-सभा' के अनुकर्त्ताओं को निर्देश भी करते हैं और आश्रम में होने वाले इमारती कार्य में इंजिनियर को भी सलाह देते हैं। स्वामी जी स्नेह-शील एवं क्षमाशील हैं। आप सब को प्यार करते, त्रुटियों को सुधारने के लिए क्षमा कर देते हैं। स्वामी जी हानि को देख-सुन कर भी शान्त रहते हैं। ता० ३-१-१९४७ की बात है। शिवानन्द

आश्रम में अविवेका भिन 'विश्वनाथ भाग' म आग लगने का समाचार आया। पुस्तकें, पशुओं के चारे और इमारत के रूप में ३ हजार रुपये का सामान जल कर राख होगया। वहाँ कृषिकर्म में लगे एक नौकर की लापरवाही के कारण यह हुआ था। कुछ लोगों के साथ स्वामी जी भी घटना-स्थल को देखने पहुँचे। लेकिन लौट कर देखा, स्वामी जी के चेहरे पर शिकन भी न थी, आप सदा की भाँति हँस मुख थे। कुछ व्यक्ति सोचते हैं कि स्वामी जी ने भारी सम्पत्ति एकत्र करली है और सुख से रहते हैं, किन्तु आप राजा जनक की भांति विदेह हैं, किसी भी वस्तु में आप का लगाव नहीं है। सारी सम्पत्ति तो 'दिव्य-जीवन-ट्रस्ट' की है।

स्वामी जी माया और अहंकार के रहस्यात्मक मार्गों से भलीप्रकार परिचित हैं, वे उन्हें साधकों के मार्ग में बाधारूप में देख कर, सहायक बना देते हैं। एक दिन (१६-१-४७) एक बीस वर्षीय नवयुवक लंका से चलकर आश्रम सेवन आया। उस के पैरों में भयंकर पीडा थी। आश्रमवासियों ने उसकी परिचर्या की, किन्तु उसका स्वभाव विचित्र तथा उग्र था। वो कोई भी सेवा के लिए जाता उस पर आदेश किया करता—यह करो, वह लाओ, दवा ले आओ, आवेल्टीन लाओ, आदि। किसी एक साधक ने कह दिया कि ऐसी सब सुविधाएँ तो हरिद्वार में मिलेंगी वहां चले जाओ, मार्ग-व्यय दे दिया जायगा। दूसरे दिन वह युवक साधु उस साधक की शिकायत करने स्वामी जी के पास पहुँचा। वह साधक भी वहां खड़ा था। (उसकी ओर इशारा करके) युवक ने कहा कि इन्होंने मुझे आश्रम छोड़ देने के लिए कहा और जब मैंने आपका पत्र बतलाया कि अनुमति से मैं आया हूं तो पत्र भी फाड़ डाला और कहा कि स्वामी जी अब इस दिव्य-जीवन मण्डल के अध्यक्ष नहीं रहे।

वहाँ खड़े साधक ने फिर यही बात स्वामी जी और युवक के सामने दोहराई तो वह युवक-साधु फिर बोल उठा "स्वामी जी, यह शिष्य गुरु का अनादर करता है और मेरे जैसे दुखित के लिए इस के दिल में कोई सहानुभूति नहीं है, यह ऐसे भगवा वस्त्र पहनने का अधिकारी नहीं।" स्वामी जी ने तुरन्त अरुण जी को बुलाकर मरहम लगाने और पैरों को रगड़ने का कहा तथा साधु युवक को साथ में जाने को। इस घटना से स्वामी जी के स्वभाव पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है—जहाँ आपके हृदय में पीड़ित के लिए सहायता और सेवा की भावना है, उस साधक के लिए क्षमा की भावना। आश्रम के अध्यक्ष और किसी संस्था के कर्त्ता धर्त्ता का कोई व्यक्ति ऐसा कह दे तो क्या वह उबल न पड़ेगा? किन्तु स्वामी जी सदैव की भाँति मुस्कराते ही रहे और माना कि साधक बिलकुल निर्दोष ही था। लेकिन ठीक ही था—स्वामी जी में 'अध्यक्षता का अहम भाव' नहीं और इसलिए साधक ने ठीक ही कहा था। स्वामी जी हमेशा दूसरों में गुण ही देखते हैं और बुराई उन्हें नजर नहीं पड़ती।

'यात्रा मण्डली' २१ सितम्बर १९५० को गया पहुँच गई। उस दिन प्रातः ९ बजे गंगामहल में 'सत्संग' का प्रबन्ध किया गया। स्वामीजीने मधुर वाणी में कीर्तन किया और फिर ध्यान धारणकी व्याख्या करने लगे। इतने में एक भक्त (जो अंग्रेजी न जानता था) खड़ा हुआ और बोला कि व्याख्यान हिन्दी में होना चाहिए। स्वामी जी तुरन्त 'ओ३म' की ध्वनि करके बैठ गए और इससे पहले यही कहा कि 'चिदानन्द जी अब मेरे भाषण को हिन्दी में सुनावेंगे और प्रसंग को आगे बढ़ावेंगे।' इस बाधा से स्वामी जी तनिक भी विचलित न हुए और चेहरे पर वही मुस्कराहट और शान्ति खेल रही थी। यद्यपि प्रबन्धकों

के काम में उस व्यक्ति का बाधा डालना बुरा लगा और उन्होंने उधर क्रोध को निगाहों से भी देखा, किन्तु स्वामी जी को देख कर शान्त रहे। महापुरुषों की यही महानता है। स्वामी जी की स्मरणशक्ति भी, जैसा लिख चुके हैं, बहुत तेज है। १० सितम्बर १९५० को पटना में गंगा किनारे सत्संग हुआ। सेठ राधाकृष्ण जालान ने पूजा पाठ की और अपनी विशाल कोठी में ले गए। सेठ जी के पुत्र हीरा लाल जालान १९४० में आनन्द कुटीर होकर गया था। स्वामी जी ने इस नवयुवक को देखते ही पहचान लिया, यद्यपि उन बातों को दस वर्ष गुजर चुके थे। हीरालाल ने फिर स्वामीजी के हस्ताक्षरों से युक्त उस समय की भेंट की गई पुस्तक दिखाई, जो अमूल्य सम्पत्ति की भांति वह रखे हुए था।

आलोचना

दुनियां में किस सुधारक की आलोचना नहीं हुई; किस भले आदमी को अपने जीवन में अपने कार्यों के लिए बुरा न सुनना पड़ा होगा। सभी महापुरुषों और जनोपयोगी कार्य करने वालों के, हर युग में विरोधी रहे हैं। युधिष्ठिर और पाण्डवों को इसीलिए वनों में मारा-मारा फिरना पड़ा, महात्मा ईसा को लोगों ने सूली पर चढ़ा कर ही छोड़ा, गांधीजी भी इसी प्रकार एक अज्ञानी हिन्दू की गोलियों से मर कर अमर हो गए। सार्वजनिक रूप से श्रेष्ठ कार्य करने वालों पर लोग तरह तरह के दोष लगाया ही करते हैं। यदि स्वामी शिवानन्द जी को कुछ लोग बुरा बतलाते हैं तो इसमें आश्चर्य की कौन बात है?

जून १९५१ की १७ तारीख थी; मैं शाम के वक्त टांत टीक पत्थर ऋषिकेश से शिवानन्द आश्रम को पैदल ही लौट रहा था। यह

यह स्थान मुनी की रेती में, लछमणझूले के समीप ही, ऋषिकेश से लगभग १॥ मील है। मैंने सुना, यह में एक साधु एक नवयुवक से कहता जा रहा था 'वह मोटे पेट वाला, शिवानन्द, जानते हो न ? इस ने ऐसे जाल बिछा रखा है कि कुछ न पूछो। पढ़े लिखों की मति भ्रष्ट कर दी है ? सीधे नहीं पहुँचते हैं। कुछ करता-धरता नहीं ? आदि-आदि।' उस सन्यासी का क्या मालूम, मैं भी वहीं जा रहा था ? उसी दिन ऋषिकेश में एक डाक्टर से सुनने को मिला, कि 'स्वर्गाश्रम के समीप एक साधु रहता है, जो पिछले १५ वर्ष से अपने आश्रम से बाहर नहीं निकला इतने वर्षों में मौन साधन कर रहा है। स्लेट पर लिख कर ही बात का उत्तर देता है। और स्वामी शिवानन्द तो ढोंगी है, दुनियाँ को ठगता है, प्रापगण्डा (प्रचार) ही उसका लक्ष्य है मौज में खुद रहता है और शिष्य-मण्डली में ऐश करता है ? '

आलोचना करने वाले का मुँह नहीं बाँधा जा सकता। तथ्य की जाँच किये बिना या स्वार्थ भावना में डूबकर की गई, आलोचना का फिर मूल्य ही क्या ? उस साधु के प्रति मुझे दया आई और मैंने यही सोचा, यदि वह राग-द्वेष से ऊपर उठ सकता, उस डाक्टर की बुद्धि पर मुझे तरस आया, आज भी वह दुनिया से दूर, मानव जीवन का भार लेकर जीने वाले साधु को साधु मानता है। १५ वर्ष की गई उसकी मौन-साधना में विश्वको क्या लाभ हुआ ? और यदि वह स्वामी शिवानन्दजी की कार्य प्रणाली का अध्ययन कर सकता। करे भी तो कैसे ? बुद्धि पर अज्ञान, अंधकार का पर्दा पड़ा है, डाक्टर की निगाह में वही सन्त और साधु है, जो जीवन से—जन जीवन से जितना ही दूर हो ?

दशम अध्याय

दिव्य-जीवन का मार्ग-दर्शक

शान्ति चाहिए

आज मानव-जीवन जटिल हो गया है। सब कहीं बेचैनी है। स्वार्थ, लोभ, काम और क्रोध ने सर्वनाश ही कर रखा है। वातावरण लड़ाई झगड़ों से गन्दा हो चला है और बेचैनी, निरसता तथा वैमनस्यता पैदा हो रही है। जगत में प्रत्येक मनुष्य बेचैन है और किसी चीज के पाने का प्रयत्न कर रहा है। वह चीज क्या है, यह तो वह स्वयं भी

नहीं जानता। उसे मालूम होता है कि उसमें किसी वस्तु का अभाव है परन्तु उस वस्तु विशेष का यथार्थ स्वभाव और लक्षण वह स्वयं नहीं समझता। अपने आसाद् पूर्ण प्रवृत्ता के पूर्ण करने में वह उस सुख की खोज करता है जिसकी कमी उस को अपने जीवन में प्रतीत होती है, लेकिन सांसारिक महत्व पाकर वह उसे बंधन ही मानने लगता है। उसे उपाधि, मान पत्र,पद, सम्मान, शक्ति, नाम और यश मिलते हैं, वह विवाह करता है, उसके सन्तान होती है। सारांश यह है कि जो कुछ वह सुखदायी समझता है, उसे प्राप्त भी कर लेता है। किन्तु खेद! उसे शान्ति नहीं मिलती।

शान्ति निःशब्दता का नाम नहीं है। शोर गुल, लड़ाई झगड़े वाद विवाद का नहीं होना शान्ति नहीं है। यह बाह्य साधना से कठिनता पूर्वक प्राप्त होती है। यह परिस्थितियों की वह अवस्था नहीं है, जिसमें से सभी 'अवाञ्छनीय' निकाल दिये गए हों। यदि तीन साधु हिमालय की एकान्त गुफा में भी रहते हों, और आपस में लड़ते हों, अपने दिल में घृणा द्वेष और वैमनस्य रखते हों तो वे उस स्थान के परमशान्तिपूर्ण वातावरण को भी नष्ट कर देंगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि मानसिक व्यथा से दूर रह कर भी उन्हें शान्ति नहीं मिलती। शान्ति तो हृदय की वस्तु है इसीलिए स्वामी शिवानन्द कहते हैं:—

भले ही दुख की दशा में हों। आप आपत्ति, कष्ट, दुख और कठिनाइयों के बीच रहते हों तो भी यदि आप इन्द्रियों से हटकर,मन को शान्त कर और हृदय की मलिनताओं को दूर कर ईश्वर के आश्रित हो जायें तो आप आन्तरिक अखण्ड एकरस शान्ति का उपभोग करेंगे। बिना भावना के शान्ति नहीं मिलती। बिना शान्ति के सुख कहाँ? जो सभी कामनाओं को त्याग देता है, जो स्पृहा, स्वार्थ तथा अहंकार से

उपनिषद् की कथा है, महर्षि याज्ञवल्क्य ने जंगल में जाकर जीवन्मुक्ति का सुख उठाना चाहा। उन्होंने अपनी दो पत्नियों–मैत्रेयी और कात्यायनी को बुलाया। अपनी सम्पत्ति बराबर-बराबर बांट कर दोनों को दे दी। साध्वी मैत्रेयी ने पूछा—मेरे स्वामी! क्या यह सम्पत्ति मुझे शांति और अमरत्व प्रदान कर सकेगी? याज्ञवल्क्य ने जवाब दिया, इससे अमरत्व नहीं मिल सकता। तब फिर मैत्रेयी ने कहा—मुझे तो शांति व अमरत्व प्राप्त करने का उपाय बताइए। प्रत्युत्तर में याज्ञवल्क्य ने कहा—इस आत्मा को देखो, सुनो, इस पर मनन करो और इसका ध्यान करो तभी ये वस्तुएं प्राप्त हो सकती हैं।

"सच्ची गंभीर शांति का बाहरी दशाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है। सच्ची स्थायी शांति आन्तरिक अविनाशी आत्मा की सहजी निस्पन्दता है। यदि आप इस शांति सागर में रह सकते हो तो संसार के समस्त कार्य-व्यापारों का आप पर कोई प्रभाव नहीं होगा। यदि आप उछलते हुए मन को शांत करके, विचारों का संयम करके और बहिर्गामी इन्द्रियों का प्रत्याहार करके इस दिव्य शांति की आश्चर्यपूर्ण

निस्तब्धता में प्रवेश करोगे तो सारे बाधक शब्द व कार्य स्वयं बन्द हो जायेंगे, उनका आप पर कोई प्रभाव न पड़ेगा। सड़कों पर मोटरें दौड़ती रहें, बच्चे जोर-जोर से चिल्लाते रहें, आपके घर के आगे से रेल गाड़ियाँ दौड़ती रहें, आपके पड़ोस में ही कई मिल चलते रहें फिर भी इन सब के शब्द आपको बिल्कुल भी बाधा नहीं डालेंगे। परम शान्ति की प्राप्ति के लिए, यह आवश्यक है कि सारी कामनाओं का अन्त कर दिया जाय, हर हाल में अलमस्त रहने की भावना आ जाये, सारी इन्द्रियाँ पूर्णतः आपके संयम में हों और मन भी शांत हो।

"शांति वह पूर्ण निस्तब्धता और निश्चेष्टता है जिसमें सारे मानसिक विकार, विचार, कल्पनायें, भाव, मुद्रायें, पशुवृत्तियाँ आदि बिल्कुल बन्द हो कर; व्यक्तिगत आत्मा निर्मल दशा में अपनी दिव्य प्राचीन महिमा में आनन्द से आ विराजती है। शांति अनन्त आनन्द का साम्राज्य है। अनन्त जीवन और प्रकाश का प्रदेश है, जिसमें जीव को क्लेश देने वाली चिन्तायें और भय प्रवेश तक नहीं कर सकते। यह वह तत्कालीन मानसिक शांति नहीं है, जिसके लिए संसारी मनुष्य लम्बी यात्रा से थक जाने पर थोड़ा आराम करने के लिए जंगल के किसी एकान्त बंगले या गर्मियों में पहाड़ पर चले जाते हैं। और जिसे वे साधारण भाषा में शांति के नाम से पुकारते हैं। शांति तो चेतना से अतीत तुरीयावस्था है। शांति अन्दर है। एकाग्रता, धारणा और ध्यान के द्वारा शांति की खोज के लिए अपने हृदय-मन्दिर को टटोलो।"

सुख-शान्ति का मार्ग

एक बार एक साधक दिव्यद्रष्टा के पास गया और उससे पूछा— आत्मा का लक्षण क्या है? साधु चुपचाप बैठा था। साधक फिर

शिक्षक के पास गया और पुनः यही प्रश्न किया। ज्ञानी फिर भी चुप बैठा रहा। साधक तीसरी बार गुरु के पास गया। सन्त ने उत्तर दिया — मैं तो जबाव दे चुका हूँ। अयं आत्मा शान्तः। यह आत्मा शान्त है, मौन है। इसके पास निदिध्यासन के द्वारा प्रमाद् अविराम मौन व ध्यान के द्वारा पहुँचा जा सकता है।

यह आत्मा प्राणिमात्र में छिपा हुआ है। जिस मनुष्य में तीव्र और सूक्ष्म-ज्ञान है, वह इसे पहचान सकता है। जिस प्रकार मूंज को कूट कर रस्सी के लिए उपयुक्त बनाते हैं, इसी प्रकार साधना और धैर्य के द्वारा पांच आवरणों (काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह,) को निकाल कर आत्मा के तत्व को प्राप्त करना होगा। ब्रह्म ने इन्द्रियों का सृजन बहिर्मुखी वृत्तियों के साथ किया था। अतः यह तुच्छ जीव बाह्य संसार को ही देखता है अन्तरंग आत्मा को नहीं देखता। लेकिन जो साधक हैं तथा जो बलवती इच्छा और दृढ़ निश्चय के साथ आत्मा का साक्षात्कार करना चाहते हैं— अपनी दृष्टि को अन्तर्मुख वृत्तिवाली बना कर विषयों से इन्द्रियों को अलग करते हैं।

विश्व का सबसे बड़ा गुरु, सब का स्वामी, जीवों का जीव, प्रकाशों का प्रकाश तो मनुष्य के हृदय में ही बसता है। वह सदा प्रेमपूर्वक मनुष्य को ऊपर उठाने तथा उसका आलिंगन करने के लिए तैयार रहता है। उस पर ही भरोसा करना चाहिए। अपने स्वरूप को पहचानना चाहिए तथा अनन्त सुख, शांति, संतोष और अमरत्व का प्राप्त करना चाहिये। जैसे गोताखोर समुद्र में डुबकी लगाते समय तलतक चला जाता है और फिर रत्नादि लेकर बाहर आता है, वैसे ही साधक को भी अध्यात्म-ज्ञान रूपी सागर में गहरी डुबकी लगा आत्म-ज्ञान रूपी रत्न को निकाल कर ले आना चाहिये।

आत्मनिर्भरता से बढ़ कर कोई वस्तु दुनियाँ में नहीं है। यह गुण अनिवार्य रूप में साधकों में होना चाहिए। गुरु अथवा आचार्य केवल अध्यात्म-पथ या निर्देश कर सकते हैं। शङ्का समाधान कर सकते हैं तथा उत्साह भर सकते हैं। मनुष्य अपना कर्ता-धर्ता स्वयं है। दूसरा कोई उसके लिए कुछ नहीं कर सकता। हर समय हर जगह मनुष्य को अपना मार्ग अपने आप लेना होगा। वेद चिल्ला-चिल्ला कर कहते हैं कि मुक्ति प्राप्त करने के लिए श्रवण, मनन और निदिध्यासन ये तीन ही मार्ग हैं किन्तु गुरु से केवल श्रवण प्राप्त हो सकता है, अन्य दोनों तो आपको ही करने होंगे।

यह सोचना बड़ी भारी भूल है कि गुरु ही शिष्य के लिये सब कुछ करेंगे। यदि गुरु ही शिष्य के लिए सब कुछ करने लगें तो फिर ऋषियों के उपरोक्त वचन का मूल्य ही क्या रहा? साधक को मनन और निदिध्यासन पर विशेष ध्यान देना चाहिये। श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है—"उद्धरेदात्मनात्मानं"; मनुष्य अपना उद्धार स्वयं कर सकता है। भगवान् बुद्ध ने अपने ऊपर भरोसा किया। उन्होंने छः वर्ष तक जंगलों में कठोर तपस्या की। महात्मा ईसाने एकान्त सेवन के दिनों में तथा मरूभूमि में ४० दिनों तक कठोर साधन किये। यह कितने दुख की बात है कि कितने ही बुद्धिमान् व्यक्ति भी भ्रामक धारणाओं के शिकार बने हुये हैं। वे इस भ्रम में पड़े हैं कि उनके गुरु की कृपा मात्र ही उनके लिये मुक्ति का द्वार खोल देगी, चाहे वे जप, तप, ध्यान करें या नहीं, यह कितने दुख की बात है।

शांति के उपाय

एक महान् सन्त अपने जीवन के अन्तिम सांस गिन रहे थे कि उसी समय उनके भक्त आ पहुँचे और उन्होंने पूछा, "महात्मन्!

इसका उद्देश्य बतलाइए कि आनन्द निरंतरानन्द मुक्ति के लिए हम क्या करें?" "सन्त ने कहा—" धर्म शास्त्रों का अध्ययन करो और तदनुसार कार्य करो।" एक शिष्य ने फिर प्रश्न किया, यदि यह संभव न हो तो क्या करें? "भगवान का नाम दो हजार से भी अधिक बार, लो"—संत ने निश्चल भाव से उत्तर दिया। एक शिष्य फिर बोल उठा, यदि यह भी संभव न हो तो? "तो गुरु मन्त्र का एक हजार बार जप करो।" किसी ने फिर प्रश्न किया कि यदि ऐसा भी न किया जा सके तो? इस धार्मिक गुरु ने फिर जवाब दिया "तब यही उपाय है कि अच्छे संत का समागम किया जाय।" ऐसे ही सन्तों में स्वामी शिवानन्द जी की गणना की जा सकती है। यद्यपि आप गुरुडम को नहीं मानते, जैसा कि ऊपर भी आपके विचार उद्धृत कर आए हैं, पर आपका कथन है कि मनुष्य की चहुँमुखी उन्नति के लिए शाश्वत सुख और चिरस्थायी शांति के लिए आवश्यक है कि वह आध्यात्मिकता के पथ पर चले।

"अपना जीवन बनाओ। इस का अर्थ यह नहीं है कि आप अपने परिवार को छोड़ कर हिमालय की गुफाओं में चले जाओ। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि आप लम्बी जटा और दाढ़ी मूँछ बढ़ा कर, केवल नीम की पत्तियाँ चबा कर ही रहो। इसका तात्पर्य यही है कि आपको जीवन के लिए नई मनोवृत्ति, नए दृष्टिकोण का विकास करना होगा। प्रत्येक रूप में, प्रत्येक पदार्थ में परमात्मा को देखना होगा। सेवा और साधना द्वारा अपने जीवन को सुधारना होगा।"

इसी लिए स्वामी ने मानवीय उन्नति के लिए बीस आध्यात्मिक साधन बताए हैं:—(१) प्रातर्जागरण–नित्य ४ बजे, पहर रात रहते ब्राह्ममुहूर्त में उठो। ब्राह्ममुहूर्त ही प्रार्थना, कीर्तन, जप, ध्यान आदि के उपयुक्त है। (२) आसन–जप और ध्यान आदि के नियमित

अभ्यास के लिए पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर, पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में आध घण्टे से तीन घण्टे तक बैठने का अभ्यास एक ही आसन पर दृढ़तापूर्वक करो। शीर्षासन, सर्वाङ्गासन तथा २० प्राणायाम नित्य नियमपूर्वक करो। टहलना आदि लघु व्यायाम भी नियमित रूप से करो। (३) ईश-विनय—प्रातःकाल जप, ध्यान व भजन के लिए, आसन पर बैठते ही उपासना का श्रीगणेश कुछ कण्ठगत स्तोत्र या ईश विनय से करो। (४) मन्त्र जप—केवल प्रणव (ॐ, एकाक्षर) ॐ नमो भगवते वासुदेवाय (द्वादशाक्षर), ॐ नमो नारायणाय (अष्टाक्षर), ॐ नमः शिवाय (पञ्चाक्षरी), ॐ रामाय नमः, ॐ शरवणभवाय नमः, श्रीराम जय राम-जय जय राम, सीताराम, हरिः ॐ, गायत्री मन्त्र अथवा अपनी रुचि के अनुसार किसी भी इष्ट मन्त्र का जप १०८ दानों की एक माला से क्रमशः २१६०० तक की २०० मालाओं का अभ्यास नियमपूर्वक करो। मन्त्र लिख कर लिखित जप भी किया जा सकता है।

(५) आहार-शुद्धि—आहार की शुद्धि से सत्व की शुद्धि होती है। इसलिए नित्य शुद्ध और सात्विक युक्ताहार करो। लालमिर्च, इमली, राई, तेल, लहसुन, प्याज और हींग आदि का सेवन मत करो। मिताहारी बनो। उदर ठोक या मुख ठूँस भोजन न करो। जो वस्तु आपको अत्यन्त प्रिय हो, उसका सेवन वर्ष में १५ दिनों के लिये न करो। भोजन सादा, स्निग्ध और सरस केवल प्राणाधार के लिए औषधिरूप में करो। रसास्वादन के लिए भोजन करना पाप है। 'जिह्वा-संयम' के लिए वर्ष में एक महीना चीनी, चाय और नमक का सेवन न करो। बिना चटनी के रोटी, दाल भात पर ही जीवन निर्वाह करना सीखो। साग और दाल के लिए नमक और चाय तथा दूध के लिए चीनी

दूसरी बार न मांगो। (६) पूजागृह—ध्यान, पूजा, और ध्यान के लिए अलग स्थान होना चाहिए; अलग एक कोठरी को सदा ताले और कुञ्जी से सुरक्षित रखो। (७) स्वाध्याय—इसी पूजागृह में वेद, *उपनिषद्, पुराण, ब्रह्मसूत्र, श्रीमद्भगवद्गीता, योगवासिष्ठ, रामायण,* श्रीमद्भागवत, सहस्रनाम (विष्णु, शिव, ललिता, लक्ष्मी आदि), आदित्यहृदय आदि धर्मग्रन्थों और स्तोत्रों का विचारपूर्ण अध्ययन नित्य नियमपूर्वक करो।

(८) ब्रह्मचर्य—वीर्य रक्षा ही ब्रह्मचर्य है। वीर्य की रक्षा अति सावधानी से करो। वीर्य ईश्वर की विभूति है। वीर्य जीवनी-शक्ति है। वीर्य परम धन है। वीर्य प्राण है। वीर्य मेधा का सार है। वीर्य धारण ही जीवन और बिन्दु-पतन ही मृत्यु है।

(६) सत्संग—सत्संगति ही परम गति है। कुसंगति और असत्संगति से बचो। धूम्रपान, मद्यपान और मांसाहार का त्याग करो। (१०) मौन—मौन का अभ्यास नित्य दो घण्टे या सप्ताह में एक दिन नियमपूर्वक अवश्य करो। इससे शक्ति संचित होती है। (११) उपवास—पर्व दिनों पर व्रत का पालन करो और एकादशी को निराहार, फलाहार, दुग्धाहार, सात्विक युक्ताहार, अल्पाहार या एकाहार से उपवास करो। उपवास से मलबद्धता दूर होकर स्वास्थ्य की वृद्धि तथा चित्त की शुद्धि होती है। (१२) दान—अपने वित्त के अनुसार, अपनी आय का कुछ भाग, यथासम्भव रुपयों में एक आना दान प्रतिमास या प्रतिदिन नियमित रूप से करो।

(१३) सत्य-भाषण—सदा सच बोलो। झूठ कभी न बोलो। प्रिय बोलो। अप्रिय सत्य न बोलो। कम बोलो। अधिक न बोलो; व्यर्थ और मिथ्या न बोलो। (१४) अपरिग्रह—अधिक वस्तुओं का संग्रह

न करो। चार की जगह तीन या दो वस्त्र ही रखो। संतोषी बनो। सन्तोष ही जीवन का सुख है। सादा जीवन, उच्चविचार का ध्यान रखो। (१५) अहिंसा—मनसा, वाचा, कर्मणा कभी किसी को, किसी प्रकार का दुःख न पहुँचाओ। अहिंसा परम धर्म है। क्रोध को क्षमा से, विरोध को अनुरोध से, घृणा को दया से और हिंसा को अहिंसा की प्रतिपक्ष भावना से जीतो। (१६) स्वावलम्बन—पराधीन और पर-मुखापेक्षी और परावलम्बी न बनो। नौकरों के भरोसे न रहो। स्वावलम्बन सर्व-श्रेष्ठ गुण है।

(१७) आत्म-विचार—जो पाप दिन में किया हो उसका रात में सोने के पूर्व और जो रात्रि में किया हो, उसका प्रातः जागने पर उचित प्रायश्चित करो। आत्म-निरीक्षण और दोष-संशोधन का लेख 'आध्यात्मिक-दिनचर्या' या दैनिन्दिनी के रूप में नियमपूर्वक रक्खो। आगे की सुधि लो। बीती को बिसार दो। (१८) मृत्यु-स्मरण—काल चोटी गहे सिर पर सदा तैयार है; यह भूल न जाओ। धर्माचरण करो। सदाचार ही धर्म है। (१९) आत्म-चिंतन—नित्य जागने और सोने के पूर्व 'आत्म चिन्तन' का अभ्यास नियमित रूप से करो। आत्म-कल्याण की भावना जागरित करो। (२०) आत्म-समर्पण—अपने आपको पूर्णतया भगवान् के हाथ सौंप दो और सर्वस्व भगवान् के चरणों पर न्यौछावर करो। पूर्ण आत्म-समर्पण कर दो।

मन को विचलित होने से बचाने के लिए तथा आध्यात्मिक मार्ग पर द्रुत गति से चलने के लिए और सुख व मानसिक शान्ति प्राप्त करने के लिए श्री स्वामी जी ने एक बहुत उत्तम योजना निर्माण की है और वह है—प्रत्येक साधक के लिए 'आध्यात्मिक दैनिन्दिनी' में अपनी उन्नति का यह ब्यौरा लिखना। महीने भर की आध्यात्मिक उन्नति का यह लेखा ही समझिए। मास के अन्त में स्वामी शिवानन्द जी

को यह लेखा-जोखा भेजने से सुझावादि व और उन्नति के लिए आदेश भी प्राप्त होते हैं। इस डायरी में भरते समय अपनी त्रुटियों पर मनन करना चाहिए तथा दूसरे दिन व आगे उन्हें न दोहराने की सतत चेष्टा भी।

इस 'आध्यात्मिक दैनन्दिनी' में २६ प्रश्न मुख्य हैं।-(१) सोकर कब उठे ? (२) कितने घण्टे सोये ? (३) आसन कितनी देर किए ? (४) एक आसन में कितने देर बैठते हैं ? (५) शारीरिक व्यायाम कितनी देर किया ? (६) कितनी देर तक अपने इष्टदेव (सगुण निर्गुण) का ध्यान किया ? (७) कितना समय कीर्तन में लगाया ? (८) कितनी देर धार्मिक पुस्तकें पढ़ीं ? (९) सत्संग कितनी देर ? (१०) स्वार्थ रहित निष्काम सेवा में कितना समय लगाया ? (११) कितनी माला का जप किया ? (१२) कितने प्राणायाम किए ? (१३) गीता के कितने श्लोक पढ़े या कण्ठस्थ किये ? (१४) कितने मन्त्र लिखे ? (१५) कितनी देर मौन रहे ? (१६) कितने व्रत और जागरण किये ? (१७) कितना दान किया ? (१८) कितनी बार झूठ बोले और उसके लिये अपने को क्या सजा दी ? (१९) कितनी बार क्रोध आया, कितनी देर रहा और उसके लिये अपने आपको क्या दण्ड दिया ? (२०) कितने घण्टे व्यर्थ बिताये ? (२१) कितनी बार ब्रह्मचर्य में त्रुटि हुई ? (२२) कितनी बार बुरी आदतों को रोकने में असफल रहे और अपने को क्या दण्ड दिया ? (२३) किन गुणों का विकास कर रहे हो ? (२४) किन बुरी आदतों को छोड़ने का उद्योग चल रहा है ? (२५) कौनसी इन्द्रिय आपको ज्यादा सताती है ? (२६) कितने बजे सोये ? आदि

इसी प्रकार स्वामी जी दिव्य जीवन के प्रसार के लिए सतत सन्नद्ध हैं। आपका कथन है—"दिव्य जीवन इस पृथ्वी पर ईश्वरीय जीवन है। दिव्य-जीवन अनन्त से सुर मिला कर जीवनयापन करना है। यह आपको

मानव से देव बना देगा। यह आपको आनन्द, शान्ति, सुख, सफलता और मोक्ष प्रदान करेगा। दिव्य जीवन निज में कोई धार्मिक विश्वास नहीं है। यह तो सभी धार्मिक विश्वासों का प्रतिनिधित्व करता है। यह कोई नया धार्मिक जीवन नहीं है, यह सभी धर्मों के सार के योग का प्रतिनिधि है। यह एकता, शान्ति और अनुरूपता की ओर ले जाता है। दिव्य-जीवन एवं-जीवन के लक्ष्य के निकट ले जाता है। इस के लिए आदर्श दिनचर्या आवश्यक है। जब आप कीर्तन करें तब भगवान पर मनन करें; आँखें बन्द कर लेवें और इधर उधर न देखें। सदाचार अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य का पालन अत्यावश्यक है। साँसारिक इच्छाओं तथा वासनाओं का नाश कर देवें, तब ही भक्ति-भावना बढ़ेगी।

"आध्यात्मिक जीवन की आदि नींव और केन्द्रिय बिन्दु ब्रह्मचर्य का पालन है। दरिद्रों की सेवा जिस प्रकार आप कर सकते हैं, करिये। अनासक्ति भाव से निर्धनों की सहायता करके और नियमित दान द्वारा हृदय शुद्ध होता है। प्रतिदिन कम से कम १५ मिनट तक मन्त्र लिखिये, इस से एकाग्रता बढ़ेगी। सच्चा सुख, सतगुण और अन्तरात्मा में है, भौतिक पदार्थ में नहीं है। आप ब्रह्मानन्द में लीन होने की आकांक्षा करें—इन्द्रिय सुख की नहीं। इन्द्रिय-सुख तो सुख में सुख नहीं, यह केवल भ्रांति-सुख है। भ्रांति व्यक्ति ही उसे सुख मानता है, यह तो कष्ट का ही दूसरा नाम है। आध्यात्मिक यात्रा लम्बी और कष्टप्रद है। इस के लिए धैर्य व त्याग की आवश्यकता है। जीवन छोटा है, समय बीता जा रहा है और मार्ग में बाधाएँ बहुत हैं। परिश्रम से अपने को आध्यात्मिक साधनों में लगा दीजिये और इन्द्रियों का संयम करिये।

"आप आत्मिक बल का अनुभव कीजिये। 'सर्वम् खल्विदम् ब्रह्म', यह सब सचमुच ब्रह्म है। अनुभव करिये कि जो आत्मा आप में या मन्दिर में है, वही गरीबों और अशिक्षित लोगों के आन्तरिक हृदय में

वास करता है। उन से वैसा ही प्रेम कीजिये जैसा कि आप अपने इष्ट देवता से प्रेम करते हैं। आत्म-भाव से उनकी सेवा करें। प्रारम्भ में उदासीनता और वैर के भाव आवेंगे, परन्तु यदि निरन्तर आप ऐसे विचारों का स्वागत करेंगे जिससे प्रेम रहे; तो आपकी विजय होगी। इस पर दृढ़ विश्वास रखिये। प्रेम जीवन है और द्वेष ही मृत्यु है। हृदय का विकास करना जीवन है और संकुचित करना मृत्यु है। मनुष्य को केवल एक बार मरना चाहिए, परन्तु कृपण हजार बार मरता है। दुर्बल और स्वार्थी लाखों बार मरता है और जो द्वेष-युक्त है, अपने जीवन में हजार बार मरता है।"

जीवन का उद्देश्य

जब तक हम पत्तों को सींचते रहेंगे और यह न समझेंगे कि पेड़ को आवश्यक खाद्य तो जड़ों द्वारा पहुँचता है, भ्रांति में रहेंगे। रोग का लक्षण जान कर, उसका ठीक निर्णय किये बिना ही भाँति भाँति की औषध व अनुपान करते रहने से कुछ लाभ होने की संभावना नहीं, जब तक कि रोग के मूल का नष्ट न किया जाय। अशान्ति, कष्ट,क्लेश, दारुण दुख आदि को दूर करने के उपायों पर विचार करते हुए यह जान लेना अत्यावश्यक है कि जीवन क्या है और जीवन का उद्देश्य क्या है। यदि हमने जीवन के सही लक्ष्य, सही उद्देश्य को समझ लिया तो सब बाधाएँ सहज में ही दूर हो जायेंगी, सारी समस्याएँ हल होते देर ही न लगेगी।

मानव जीवन का उद्देश्य है—आत्म साक्षात्कार और इस से भी आगे भगवद् प्राप्ति, ईश्वर साक्षात्कार। स्वामी शिवानन्द जी ने अपने ६३वें जन्म दिवस पर कहा था—आपकी कामनाओं का एक मात्र उद्देश्य, सुख के लिये आपकी खोज का असली लक्ष्य, आपका वह

बहुमूल्य कोष, जिसके बिना आप प्रतिक्षण बेचैन और अशान्त रहते हो और इस संसार में आप की जीवन-यात्रा का एक मात्र गन्तव्य स्थान यही है, कि आप अपने अन्तःस्थित ईश्वर रूप आत्मा का साक्षात्कार करते हुए तत्रस्थ अक्षय शान्ति और परमानन्द का अनुभव करो। भ्रांतिवश आप संसार की वस्तुओं में सुख खोजते हैं लेकिन सत्यता यह है कि संसार की किसी वस्तु से परमानन्द, शाश्वत सुख और विमल शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। जवानी सायंकालीन पुष्प की भाँति मुरझा जाती है। शारीरिक बल बिखरे बादलों की तरह क्षीण और शीर्ण हो जाता है और देह के सौन्दर्य को क्रूर काल का ग्रास बनना पड़ता है। क्या प्रतिदिन आप संसार में ऐसा देखते नहीं? जिन स्थानों को आपने अपने सुख का केन्द्र समझ रखा है, वे मूर्खता पर अट्टहास करते हैं, क्योंकि दुःख को सुख, रात्री को दिन और मृग-तृष्णा की बालुकामयी भूमि को जलमय सरोवर मानने की आपने भूल की है।

आप की समस्त कियायें, चेष्टायें, सेवायें, भक्ति, उपासना, यज्ञ और दान सब केवल इस उद्देश्य से होते हैं कि उस अद्वितीय और अनुपम वस्तु को जान सको, जिसकी आयु को काल किसी प्रकार परिमित नहीं कर सकता, मृत्यु जिसके पास तक नहीं आसकती, जो विकारों के प्रभाव से परे है और जिसकी स्थिरता तथा नित्यता में किसी प्रकार, कभी भी, किसी कारण बाल भर अन्तर नहीं पड़ सकता। लेकिन जिस प्रकार कस्तूरी-मृग, अपनी नाभी में कस्तूरी होते हुए भी उसकी खोज में चारों ओर भागता फिरता है, वही स्थिति आपकी है; आप इस अज्ञान से भ्रान्त होकर कि परमात्मा कहीं दूर है, व्यर्थ ही उसकी खोज में इधर-उधर टक्करें खा रहे हो। तर्क-बुद्धि के कपाट और इन्द्रियों के द्वार बन्द कर दो और अपने हृदय के भीतर स्थित गुहा में, हृदयाकाश

में अन्तर्मुखी वृत्ति को ले जाओ तो वहाँ सदैव आनन्द देने वाले निर्वाण-पद का सुख मिलेगा। आप का मनुष्य योनि में जन्म लेकर सर्व श्रेष्ठ कर्तव्य यही है कि अपने भीतर स्थित आत्मा को पहिचान कर—आत्म-साक्षात्कार करलो। वही सर्वत्र व्याप्त रहा है फिर आप को ईश्वर साक्षात्कार स्वयं ही हो जायगा।

इस आदर्श परिस्थिति के अनुकूल अपने जीवन को बनाओ। सब से समान प्रेम-भाव रखो क्योंकि सर्वत्र आत्मा ही का अस्तित्व है; सब की निष्काम और निःस्वार्थ सेवा करो क्योंकि सर्वत्र आत्मा ही की व्यापकता है। इन्द्रियों के भोगों, काम, क्रोध तथा लोभ, मोह को त्यागो क्योंकि इन का अस्तित्व आत्मा के सर्वव्यापक होने के सत्य-सिद्धान्त का निवारण करता है। नाम, यश, बल, ऐश्वर्य और धनादि की कामना भी आत्मा की सर्वव्यापकता का विरोधिनी है। अतएव इन कामनाओं और तृष्णाओं से बचो। पुरातन काल के उन ऋषि-मुनियों के सुने हुए सदेश को फिर सुनो और बारम्बार सुनो, पशुओं की भाँति अपने जीवन को व्यर्थ न खोओ, आत्मसाक्षात्कार आप का जन्म सिद्ध अधिकार है। उस अक्षर और अमर आत्मा के प्रेम में अपने को लय कर दो; अपना जीवन आध्यात्मिक अनुशासन सहित निर्वाह करो। यही आपके जीवन का अन्तिम और प्रधान लक्ष्य है।

एकादश अध्याय

मानवता का संदेश वाहक

विश्व किधर ?

आज विश्व की विचित्र ही स्थिति है। प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर लोगों ने अंदाज लगाया था, कि समस्त संसार में शान्ति स्थापित हो जायगी। साम्राज्यवादिता की भूख बढ़ती ही गई। लोगों पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा था। अभी वे पिछले महायुद्ध से उत्पन्न महगाई, महामारी और अन्य अनेक कष्टों से छुटकारा पाने के लिए प्रयत्नशील

ही थे कि केवल २४-२५ वर्षों बाद ही द्वितीय महायुद्ध की प्रचण्ड विभीषिका ने जनता को और भी त्रस्त कर दिया। डा० विल्सन की योजना और उनका राष्ट्रसंघ एक ढकोसला मात्र सिद्ध हुआ। छोटे राष्ट्र त्राहि-त्राहि कर उठे, बड़े राष्ट्रों की बन आई। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए बड़े राष्ट्रों ने अन्याय, शोषण की भित्ति पर अपने शौर्य का प्रदर्शन किया। यह रोटी, कपड़े और स्थान के लिए लड़ाई न थी—प्रत्युत शोषण और हिंसा का नग्न नृत्य था, शान्ति के नाम पर अशान्ति का ताण्डव था, स्वार्थ की बलिवेदी पर छोटे राष्ट्रों के हितों की होली थी।

दो विश्वव्यापी महायुद्धों के अनन्तर भी शान्ति के आसार कहीं दिखलाई नहीं पड़ रहे। आज भी विश्व में युद्ध की प्रचण्ड अग्नि फैली है। सच है, जब तक मनुष्य मनुष्यत्व को न पहचान सकेगा, अपने स्वरूप को न पहचान कर बाह्याडम्बरों में लीन रहेगा, मृग-तृष्णा की भाँति स्वार्थ की आकांक्षा को बढ़ाता रहेगा—वह चैन नहीं पा सकता। मनुष्यों से ही तो राष्ट्र का निर्माण होता है। यदि आप युद्ध नहीं चाहते और उसके लिए अपने विचारानुसार सन्नद्ध हैं तथा आप ही जैसे विचारों वाले व्यक्ति एक से अनेक हो जाते हैं तो कोई कारण नहीं कि दुनिया महायुद्धों की चक्की में पिसती रहे। लेकिन युद्ध बन्द होने की बात करना निरर्थक है, जब कि आप सब तुच्छ द्वेषों और व्यक्तिगत घृणा से परिपूर्ण हैं। पहले अपने वैमनस्य और वैरस्य को दूर करो, फिर राष्ट्रों में भी युद्ध नहीं होगा। स्वामी शिवानन्द जी ने लिखा है—

"प्रत्येक राष्ट्र शक्ति बटोरने में लगा है। अमेरिका भी सत्ता हस्तगत करने और डालर इकट्ठे करने में लगा हुआ है। मनुष्य जितना अधिक धन के पीछे दौड़ता है, उसमें उतना ही अधिक लोभ और स्वार्थ

भी बढ़ जाता है। निस्सन्देह धन मनुष्य के लिये आवश्यक है, परन्तु धन ही जीवन का लक्ष्य नहीं है। किसी को भी 'धन के लोभ' का पुजारी नहीं बनना चाहिये। डॉलर से 'शान्ति' और आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती। "शान्ति" अपनी आत्मा ही में सेवा, त्याग, चित्त की शुद्धि, प्रेम और ध्यान के अभ्यास से मिल सकती है।

"संसार में प्रायः सभी शरीराभिमान में लगे हुए हैं। मैं, मैं, मैं। "मैं" का ही बोल बाला है। मैं डाक्टर हूँ, मैं अंग्रेज हूँ, मैं अमेरिकन हूँ, मैं इटालियन हूँ, मैं भारतीय हूँ। मैं सब कुछ जानता हूँ। मैं श्रेष्ठ हूँ। मैं जो चाहूँ कर सकता हूँ। मैं चतुर हूँ। मैं बुद्धिमान हूँ। मैं बलवान हूँ। मैं सभी विद्याएँ जानता हूँ। मैं कर्त्ता हूँ। मैंने बहुत दान किया है। मैंने पिता के नाम से 'अस्पताल', 'मन्दिर' या 'धर्मशाला' का निर्माण किया है। इस प्रकार इस "मैं" का कहीं भी अन्त नहीं है। पर जब इस नश्वर और अपवित्र देह से "अभिन्नता" का भाव जाता रहेगा, और आपको यह प्रतीति हो जायगी कि आप शरीर नहीं बल्कि आप अविनाशी और सर्वव्यापी आत्मा हैं, तब ही आपके समस्त दुःख और शोक मिट सकेंगे और आप इस भयंकर संसार के बंधन से छूट जाएँगे। आप अखण्ड आनन्द और अमृत रूप उस आध्यात्मिक निधि को सहज ही प्राप्त कर सकेंगे, जिसमें मृत्यु का भय नहीं है और जहाँ अमृतत्व का रसास्वादन करते हुए आप अनायास ही नित्य सुख और परम शान्ति प्राप्त कर लेंगे।"

अमेरिका में १२३ मंजिल के भी मकान हैं। हर एक मंजिल के हर एक कमरे को गरम और ठण्डा करने का प्रबन्ध है और आधुनिक विद्युत की सामग्री से भरा हुआ है। लेकिन आवश्यकता तो विशाल प्रेमपूर्ण हृदय की है, जिसमें आध्यात्मिक सुलक्षण (अर्थात् जप का अभ्यास, याग, श्रेष्ठ दिव्य सद्गुण, निरन्तर ध्यान,

आत्म-भाव और आत्म-साक्षात्कार) भरे हुए हैं और उन्नत विचारों का है। आप साधारण मकान या छोटी-सी फूँस की कुटिया में रह सकते हो। इससे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। क्या वह व्यक्ति उन्नत नहीं है जो आत्मानन्द में मग्न है, साधारण स्थान में ही रहता है, किन्तु जिसके पास शारीरिक स्वास्थ्य, विशाल हृदय, दिव्य सद्गुण दिव्य आनन्द, नित्य सुख और शान्ति, प्रचुर आत्म-ज्ञान है; परन्तु धन और चिन्ताओं का अभाव है? अथवा क्या वह व्यक्ति उन्नत है जो १२३ मंजिल के मकान में रहता है, जिसके अनेक वायुयान, मोटर गाड़ियाँ, अतुल धनराशि, अनेक चिन्तायें, बहुत प्रकार के रोग, संकुचित तुच्छ हृदय, अविद्या और उसके विकार काम, क्रोध, लोभादिक का बाहुल्य है?

पीड़ित, प्रताड़ित और त्रस्त मानवता में सरसता, पूर्ण शान्ति और सामंजस्य लाने के लिए, मनुष्यों के बीच के सारे प्रतिबन्धों को दूर करने के लिये आवश्यक है कि जीवन की एकता का पाठ पढ़ाने वाला दर्शन पढ़ा जाय। यह तुच्छ जीव या मनुष्य उस नित्य तत्व अर्थात् परमात्मा से अभिन्न है। केवल यही एक मात्र उपाय है, जिससे हिन्दु, मुसलमान, कैथालिक, प्रोटेस्टेण्ट, आइरिशमैन, अंगरेज, जैन और पारसी–सब को एक साधारण आत्मा के आधार पर एक ही मंच पर मिला सकता है। इसे भली प्रकार समझ लेने और एतदनुसार अभ्यास से विश्वव्यापी महायुद्ध की परम्परा ही बन्द हो सकती है और सब प्रकार के मतभेद, कलह और झगड़ों का अन्त हो सकता है, जो भिन्न भिन्न राष्ट्रों और जातियों में चल रहे हैं।

आज संसार को प्रेम-सन्देश की आवश्यकता है। अपने हृदय में प्रेम की ज्योति जगाओ। सब से प्रेम करो। सारे जीवों को प्रेमपूर्वक अपने बाहुपाश में बाँध लो। विश्वप्रेम को बढ़ाओ। प्रेम एक अद्भुत

दैवी गोंद है, जो सबके हृदयों को जोड़ता है। यह दिव्य जादूभरी महौषधि है जो शीघ्र ही अपना प्रभाव दिखलाती है। अपनी प्रत्येक क्रिया को प्रेम से परिपूर्ण कर दो। चालाकी, लोभ, कुटिलता और स्वार्थ को नष्ट कर दो। विषैली गैसों का प्रयोग कर मनुष्यों की जान ले लेना अत्यन्त ही क्रूर कर्म है। यह बड़ा अपराध है। जो वैज्ञानिक प्रयोगशाला में विनाशकारी गैस बनाता है, वह इस पाप से नहीं बच सकता।

कर्मयोग का अनुसरण करो

मनुष्य के हृदय में जो संकीर्णता होती है, उसका प्रधान कारण स्वार्थ है। स्वार्थ ही सब सद्भावों को समाप्त कर देता है, स्वार्थ नीचता है। स्वार्थ-त्याग के बिना आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती। निस्स्वार्थ कर्म ही योग है। कर्म आत्मपूजन है। सेवा करने से कोई हानि नहीं होती: कर्म ही ज्ञान में परिवर्तित हो जाता है। जैसा कि गीता में कहा है– "सर्वंकर्माखिलम् पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते" कर्म ही आराधना है, कर्म ही ध्यान है। निःस्वार्थभाव से सब की सेवा करनी चाहिए। सेवा के पुरस्कार का भाव मन में कभी न लाना चाहिये। इस प्रकार की सेवा करने वाले के लिये ईश्वर-दर्शन सरल है। मानव जाति की सेवा ही भगवान् की सेवा है। कर्मयोग के साधक के लिये तीन बातों की बड़ी आवश्यकता है–(१) अहभाव से सर्वथा मुक्त रहना। (२) कर्म निस्वार्थ, निष्कामभाव से करे, (३) समत्व बुद्धि रखे: न तो दुःख में दुःखी हो और न सुख में सुखी रहे।

सृष्टि के प्रत्येक परमाणु में एक ही ईश्वर व्याप्त है। यदि आप प्रातःकाल के समय इस पर विचार करें कि मेरी अपनी ही आत्मा विश्व में व्याप्त है, तो आप अनुभव करेंगे कि प्रत्येक दुःखी के रूप में आप

स्वार्थ ही कुचल या रहे हैं । उस समय निःस्वार्थ बनने की प्रेरणा मिलेगी । निःस्वार्थ सेवा में संलग्न हो जाओ । सब की सेवा प्रेम से करो और सब में अपने प्रभु को देखो । दरिद्रों की सेवा और पतितों के उद्धार में अपनी सम्पत्ति का त्याग नहीं तो उपयोग तब कर लो । अनाथ और निर्धन रोगियों की सेवा के लिए दौड़ कर उनकी यन्त्रणा दूर करो । नग्न, पीड़ित, शरणागतों के लिए तथा आप नित्य ईश्वर-प्रार्थना करते हैं ; नंगों को वस्त्र, भूखों को भोजन, निराश्रितों को शिक्षा और रोगियों को दवादान तथा शुश्रूषा, यही उत्तम कर्मयोग है । पददलितों को उठाओ और उनकी सेवा करो । दूसरों को सेवा के लिए प्रेरित करो और जान लो कि यही सच्चा योग है, क्योंकि यही आपके मन में सद्भावना को जगाता है तथा उसे इस योग्य बना देता है कि आप निरंतर अपने उपास्यदेव को ही देखते रहें ।

मनुष्य, जाति और देश की सेवा ही परमात्मा की सेवा है । सेवा ही उपासना है । जब आप दूसरों की सेवा करें तो कभी शिकायत मत करो । सेवा करके आनन्द मानो । सदा दूसरों की सेवा करने को उद्यत रहो । सेवा के लिये अवसर देखते रहो और एक भी अवसर को मत जाने दो । देना सीखो । देने में बड़ा आनन्द है । बहुत कम लोग इसे समझ सकते हैं । ईश्वरेच्छा के आधीन रहना सीखो । आत्म-निवेदन में अनिर्वचनीय शान्ति है । सत् और असद्वस्तु में विवेक करना सीखो—इस में अद्वितीय आनन्द है । आप के पास भौतिक, मानसिक, नैतिक अथवा आध्यात्मिक जो कुछ भी सम्पत्ति है, उसे दूसरों को बाँट कर भोगो । जब दूसरों की सेवा करो तो अनुभव करो कि आप अपनी ही सेवा कर रहे हो । अपने पड़ोसी से अपने ही समान प्रेम करो । मनुष्य को मनुष्य से अलग रखने वाली सारी रुकावटों को हटा दो । स्त्री-पुरुष भेद तथा शरीर के विचार को लिंगरहित तथा देहरहित आत्मा के चिन्तन द्वारा दूर कर दो । जब कर्म करो तो मन को आत्मा पर लगाए रहो ।

जीवन का उच्च बनाने का उद्योग करो। निपुण नारियाँ बात भी करती जाती हैं, बुनती भी जाती हैं; कुशल हारमोनियम बजाने वाला हारमोनियम भी बजाता रहता है, बातचीत भी करता रहता है। वैसे ही हाथों से कर्म करो, मन से भगवान का चिन्तन। मनुष्य के भाव ही सब कुछ हैं। मन्दिरों में ही ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती। ईश्वर साक्षात्कार घर में, मैदानों में, सर्वत्र हो सकता है। मनुष्य के घर उनके कार्यालय ही भगवान के मन्दिर हैं, यज्ञशाला है, जहाँ वह अपनी नि स्वार्थ सेवारूपी आहुति अर्पण कर सकता है। दृष्टि एव मन की प्रवृत्ति को बदलने की आवश्यकता है। कर्म ही योग और यज्ञ है।

कर्मयोग के साधन

साधु-सन्यासियों की, भक्तों की, आर्त्त एव दु खी जनों की भक्ति-भाव समन्वित सेवा करनी चाहिए। सेवा केवल सेवा के लिए करे। इस सेवा का पुरस्कार बहुत अधिक मिलता है। किन्तु भाव केवल सेवा का ही होना चाहिये, स्वार्थ का लेश भी होने से वह अपाम आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता। बीमारों की सेवा भगवान की सेवा है साबूदाना और चीनी का वितरण निर्धन एवं बीमार व्यक्तियों में करो। दु खी व्यक्ति की सेवा से बढ कर कोई योग नहीं, कोई धर्म नहीं। महात्मा ईसा ने कहा है, "दान से अगणित पाप धुल जाते हैं।" मरीज की आध घण्टे तक की हुई सेवा भगवान के तीन घण्टे तक किये हुये ध्यान अथवा २१६०० बार किये हुए प्रणव जप के बराबर है। सेवा को समय की बरबादी नहीं समझना चाहिये। जप, ध्यानादि का परित्याग करके भी बीमार की सेवा करनी चाहिये।

देश-सेवा, समाज सेवा, दरिद्र सेवा, रोगी सेवा, माता पिता की सेवा, गुरु और महात्माओं की सेवा, ये सब कर्मयोग हैं। किसी संस्था,

आश्रम, मठ या धार्मिक समाज में नित्य दो घण्टे निष्काम भाव से किसी प्रकार की सेवा करो। इससे आपका हृदय पवित्र होगा। याद रखो कि परमात्मा समाज का आधार है; सारा संसार परमात्मा का विराट रूप है। पृथ्वी, दूध, जल, अग्नि, प्रकाश, वृक्ष सब हरि हैं। यदि आप नारायण-भाव से या आत्म-भाव से सेवा करोगे तो आपका दृष्टिकोण बदल जावेगा। आपके लिये पृथ्वी पर ही स्वर्ग हो जावेगा।

कर्मयोग के अभ्यास के लिए प्रचुर धन का होना आवश्यक नहीं है। आप अपने शरीर और मन से ही सेवा कर सकते हो। यदि आप किसी निर्धन रोगी को सड़क के किनारे पड़ा देखो तो उसे थोड़ा जल या दूध पीने को दो। उसको सान्त्वना देकर प्रसन्न करो। उसे तांगे में बैठा कर निकट के अस्पताल में ले जाओ। यदि तांगे का किराया देने के लिये पैसे नहीं हों तो उसे पीठ पर उठा कर ले जाओ और अस्पताल में दाखिल करा दो। इस प्रकार की सेवा से आप का हृदय शुद्ध होगा। परमात्मा इस प्रकार की दरिद्र, असहाय लोगों की सेवा से अधिक प्रसन्न होता है, न कि धनिक लोगों की गर्वपूर्ण मददगार सेवा से।

जब कभी आपका पड़ौसी या कोई निर्धन मनुष्य रोगी होवे तो उसके लिए अस्पताल से दवाईयां दो। सावधानी से उसकी शुश्रूषा करो। उस के कपड़े, टट्टी का वर्तन, थालियाँ आदि धो दो। अनुभव करो कि आप रोगी के रूप में परमात्मा की सेवा कर रहे हो। इस प्रकार ध्यान करो "रोगी परमात्मा है। औषधि परमात्मा है। औषधि मापक-पात्र परमात्मा है। चिकित्सा परमात्मा है। रोग परमात्मा है। स्वास्थ्य परमात्मा है।"

यदि किसी के अंग में तीव्र वेदना हो रही है तो धीरे-धीरे उसके अंग को मलो; यह भाव रखो कि आप विराट् भगवान के अंग को मल

रहे हो। मलते हुए अपने इष्ट-मन्त्र का या भगवन्नाम का जप करो। अपने अन्तर्हृदय से प्रार्थना करो—'हे भगवान! इस मनुष्य के दु:ख को दूर करो। इसे शान्ति दो। इसे स्वास्थ्य दो।' यदि आप सड़क पर किसी मनुष्य या पशु के शरीर से खून बहता देखो तो पट्टी बांधने के लिए कपड़ा ढूढते हुए इधर-उधर मत भागो। अपनी चादर, धोती या कमीज में से तुरन्त कपड़ा फाड़ लो और पट्टी बाँध दो। चाहे अमूल्य रेशमी कपड़ा भी हो, उसे फाड़ने में मत हिचको। यह सच्चा कर्म-योग है। आप के हृदय को परखने के लिए यह कसौटी है।

यह कैसा रामभजन ?

आप ने कई भक्तों को देखा होगा, जो गले मे और कलाइयों मे छः मालायें पहनते हैं और हाथ में लम्बी माला लिए हुए दिन-रात "हरे राम हरे कृष्ण" का उच्चारण करते रहते हैं। ये भक्त कभी भी किसी मरणासन्न रोगी के निकट जाकर जल या दूध की एक बूद भी नहीं देंगे। उन से पूछेंगे भी नहीं कि "भाई, तुम्हें क्या चाहिए? मैं तुम्हारी क्या सेवा कर सकता हूँ?" वह उत्सुकता से उसे दूर से ही देखते रहेंगे। क्या आप इन लोगों को सच्चे वैष्णव या भक्त कह सकते हो? क्या इनके भजन, ध्यान से तनिक भी लाभ हो सकता है? रोगी के रूप में जिन्दा नारायण मरने को पड़ा हुआ है। उनके पास इतना हृदय नहीं होता कि जब उसका जीवन भी संशय में पड़ा हुआ है, वे उसके पास जाकर एक भी दयापूर्ण शब्द उस से कहें या उसकी सेवा करें। उनका हृदय पत्थर जैसा कठोर कैसे हो जाता है? वे ईश्वर प्राप्त की आशा कैसे कर सकते हैं, जब उनके सब प्राणियों में ईश्वर को देखने के लिए आँखें नहीं और इन सब रूपों में भगवान की सेवा का भाव नहीं है।

कुम्भक के द्वारा दो घन्टे स्वास रोक लेना, चौबीस घन्टे माला जपना, जिह्वा काट कर खेचरी मुद्रा का अभ्यास करना, पृथ्वी के नीचे

घंटों में चालीस दिन तक निराहार समाधि में बैठे रहना, गर्मी की तपती हुई धूप में एक टांग से खड़े रहना, दोपहर के समय सूर्य पर त्राटक करना, एकान्त वन में ॐ ॐ पुकारना, संकीर्तन करते हुए आंसुओं का समुद्र बहा देना—इन सब से कुछ लाभ नहीं हो सकता जब तक मनुष्य के अन्दर सारे प्राणियों के लिये तीव्र प्रेम और सारे प्राणियों में भगवान की सेवा का उत्कट भाव न होवे। आजकल के साधकों में इन दोनों परमावश्यक गुणों की खेद जनक त्रुटि रहती है और यही कारण है कि वे अपने एकान्त के ध्यान-साधन में ठोस उन्नति नहीं कर पाते। उन्होंने प्रारम्भ में दीर्घकाल तक प्रेम और सेवा के अभ्यास से अन्तःकरण को तैयार नहीं किया है।

सेवा का अग्रदूत

स्वामी शिवानन्द के ऊपर लिखित विचारों से स्पष्ट है कि आप निवृत्तिमार्ग के पथिक होते हुए भी, समन्वयात्मक योग के पक्षपाती होते हुए भी, मानवता की सेवा के कितने जबर्दस्त समर्थक हैं। आप ने कर्मयोग की विशद और अत्यन्त सहज व्याख्या की है और इस प्रकार दूसरे शब्दों में कहना आप का योग 'दीन-दुखियों का योग' है क्योंकि आप का कथन है, उनमें हमें आसानी से भगवान के दर्शन हो सकेंगे। स्वयं आप सेवा की साक्षात मूर्ति हैं, आप का सारा जीवन ही सेवा व साधना में बीता है और आज भी आप की सेवा भावना सर्वोपरि है। आपने सेवा द्वारा भगवान को सच्चे फूल चढ़ाये हैं।

सन् १९२८ की बात है। हैजा और चेचक संक्रामक या छूत के रोग हैं और दूसरों की तो कौन कहे, इन रोगों से पीड़ितों की सेवा करने से स्वयं घर वाले भी घबराते हैं। लेकिन जिन व्यक्तियों ने सेवा के खातिर अपना जीवन ही अर्पण कर दिया है, उनका छूत के कीटाणु क्या नुकसान कर सकते हैं? ऐसे निष्काम सेवी, योगी या सन्त तो

कामना रहित होकर सेवा करते हैं और प्रभु की कृपा से उनका बाल भी बाँका नहीं होता। उस वर्ष स्वामी जी ने हैजे के तीन और चेचक के एक रोगी की बहुत सेवा की थी। अस्पतालों में प्रायः हम देखते हैं कि ऐसे रोगियों का जीवन नौकरों की कृपा पर ही अवलम्बित रहता है और डाक्टर लोग कुछ भी ध्यान नहीं देते।

सीतापुर के वकील श्री चन्द्रनारायण हरकुली के पास 'गङ्गाश्रम' में ही स्वामी जी ठहरे हुए थे कि पुष्कर के सुप्रसिद्ध महन्त श्री वीर राघवाचारी का आदमी दौड़ा हुआ आया। बात यह थी कि महन्तजी के एक प्रिय शिष्य को हैजे ने धर दबोचा था और डाक्टरों के व्यवहार से वे परिचित थे। स्वामीजी तुरन्त मरीज के पास गए और उचित उपचार किया। वह ठीक होगया। कृतज्ञता ज्ञापन के लिए महन्तजी ने (साधना काल में) स्वामी जी की स्वर्गाश्रम स्थित कुटिया पर टीनें लगवाई थीं। इसी प्रकार हैजे का दूसरा रोगी—शिवालय के स्वामी पूर्णानन्दजी का एक साधक था। उसे नमकीन इंजेक्शन देकर ठीक किया। हैजे का तीसरा रोगी तथा चेचक से पीड़ित व्यक्ति स्वर्गाश्रम के ही थे। कोई उनके पास जाना भी नहीं चाहता था। आपने पहुँच कर भली प्रकार परिचर्या की।

ऐसे अनेक अवसर आए हैं, जब स्वामी शिवानन्द जी मरीजों की अधिक से अधिक सेवा के लिए तथा उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मरीज की चारपाई के पास हा सोये हैं। पिछले दिनों जब 'आनन्द कुटीर' के ही एक साधक श्री श्रीधर जी 'आंत के फोड़े' (अपेण्डीसाइट्स) के दर्द से पीड़ित थे, आपने बहुत सेवा की। स्वामी जी का हृदय दुःखी और पीड़ित को देख कर स्नेह और सहानुभूति से परिप्लावित हो उठता है क्योंकि आपने गीता के अनुसार अपने जीवन का निर्माण किया है। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है—"अद्वेष्टा

सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च। निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ (अध्याय १२ श्लोक १३) स्वयं भगवान कृष्ण अन्यों की सेवा में बहुत रस लेते थे महात्मा ईसा पादरियों और बीमारों की सेवा; सन्त जेवियर (X'avear) मरीज की सेवा के लिए नीचे से नीचा कार्य भी करते थे।

जनवरी १९४७ की २७ तारीख थी; नन्दा नामक एक अजनबी घूमता हुआ आश्रम में आ गया, वह तपेदिक से पीड़ित था। स्वामी जी ने उसे 'चैतन्य गुफा' में ठहराया (जहाँ आप दिन में साधना करते थे) और उसे कपड़े दिये खिलाया पिलाया व तात्कालिक आराम के लिए औषधी भी दी। जब उसने इलाज के लिए हरिद्वार जाने की इच्छा प्रकट की तो मार्ग व्यय के लिए ५) रु० तथा रामकृष्ण मिशन अस्पताल के डाक्टर के नाम अपने हाथ से लिख कर परिचय-पत्रक भी दे दिया ताकि सब प्रकार की सुविधाएँ मिल सकें। गत वर्ष एक कुष्ठ का रोगी लक्ष्मणझूले के पास अर्धचेतनावस्था में पड़ा था, उसे आश्रम में लाकर, अलग स्थान में ठहराया गया और उपचार किया गया।

एक दिन (ता० २०-१२-४६) ऋषिकेश से एक बहुत वृद्ध संन्यासी मध्यान्हकालीन भोजन के समय आश्रम में आया। भोजन की घण्टी बज चुकी थी और सब लोग भोजनालय में बैठे थे। स्वामी जी उस संन्यासी के पास गए और बाहर सीमेण्ट के चबूतरे पर बैठने को कहा तथा स्वयं थोड़ा पानी लेने गए, अपने हाथ से उस संन्यासी के चरण धोये तथा भोजनालय में लाकर उसे अपने हाथ से भोजन परोसा। उसके खा चुकने के बाद अपनी कुटी में गए। इस घटना के कुछ समय पूर्व (२७-११-४६ को) जब सब लोग भोजन के लिए बैठे थे, दो संन्यासियों ने आश्रम के द्वार से प्रवेश किया। स्वामीजी बरामदे में बैठे हुए थे। उनको देखते ही तुरन्त आप वहाँ पहुँचे और उन्हें बैठने

को कष्ट तथा प्रेमपूर्वक वार्तालाप किया। सन्यासी अलमोड़ा से आए थे और यात्रा पर जा रहे थे। उन्होंने बताया कि राह में जिन स्थानों पर क्षेत्र नहीं हैं, वहाँ भोजन की कठिनाई को दूर करने के लिए उनके पास पैसा नहीं है। स्वामीजी ने झट से ५) रु० निकाल कर दे दिये। आपके चेहरे पर प्रसन्नता थी और मुँह से जप कर रहे थे। दोनों प्रसन्न होकर, नमस्कार करके आगे बढ़ गए।

केवल यही नहीं, स्वामीजी अपने पूर्वाश्रम में भी (मलाया में डाक्टरी करते हुए) दीन-दुखियों, शोषित-पीड़ितों और रोगियों एवं साधु संन्यासियों की जी-जान से सेवा किया करते थे। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने (जो अब चार साल से सन्यास लेकर आपके शिष्य होगए हैं, पूर्वाश्रम में 'नरसिमय्या' नाम से मलाया में आपका भोजन बनाया करते थे) इन पंक्तियों के लेखक को बताया कि किस प्रकार आप भूखे को भोजन खिलाकर प्रसन्न होते थे तथा जरूरतमन्द, ब्राह्मण व गरीबों की तन, मन और धन से मदद करते थे। आप कामना रहित होकर दान करते थे और योग्य पात्र को १) रु० की जगह १०)रु० देकर आत्म-संतोष पाते थे।

लेखनी द्वारा मानवता को संदेश

स्वामीजी ने अपनी लेखनी द्वारा मानवता के प्रसार में जो योग दिया है, अपनी सानी नहीं रखता। विश्व के साधकों और आध्यात्मिक पथ पर चलने वालों को माला के मणकों की भाँति विश्व-बन्धुत्व और श्रेष्ठ मानवता के हार में पिरोने का सर्वोत्तम प्रयत्न आपने किया है। आप मानव-मात्र और जीव-मात्र की सेवा के समर्थक हैं तथा इसी लिए देश और विदेश के भी लोगों में संदेश को प्रचारित किया है। भारत के प्रमुख नगरों के अतिरिक्त विश्व के अन्य राष्ट्रों में भी 'दिव्य-जीवन-मण्डल' की शाखाएँ हैं, जो संदेश के सतत संवर्द्धन के लिए

सम्बद्ध है, इसका विवरण विस्तार से आगे दिया जायगा। अपनी मासिक पत्रिकाओं 'दिव्य-जीवन' के (विविध भाषाओं में छपने वाले संस्करणों) द्वारा तथा अन्य अनेक पत्रिकाओं में आप एतद्विषयक लेख हमेशा ही देते रहते हैं।

स्वामीजी ने अपनी पुस्तकों के द्वारा भी मानवता के संदेश को प्रसारित किया है। लोग अपना पथ भूल बैठे थे, अपने पद से च्युत होगए थे, अपने कर्तव्य को विस्मरण कर, अन्य अनेक अनुपयोगी चेष्टाओं में लग गए थे और ठीक मौके पर आपने ऐसे साहित्य से सबको जागरण का संदेश दिया तथा पीड़ित मानवता को उबारने के लिए प्रयत्नशील हुए हैं। आपने 'संतों की जीवनी' (दो भाग) लिखी है; जिसमें सभी प्रकार के संतों को स्थान दिया है। उदाहरण के लिए प्रथम भाग में शङ्कर, रामानुज, माध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य, गौराङ्ग महाप्रभु और महर्षि व्यास के साथ-साथ दक्षिण-भारतीय संतों— अप्पय दीक्षित, सदाशिव ब्रह्म, पट्टिनत्थु पिल्लई, रामलिंग स्वामी, बिल्वमंगल, ज्ञानदेव, समर्थ रामदास, नामदेव, तैलङ्ग स्वामी आदि और उत्तर भारतीय संतों - भगवान बुद्ध, कबीर, गुरु नानक, तुलसीदास, नरसी मेहता, गोरखनाथ तथा महिला-संतों— मीराबाई, सखुबाई, मदालसा और सूफी-संतों— मंसूर, शम्स तबरेज़, जलालुद्दीन रूमी आदि के अतिरिक्त दत्तात्रेय, रामकृष्ण परमहंस तथा महात्मा ईसा का संक्षिप्त चरित्र-चित्रण किया गया है। इसी प्रकार द्वितीय भाग में भी स्थान, जाति व धर्म के भेद भाव बिना निम्न संतों के रेखाचित्र दिये गए हैं:—कन्फ्यूशियस, मोहम्मद, जोरस्टर, आदि मसीहे, रामानन्द, अरुणागिरि, निम्बार्क आदि आचार्य; दक्षिणभारत के अलवर संतों में—अन्दल, अलवन्दार, मधुर कवि, नम्मलवर, तिरुप्पन, थोरुमलिसई आदि; शैव संतों में—अप्पर, सुन्दरमूर्ति, तिरु-ज्ञान सम्बन्धर; अन्य संतों में दादू, हरिदास, जयदेव, पीपा, रामदास

तथा सभी सिख गुरुओं—नानक, अंगद, अमरदास, रामदास, अर्जुन
हरगोविन्द, हरराय, हरकिशन, तेगबहादुर और गोविन्दसिंह की संक्षिप्त
जीवनी दी है। इनके अतिरिक्त जैनों के भगवान् पार्श्वनाथ और
महावीर, हरिजन-सन्तों में—चोखामाला, कनकदास व रविदास, ईसाई-
सन्तों में—सेण्ट अगस्टाइन, फ्रान्सिस क्सेवियर, और सेण्ट फ्रान्सिस
ऑफ असीसी तथा महिलाओं में—मुक्ताबाई और रबिया का चरित्र
चित्रण किया है।

स्वामीजी ने "दुनियाँ के धर्म" पुस्तक लिख कर विश्व के लोगों
को समीप लाने का प्रयत्न किया है और इसमें हिन्दुओं के अतिरिक्त
पारसियों, यहूदियों, बौद्धों, ईसाइयों, मुसलमानों (इस्लाम और सूफी
धर्म), जैनों व सिखों के धर्म की सुन्दर विवेचना की है तथा साथ ही
कन्फ्यूशियन धर्म, टावो धर्म, शिन्तो धर्मों के बारे में भी विचार किया
है। इसी में अखिल विश्व धर्म महामण्डल की कार्यवाही का भी विवरण
दिया गया है, जिसकी स्थापना दिसम्बर १९४५ में ऋषिकेश (आनन्द-
कुटीर) में की गई थी। आपका कथन भी यही है कि सब धर्मों के
मूल सिद्धान्त प्रायः एक ही हैं और लक्ष्य भी एक है। फिर धर्म के
नाम पर लड़ाई-दंगे और खून-खराबा कोई अर्थ नहीं रखता।

स्वामीजी ने प्रधानतः पाश्चात्य साधकों के लिये ही "योग के
क्रियात्मक पाठ" पुस्तक की रचना की है। यह पश्चिम और
पूर्व के योग के साधकों को ही समर्पित भी की गई है। जैसा कि हम
पूर्व ही लिख चुके हैं कि योग के द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध
करके आत्म-साक्षात्कार की भावना ही विश्व के सभी व्यक्तियों को
जाति, धर्म, स्थान और राष्ट्र के विचार से ऊँचे उठा कर, एकता
के बन्धन में बाँध सकेगी। इसी प्रकार आपने अपनी कृति "स्त्रियों

की सलाह" में महिलाओं को सेवा और मानवता की सेवा का सन्देश दिया है। आपने उक्त पुस्तक में महान महिलाओं के रेखाचित्रों में गाधारी, सेएट कैथेराइन, सेएट एलिजाबेथ, मेडम गेयोन, सेएट थेरेसा और सेएट श्रन्दल को स्थान देकर विश्वबन्धुत्व की भावना को प्रमुख स्थान दिया है।

इसी प्रकार स्वामी जी ने भक्तों, गृहस्थियों, महारानियों, विद्यार्थियों संकीर्तनप्रेमियों, समस्त साधकों एवं सन्यासियों को भी मानवता की सेवा के लिये आह्वान किया है। श्री स्वामी जी ने अध्यापकों को भी सन्देश दिया है 'हे शिक्षकों और प्रोफेसरो! अब जाग जाओ! विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य, धार्मिकता और नैतिक स्वच्छता के मार्ग में सधाओ! उन्हें सच्चा ब्रह्मचारी बनाओ! इस दैवी कार्य पर मन छोड़ो। आप नैतिकता से इस भारी कर्तव्य के लिए उत्तरदायी हो। यदि सच्ची लग्न से आप यह कार्य प्रारम्भ कर दो तो आपको आत्म-दर्शन प्राप्त हो सकता है। सच्चे बनो।'

भाषण भी साम्प्रदायिकता से दूर

स्वामी जी ने लेखनी के अतिरिक्त अपने भाषणों व कीर्तनों द्वारा भी मानवता के नित नूतन संदेश को जाग्रत किया है। ये किसी खास सम्प्रदाय या फिरके से सम्बन्धित नहीं होते, इनमें एकता और विश्वबन्धुत्व के भाव की प्रेरणा होती है। पिछले दिनों, यात्रा के समय कोलम्बो में भाषण करते हुए आपने कहा था—'सभी महान् शिक्षकों यथा कृष्ण, बुद्ध, ईसा और मोहम्मद ने हमें एक सदेश प्रदान किया है और वह है-प्रेम तथा शाति का संदेश और व्यक्तिगत प्रयत्नों द्वारा उनकी प्राप्ति।' १० दिसम्बर १९५० को लखनऊ में कीर्तन करते हुए

स्वामी जी ने ईसा, अल्ला और मेरी के संकीर्तन किए थे। विगत २३ जून १९५१ को आश्रम में ही कीर्तन करते हुए आपने सब देवों की स्तुति की और सब देवताओं के कीर्तन गाये। "ओ! मेरे ईसा, अभिवादन, अभिनन्दन—ईसा, रक्षक, रक्षक ओ! मेरे अल्लाह, अभिवादन, अभिनन्दन, खुदा, खुदा।" "ओ मेरे बुद्ध, अभिवादन, अभिनन्दन, शान्ति प्रदाता बुद्ध" आदि ईसा, अल्लाह और बुद्ध का कीर्तन भी किया। इन पंक्तियों के लेखक ने देखा कि कीर्तन करते-करते रात के ११॥ बज गए, सब लोग आनन्दधारा में बह गए। इस प्रकार सभी धर्मों की एकता में स्वामी जी विश्वास करते हैं।

द्वादश अध्याय

स्वामी जी का मिशन और कार्य पद्धति की विशेषता

लगन काम कर गई

—※—

हमें मालूम हो है कि स्वामी शिवानन्द जी ने अनेक वर्षों तक गङ्गा
ारे एक छोटी कुटिया में रहकर, कठोर तपस्या की है। कभी तो
ने को भी कुछ न मिलता और सूखी रोटी का, शाम के वक्त पानी
भिगो कर खा लेते; इस प्रकार साधना के लिए कुछ समय भी
ा जाता और कई दिनों तक क्षेत्र में जाने की भी जरूरत न पड़ती।

गङ्गा के ठण्डे पानी में खड़े होकर आपने जप और मनन किया है। एक पत्थर पर घण्टों बैठ कर मनन व निदिध्यासन किया और सच्चे संन्यासी की भाँति केवल पानी का बर्तन व कुछेक कपड़े ही पास में रखे।

एकान्त में रह कर इस प्रकार तपस्या चलती रही। जब-जब बीमार या गरीब की सेवा का अवसर मिलता तो वह भी करते। सत्संग और संकीर्त्तन भी करने लगे। कभी-कभी तो जब शरीर मन का आदेश न मानता, या बुरा कर्म करता, तो आप उसे जूतों व झाड़ू से पीटते। जनता की आलोचना से ऊपर उठने, सम्मान पाने की भावना को मिटाने, शरीर-भावना को हटाने के लिये तथा मद-मात्सर्य को दूर करने के लिये अनेक साधक ऐसा ही करते हैं। साधक अपने शरीर को क्रीतदास समझते हैं। कुछ कहते है—"जैसे कुत्तों को भोजन खिलाते हो, शरीर को भोजन दो और काम लो। इसको लाड़-प्यार किस लिये किया जाय?" कुछ संत अपने शरीर को गर्दभबन्धु कहते थे। श्री रामकृष्ण परमहंस अपने को 'मैं सेवक' कहा करते। देह-भाव को हटाने के लिये ये विभिन्न प्रकार हैं।

स्वामी जी ने फिर परिव्राजक जीवन व्यतीत किया। कैलाश, वृन्दावन, गोवर्धन पहाड़ी और तिरुवन्नामलय की अरुणाचलम् पहाड़ी की परिक्रमा की; बद्रीनाथ और केदार की यात्रा की तथा समस्त भारत के पवित्र मन्दिरों और नदियों के दर्शन किये। इस प्रकार आपको अनेक व्यक्तियों के सम्पर्क में आने का अवसर मिला, दूर और नजदीक के लोगों की स्थिति आपने देखी। इस बार आपने भारत को एक नये दृष्टि-कोण से देखा। आपने देखा कि कैलाश की महान संस्कृति का अधीश्वर, यह देश आज अन्ध-विश्वासों और रूढ़िवाद के प्रबल फाँस में बन्दा पड़ा है। आपने सोचा, जिसे हिंसा और वासना के नरक में

डूबते संसार को सत्य शान्ति का संदेश देना है, यह श्रान स्वयं बेख़बर है, नींद में सोया पड़ा है। *आपकी आत्मा में एक तूफान उठ आया—"क्या मैं इसकी उपेक्षा कर पर्वतों में ही चुपचाप रमा रहूँगा?"*

हृदयमें लगन लग गई थी। आपने देखा अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट रहना; अपने को ही आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत बना लेना *काफी* नहीं है। आपके रोम-रोम में रमी विश्वात्म-भावना विद्रोही हो उठी—"मैं सब की सेवा करने के लिये, सब को सुखी बनाने के लिये, सब *का अज्ञान हरने के लिये ही यहाँ विद्यमान हूँ।" माया के जाल को* तोड़ कर आप बाहर निकल आये। आपकी अन्तरात्मा बोल उठी—"सब की सेवा ही अपनी सेवा है, मानव मात्र की सेवा ही भगवान् की सेवा है।" और आप उसके बाद मानव की सेवा के लिये कटिबद्ध होगए।

स्वामी जी ने अनुभव किया कि जब तक जनता की आध्यात्मिक चेतना को जागृत न किया जायगा, कुछ न हो सकेगा। भाषण, सङ्कीर्तन, लेखों व पुस्तकों द्वारा आपने सोई हुई जनता को जगाने का बीड़ा *उठा लिया। आपने देखा कि दीन-हीन आज पीड़ित और शोषित हैं* और उनके कष्ट को दूर करने के लिये लोगों की मानसिक भावनाओं में परिवर्त्तन लाने की आवश्यकता है। आपने देखा कि जनता अशिक्षित होने के कारण रूढ़िवाद और अंध-विश्वासों में ग्रस्त है और उसमें शिक्षा की आवश्यकता है। आपने देखा कि लोग बीमारियों से ग्रस्त हैं और उन्हें *चिकित्सा व औषधि की आवश्यकता है।* आपने देखा, लोगों को मानसिक-सामग्री पहुँचाने के लिये कुछ ऐसे साधकों की आवश्यकता है, जो योग, भक्ति, वेदान्त और कर्मयोग में शिक्षित किये जाकर दूर-दूर तक जागृति, समता और विश्व भावना का संदेश गुँजा-रित कर सकें।

आपके मन में समाज के साँचे में सुधार के लिये—विविध विचार-धाराएँ चक्कर काट रही थीं। आपने सोचा अहम् भावना को त्याग करके, एक ऐसे आध्यात्मिक केन्द्र की स्थापना की जाय, जिससे उपरोक्त सभी समस्याएँ हल हो सकें। 'मैं' की भावना को नष्ट कर सब में अपने ही स्वरूप का दर्शन किया जाय। इस 'मैं' में जो जंजाल है, उसकी झाँकी वे ही ले सकते हैं, जिन्होंने कभी स्वयं 'मैं' का अनुभव किया। स्वामी जी ऋषिकेश लौट आये और गङ्गा के तट पर, ऋषिकेश से लगभग १॥ मील दूर, स्वर्गाश्रम के बिल्कुल सामने, "आनन्द कुटीर" की स्थापना की। अब तक आप शारीरिक रोगों के ही डाक्टर थे—अब मानसिक रोगों की चिकित्सा का काम भी आपने हाथ में ले लिया। योग के विरुद्ध जनता में फैली भ्रान्त-भावना को दूर करने के लिये आपने १६२६ ई० में "योग का अभ्यास" पुस्तक लिख कर मद्रास से छपाई और उसके बाद तो यह क्रम निरंतर चलता रहा जो अब तक चल रहा है। अब आपने जीवन के सभी उपयोगी विषयों को लेकर और विशेषतः आध्यात्मिक भावना को जगाने का महान् प्रयत्न किया है। आज देश-विदेश के अनगिनत साधकों की आत्म-प्रेरणा का यह केन्द्र एक विशाल वट-वृक्ष के रूप में हमारे सामने है।

यहाँ एक प्रश्न पैदा होता है—क्या यह 'लंगोटी' के लिये एक सिद्ध का फिर से संसारी होना नहीं है? गांधी जी ने भी कहा था कि राजनैतिक संघर्ष ही मुक्ति-साधना है। विवेकानन्द ने अमेरिका में भारतीय सांस्कृतिक विजय पताका फहराई। स्वामी रामतीर्थ प्रोफेसरी को लात मार कर राम सन्देश सुनाने, संसार के अन्य मुल्कों में रम गये और पुनः भारत लौट कर यहाँ भी वेदान्त-धारा प्रवाहित की। असल में साधना का चरम सौंदर्य यही है कि साधना जीवन की साधना न रह कर जीवन ही साधना हो जाये—गीता का 'योगः कर्मसु कौशलम्' भी तो यही है।

"प्राचीन भारत में भी महन्तवाद था और पश्चिम की नई उपज भी संस्थावाद है। भारत के महन्तवाद ने नए-नए सम्प्रदायों और महन्तों की सृष्टि की थी और नए संस्थावाद ने लीडरों की—यानी संस्थावाद व्यक्तित्व के विकास का एक साधन रहा है, पर स्वामी जी एक विशाल संस्था के अध्यक्ष होकर भी 'महन्त' नहीं हैं। महन्त हैं ग्रहणशील! 'शिष्य का पूजा भेंट उसे प्राप्त हो', वह मानता हो, यह उसका अधिकार है, पर स्वामी जी के लिये आनन्द कुटीर भिक्षा की झोली नहीं, आत्म दान की अंजलि ही है। यह उल्लेखनीय है कि स्वामी जी जहाँ कलम के कलाकार हैं, वहाँ फावड़े के सिपहसालार भी हैं। आप महान होकर भी हम से (जन जीवन से) दूर नहीं हैं, हम में से ही हैं। फलस्वरूप आप साधक की मात्र वन्दना ही ग्रहण नहीं करते, उसका आत्म-निवेदन भी ले पाते हैं और उत्तर में उसे महानता का आतङ्क न दे, अपनी सम्पूर्ण महानता के साथ उसके जीवन में ओत प्रोत रम जाते हैं। यही कारण है कि आपका साधक दर्शनों की 'टेकनीक' में नहीं फँसता, विधानों के मायाजाल में नहीं चकराता। आप साधक की उसकी उँगली पकड़ कर उसे सीधी सड़क पर लगा देते हैं। यह सड़क भी जंगलों की ओर नहीं गई, परिवारों के बीच में ही चली है। सच तो यह है कि आप जंगल के सन्त नहीं जीवन के सन्त हैं। साधुओं का एक नया दल आपका लक्ष्य नहीं, सांस्कृतिकता से अभिषिक्त राष्ट्र का सामूहिक-मानदण्ड निर्माण ही अभीष्ट है।"

डा० मोहम्मद हाफ़िज सैयद (प्राध्यापक, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) के शब्दों में, स्वामी शिवानन्द का मिशन सिमिट कर एक पंक्ति में आ गया है—'एक व्यक्ति के पास सिर्फ ५०) रु० है और वह अपनी सारी रकम धर्मार्थ कार्यों में लगा देता है तथा एक अन्य व्यक्ति

के पास कई लाख रुपये हैं, किन्तु वह उन्हें बचाये रखता है, स्वामी शिवानन्द वह व्यक्ति हैं जिनके पास लाखों हैं, पर जो सब के सब लौट देते हैं और आप समाज व मानवता के लिये उन भक्तों से अधिक उपयोगी हैं- जो गुफाओं में वास करते हैं।'

दिव्य-जीवन मण्डल की स्थापना

स्वामी जी ने 'आनन्द कुटीर' में आने के बाद आध्यात्मिक प्रचार के लिये अपनी योजनानुसार कार्य प्रारम्भ कर दिया था। आप स्थान स्थान पर भाषण व सकीर्तन के लिये जाने लगे। एक बार आप प्रचार-कार्य के सिलसिले में पजाब गये हुये थे। वहाँ आपके कुछ भक्तों ने एक संस्था स्थापित करने की माग की जिससे, सर्वसाधारण में आध्यात्मिक तत्वों का विकास हो और जनता की प्रवृत्ति जड़वाद, भौतिकवाद से परिवर्तित होकर अध्यात्म-पथ पर लगे। आज जब कि जीवन के सभी क्षेत्रों में विज्ञान का प्राधान्य है और जनता तर्क विवेक के बिना किसी बात को मानने के लिये तैयार नहीं है तथा लोग साधारणतया अन्धविश्वासों से बचना चाहते हैं, उन्हें एक ऐसे स्थितप्रज्ञ और आत्मज्ञानी गुरु की आवश्यकता थी, जो परस्पर पथ दर्शन कर सके। इस प्रकार स्वामी जी ने निमित्त बन कर प्रभु का यह कार्य हाथ में लिया और जनवरी १९३६ में 'डिवाइन लाइफ सोसायटी' नामक एक संस्था सगठित की गई। कुछ ही दिनों के भीतर ट्रस्ट ने इतना जबर्दस्त काम किया कि स्वामी जी के सब भक्तों और प्रशसकों का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हुआ। यह निश्चय किया गया कि ट्रस्ट के अन्तर्गत एक ऐसी सस्था की स्थापना की जाय ताकि सब लोग— भक्त एव शिष्य किसी विशेष अवसर पर एकत्र हो कर एक दूसरे के अनुभव से लाभ उठावें और सामूहिक रूप से स्वामी जी के श्रीचरणों में बैठ कर कुछ सीखें। इस प्रकार 'दिव्य-जीवन-मण्डल (डिवाइन

लाइफ सोसायटी) की स्थापना की गई और इसका मुख्य ध्येय आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार रखा गया। थोड़े ही समय में इस संघ की शाखायें समस्त भारत में और भारत के बाहर भी यूरोप के कई स्थानों में, दक्षिण अफ्रीका में, लंका, बर्मा, मलाया में खुल गईं। इस सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक अगले अध्याय में लिखेंगे। यहाँ हम उक्त संघ की मुख्य प्रवृत्तियों की ओर निर्देश-मात्र करेंगे:—

प्रारम्भ में यह तय किया गया कि 'दिव्य-जीवन मण्डल' अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये निम्न कार्य करेगा-(१) साल में दो बार शिवानन्दाश्रम में 'साधना-सप्ताह' करेगा, जिसमें बड़े दिन की छुट्टियों और ईस्टर में अर्थात् अप्रैल व दिसम्बर में ४-५ दिन निर्धारित कर लिये जायें जब कि सामूहिक रूप से एकत्र होकर भक्तगण साधना कर सकें और उस ढंग को समझ कर अपने स्थानों को लौट कर उसी प्रकार जीवन को नियमित बनावें। (२) संघ के उद्देश्य की पूर्ति के लिये यानी आध्यात्मिक धारा को चहुँ ओर प्रसारित करने के वास्ते विश्व में सब जगह संघ की शाखाएँ स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। (३) शिवानन्द औषधालय खोला गया, जहां मरीजों को मुफ्त दवा दी जाती है। (४) 'दिव्य जीवन' (Divino Life) अंगरेजी पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। (५) विभिन्न प्रान्तों, क्षेत्रों में आध्यात्मिक सम्मेलन करना। (६) आश्रम में कतिपय विद्यार्थियों को लेकर योग, भक्ति, वेदान्त और कर्मयोग की समुचित शिक्षा देना ताकि वे प्रचार कर सकें। (७) देश और विदेश में आध्यात्मिक पुनरुद्धार के लिये प्रचारक भेजना। (८) कथा,कीर्तन व अध्ययन के लिये कक्षाएँ लगाना। (९) आध्यात्मिक विज्ञप्तियाँ तथा पुस्तिकाएँ छपा कर उन्हें जनता में निःशुल्क वितरण करना, ताकि इस ओर जन-रुचि हो सके। (१०) साधना के लिये शिवानन्दनगर में ब्रह्मचारियों, संन्या

तियों, वानप्रस्थियों और गृहस्थियों के लिए स्थान-निर्माण करना। (११) पत्र-व्यवहार द्वारा देश और विदेशों के साधकों को आध्यात्मिक शिक्षा देना, निर्देश करना व प्रदर्शन देना। (१२) पुस्तकें प्रकाशित करना और इसके लिये 'शिवानन्द प्रकाशन मण्डल' स्थापित किया गया। (१३) शिवानन्द नगर के आस-पास फैली निरक्षरता को दूर करने के लिए एक अपर प्राइमरी स्कूल भी चलाया जा रहा है। (१४) संस्थापक-अध्यक्ष (स्वामी शिवानन्द जी) का जन्म-दिवस मनाना। (१५) गरीबों और साधुओं को भोजन के लिए एक अन्नक्षेत्र खोलना; जो पिछले कई वर्ष से चल रहा है। 'दिव्य जीवन संघ' को अपने उद्देश्य की पूर्ति में बहुत सफलता मिली है और इसकी प्रवृत्तियाँ आज और भी बढ़ गई हैं—यथा 'योग-वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय' और अंगरेजी व हिन्दी में, उसके मुख-पत्र भी प्रकाशित करना, शिवानन्द फार्मेसी का चालू किया जाना, विश्वनाथ मन्दिर का निर्माण, स्वामी जी की 'हीरक जयन्ती' तथा 'संन्यास रजत जयन्ती' का मनाया जाना आदि। इन प्रवृत्तियों का परिचय विस्तारपूर्वक अगले अध्यायों में मिलेगा।

शिक्षण का ढंग

दिव्य-जीवन मण्डल को संगठित करके स्वामी जी ने विश्व के आध्यात्मिक जीवन में एक नवीन अध्याय जोड़ा है। संघ के निर्माण से एक बहुत बड़ा लाभ यह हुआ कि शिवानन्दाश्रम (आनन्द कुटीर) का द्वार साधकों के लिये खुल गया तथा देश में आध्यात्मिकता के संदेश को फैलाने के लिए योग्य प्रचारक भी निकले। पहले स्वामी जी ने किसी को संन्यास-आश्रम में दीक्षित नहीं किया था। किन्तु संघ के स्थापित होने से योग्य, शिक्षित और त्यागी व्यक्तियों की आवश्यकता, जो कठिनाइयों में अपने उद्देश्य को त्यागें नहीं तथा इसलिये ऐसे योग्य युवकों को पहले तो शिक्षण दिया, और फिर संन्यास दे कर उन्हें प्रमाण-पत्र भी दे दिया।

स्वामी जी का शिक्षित करने का ढंग भी निराला ही है। प्रतिदिन कोई न-कोई साधक आश्रम में आते ही रहते हैं, जिनमें विद्यार्थी भी होते हैं, सेवा की भावना लेकर आने वाले नवयुवक तथा गृहस्थी भी। उनमें से कुछ तो एक महीना या तीन महीने तक शिक्षा लेकर चले जाते हैं, कुछ २-३ साल रह कर ब्रह्मचर्य पालन करते हैं और योग-साधना द्वारा अपने हृदय की शुद्धि करते हैं और भावी जीवन में श्रेष्ठ कर्म करने के लिये तैयार होते हैं। उनमें से कुछ ऐसे भी होते हैं, जो सेवा को ही अपना लक्ष्य बना लेते हैं और सेवा तथा आध्यात्मिक प्रचार के लिये संन्यास-दीक्षा ले लेते हैं। जो व्यक्ति आश्रम में आता है, उसे स्वामी जी उसी भाँति का कार्य देते हैं—कोई कुंकुम व प्रसाद लिफाफों में रखता है, कोई निःशुल्क भेजी जाने वाली शिक्षायें मोड़-मोड़ कर लिफाफों में रखता है, कोई डाकघर (आनन्द कुटीर पोस्ट आफिस) में कार्य करता है। कोई सदस्य-विभाग में सहयोग देता है तो कोई पत्रिका विभाग में। कोई प्रकाशन विभाग में मदद देता है तो कोई कीर्तन वा मन्दिर के काम में हाथ बँटाता है। कोई फार्मेसी में कार्य कर रहा है। कोई स्वामी जी के लेखों का अनुवाद हिन्दी, उर्दू, गुजराती वा तामिल या किसी अन्य भाषा में करता है। इस प्रकार एक व्यक्ति को कुछ ही मास में पूरा शिक्षण मिल जाता है। वह आसन-प्राणायाम भी सीखता है। कीर्त्तन भी करता है, उसे भाषण देने का भी अभ्यास कराया जाता है। कभी कभी नाटक भी होते हैं आदि।

स्वामी जी के पास कोई भी साधक कहीं से भी क्यों न आवे, आप उसका आदर करते हैं; जाति, स्थान, धर्म का कोई बंधन नहीं है। वह जितने समय ठहरेगा, आश्रम की ओर से उसको मुफ्त में भोजन दिया जाता है। स्वामी जी का यह प्रयत्न रहता है कि थोड़े से ही अर्से में नए साधक को अधिक से अधिक शिक्षण मिले और आप अनुशासन-पूर्वक नए नए काम सीखने को अलग-अलग विभाग में देते हैं। कभी

तो ऐसा होता है कि प्रतिभाशाली साधक को पूरा काम ही सौंप देते हैं ताकि वह उत्तरदायित्व महसूस करे और अपनी योग्यता के द्वारा उस कार्य को आगे बढ़ावे तथा वह व्यक्ति (शिष्य) जो पहले काम सँभालता है, बद्रीनाथ, केदार या कैलाश की यात्रा पर चला जाता है अथवा आध्यात्मिक प्रचार के लिए नीचे मैदान में भेज देते हैं। स्वामीजी का यह ध्यान रहता है कि सब लोग उत्साह और स्फूर्ति से अपना कार्य करें और आलसी व आरामतलब न बनें। स्वामी जी का अपना क्रियात्मक जीवन साधकों के लिए आदर्श रहता है।

शिवानन्दाश्रम का सब कार्य बड़े नियमित रूप से चलता है। विश्वनाथ मंदिर की आरती एक ही समय प्रतिदिन होती है, घण्टा बजते ही अखण्ड-कीर्तन के लिए नियुक्त किया हुआ दूसरा साधक आ जाता है; भोजन की घण्टी दोनों वक्त नियमित समय पर बजती है। स्वामीजी स्वयं दोनों वक्त कार्यालय में तथा रात को कीर्तन में नियमित समय पर आते हैं। आप साधकों को भाषण द्वारा अधिक शिक्षण नहीं देते, प्रत्युत उदाहरण द्वारा उसे सिखाते हैं। रसोईघर में, कई वर्ष पूर्व की बात है, 'रोटी-रोटी' या 'दाल-दाल' पुकारते हुए खाना परोसा जाता था; स्वामीजी ने कहा—'रोटी' नहीं 'रोटी भगवान' और 'दाल' नहीं 'दाल भगवान' आदि और तब से वही पद्धति चालू है। भोजन शुरू करने से पहले प्रार्थना व कीर्तन नियमित रूप से होता है। आप विश्वबन्धुत्व का प्रचार करते हैं, बल्कि अपने कार्यों द्वारा भी उस भावना को प्रकट करते हैं, ताकि सभी साधक व शिष्यवर्ग उत्तम आदतें ग्रहण करें। एक बार आश्रम में एक ईसाई भक्त पधारे; उनका भोजन उन्हें कमरे में ही भेज दिया जाता था। श्रेष्ठत्व-भावना का जड़ोन्मूलन करना कठिन है, किन्तु प्रयत्न से सब संभव है। स्वामीजी ने इस भावना को बिलकुल नष्ट कर दिया है। आपको यह बुरा लगा कि ईसाई होने के कारण उक्त सज्जन को अलग

भोजन कराया जाय। आपने दूसरे दिन भोजन के समय उन्हें अपने स्थान पर ही आमंत्रित किया और साथ-साथ बैठ कर खाना खाया। उसके अगले दिन से फिर सब के साथ ही बैठ कर वे खाने लगे।

हिन्दुओं के मन में ही संस्कार ऐसे बन जाते हैं कि वे कैसा भी मुसलमान क्यों न हो, उसे घृणा करने लगते हैं और फिर ब्राह्मण तो उन्हें अछूतों से भी नीचा मानते हैं, क्योंकि मुसलमान लोग गौ-हत्या और गौ-मांस खाने के लिए बदनाम हैं। और चूँकि वे गाय को माता के समान मानते हैं, घृणा हो जाना स्वाभाविक है। शिवानन्द नगर में विश्वनाथ मन्दिर का निर्माण-कार्य जारी था और उस समय उस कार्य के लिए एक मुसलमान 'ओवरसीयर' ही नियुक्त था। दुर्भाग्यवश वह भी इस घृणा का शिकार बने बिना न रहा और उसे पत्ते में भोजन भेजा जाता था और दाल व अन्य तरल पदार्थ एक कुल्हड़ में। स्वामीजी ने देखा तो दूसरे ही दिन भोजन भेजने के वक्त रसोईघर में पहुँच गए तथा पत्ते व कुल्हड़ की जगह एक रकाबी, दो कटोरियाँ व पानी के लिए काँच का गिलास लेकर आदमी को भेजा। वर्षों तक स्वामीजी ने अब्राह्मणों के हाथ का भोजन खाया है।

स्वामीजी हर प्रकार के व्यक्ति से, जो आपके सम्पर्क में आया, काम लेना जानते हैं। यदि कोई छात्र बढ़ईगिरी, फोटोग्राफी, चित्रकारी, रंगसाजी ऐसी कोई अन्य कला जानता है तो वैसा ही कार्य उसे देंगे ताकि उसमें वह पूर्णता प्राप्त कर सके और आप बार-बार उससे उस विषय में पूछ-ताछ कर ताकीद करेंगे। आश्रम से दूर रहने वालों और विदेश के साधकों से भी आप काम लेना जानते हैं तथा कोई आपकी पुस्तक का फ्रेंच में अनुवाद कर रहा है तो कोई कनड़ में; अन्य कोई रूसी में, तो चौथा लटवियन में और पाँचवाँ तेलगु में। कोई योगासन की शिक्षा दे रहा है तो कोई प्राणायाम की क्रिया सिखला रहा है। कोई मनन के लिए प्रातःकालीन कक्षाएँ लगाता है तो कोई प्रौढ़ों को

पढ़ाने के लिए रात्रि स्कूल चलाता है, किसी ने चलता फिरता पुस्तकालय खोल रखा है। आप के सम्पर्क में आकर अनेक डाक्टरों ने सच्ची सेवा का पाठ पढ़ा है और वे निर्धनों की निःशुल्क सेवा कर रहे हैं; वकीलों ने झूठे मुकदमों की पैरवी करना छोड़ा है और वे गरीबों को सही तथा मुफ्त में अपनी राय या सेवा देते हैं। स्वामीजी जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अच्छा कार्य करने वाले अपने साधकों को प्रोत्साहन के लिए—'अध्यात्म-रत्न', 'साधना-रत्न', 'कर्मयोगी-वीर', 'योगी', 'योगी-राज', 'दर्शन केशरी', 'विद्याभास्कर', 'संकीर्तन रत्न', 'वाद्य-विशारद', 'प्रवचन प्रवीण', 'नाटक कला-निधि', 'ज्योतिष-कला निधि' आदि उपाधियाँ भी प्रदान करते हैं।

एक बार पाण्डीचेरी के योगी श्री शुद्धानन्द भारती ने लिखा था—"स्वामी जी तो आज के सच्चे सन्यासी हैं। आपका हृदय तो ब्रह्म में रहता है और हाथ दिव्य-जीवन के प्रसार के लिये ज्ञानामृत उण्डेलते रहते हैं। आप भारत के आध्यात्मिक नेता हैं।" चाहे बहुत बड़ी गलती हो जाये, स्वामी जी आपको डाटेंगे नहीं और यही कहेंगे—'कोई बड़ी बात नहीं। यह तो मामूली भूलें हैं और गल्तियाँ किये बिना कौन बड़ा हुआ है ?' आपको अनुभव होगा, जैसे कि आपके सारे पाप धुल गये हैं। मधुर वाणी में और मुस्कराते हुये स्वामी जी यह कहेंगे। स्वामी जी वेदान्त की शिक्षा देते हैं और आप उनके दैनिक जीवन में वेदान्त की व्यावहारिकता का आभास पायेंगे। स्वामी जी का जीवन उन लोगों के लिये एक चुनौती है, जो कोरे वेदान्त के पृष्ठ-पोषक हैं। आपका कथन है—"सब जीवों में भगवान् के दर्शन करो। यदि आप वैष्णव हैं तो शैव से घृणा न करो। यदि आप हिन्दू हैं तो मुसलमान या ईसाई को नीची नजरों से न देखो। सहिष्णु बनो। स्वार्थ को त्याग दो। अपने लिए अच्छे चावल रखकर भिखारी को रद्दी चावल न दो। नौकरों की उपेक्षा न करो, उन्हें ठण्डा या बासी भोजन न दो। एक-

एक पैसे के लिये स्टेशनों पर कुलियों से झगड़ा न करो। शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक जो भी वस्तु है, उसका बाँट कर उपयोग करो।" साधकों को आप ये क्रियात्मक पाठ पढ़ाते हैं। क्या ये किसी विश्वविद्यालय में सीखने को मिलेंगे ?

संन्यास-दीक्षा

स्वामी जी के पास कुछ साधक कुण्डलिनी जागृत करने में सहयोग की आकांक्षा ले कर आते हैं और कहते हैं—'स्वामीजी महाराज ! हम आसन, बन्ध, मुद्राएँ, प्राणायाम और अन्य क्रियायें कर सकते हैं। हम तीन घण्टे तक शीर्षासन करते हैं। अब कुण्डलिनी को जाग्रत करने के लिए आगे पाठ दीजिए। स्वामीजी उन्हें यही कहते हैं कि ये क्रियायें कुण्डलिनी जागरित करने के ही योग्य बना सकती हैं। पहले यम और नियम का अभ्यास करो। दूसरों की निःस्वार्थ सेवा द्वारा पहिले अपने हृदय को शुद्ध करो, फिर किसी हठयोग या राजयोग में पारंगत गुरु की शरण में जाओ।' इस प्रकार आप जीवन के अधिक समीप हैं और जीवन को अधिकाधिक उपयोगी बनाने की ही सीख देते हैं। कतिपय गृहस्थी साधकों को जब सफलता नहीं मिलती और वे निराश हो जाते हैं तो स्वामीजी को लिखते हैं—"पूज्य स्वामीजी ! मैं सांसारिक जीवन से अब ऊब गया हूँ। इस संसार में अब मुझे कोई आकर्षण नहीं लगता। मुझ में वैराग्य उत्पन्न हो गया है। अब इस में परिवर्तन नहीं हो सकता, मुझे संन्यास की दीक्षा दीजिए।" स्वामीजी उन्हें लिखते है—"आपका वैराग्य क्षणिक है। यह दुनियाँ ही सब से उपयुक्त शिक्षक है। संसार में रहो और मानव मात्र की सेवा करो। आध्यात्मिक जीवन में तो और भी बाधाएँ आयेंगी। कुछ महीनों के पश्चात, आज छोड़ी जाने वाली वस्तुओं के लिए आपका मन ललचायगा। चली रहो। भगवान को आत्मसमर्पण कर दो। प्रभु का

कीर्तन करो। और इस प्रकार अपने स्थान पर रहते हुए ही, साधना-द्वारा आप अधिक सुखी हो सकेंगे।" साधक इस पर विचार करता और सन्यास का विचार छोड़ देता है।

साधक व संन्यासी

वैराग्य की खरी कसौटी पर कस कर आप अपने साधकों में से चुने हुए ब्रह्मचारियों या परखे हुए गृहस्थों को ही संन्यास-दीक्षा देते हैं। इस चुनाव में आप जाति, धर्म, रंग या सामाजिक स्तर का कतई भेद नहीं रखते। उनकी योग्यता की कसौटी यही होती है कि दृढ वैराग्य हो तथा सेवा करने का माद्दा हो फिर चाहे—वे महाराजकुमार हों, चाहे किसान, यूरोपियन हों, चाहे भारतीय, उत्तर भारत के निवासी हों, चाहे दक्षिण भारत के। नीचे की सूची में ऐसे ही व्यक्ति हैं, प्रथम खण्ड में सन्यासी, द्वितीय में अखण्ड ब्रह्मचारी; तृतीय खण्ड में यूरोपीय साधक, जो गृहस्थ में रहकर साधना कर रहे है और चतुर्थ खण्ड में पूर्व और पश्चिम की महिला साधिकाओं के नाम हैं।

प्रथम खण्ड

सर्व श्री स्वामी—अखण्डानन्द (बंगाली, होमियोपैथिक डाक्टर), २. अमलानन्द (तामिल), ३. आत्मानन्द (गुजराती) ४. अमृतानन्द-पहला (पंजाबी संकीर्तनकर्ता), ५. अमृतानन्द दूसरे (मद्रासी), ६. अच्युतानन्द (कन्नड़), ७. अद्वैतानन्द (तामिल हठयोगी) ८. अद्वयानन्द (तामिल-गीता-व्यास; शिवानन्द साधना निलयम्, इगोई), ६. अनन्तानन्द पहला (मलाबार), १०. अनन्तानन्द-दूसरे (गुजराती-होमियोपैथिक डाक्टर), ११. अलमस्तानन्द (पंजाबी), १२. अमरानन्द (गीता-विश्व-विद्यालय के जन्मदाता), १३. अभयानन्द (ऑनरेरी मॅजिस्ट्रेट), १४. ब्रह्मानन्द-पहला (तामिल-वेदान्ती, मदुरा), १५. ब्रह्मानन्द-दूसरे

(तामिल, सेलम), १६. ब्रह्मानन्द-तीसरे (तामिल अवसरप्राप्त अफसर, रायसाहब), १७. ब्रह्मानन्द-चौथे (मलाबार), १८. बोधानन्द (मलाबार), १९. चिदानन्द बी०ए० (कन्नड़, दिव्य जीवन-संघ के प्रधान मंत्री), २०. चिन्मयानन्द एम०ए० (मलाबार), २१. चैतन्यानन्द (लंका), २२. दयानन्द (तेलुगु), २३. गणेशानन्द (तामिल कविरत्न), २४. गोविन्दानन्द (तामिल), २५. हरीओंमानन्द (मराठी अवसरप्राप्त हेडमास्टर), २६. ईशानन्द (बनारस के), २७. ज्ञानानन्द (यूरोपीय), २८. ज्ञानानन्द दूसरे (तेलुगु), २९. ज्योतिर्मयानन्द (तामिल, खगोलशास्त्री), ३०. जगदीशानन्द (तामिल), ३१. ज्ञानेश्वर शर्मा (विष्णुपुर), ३२. ज्ञानानन्द-तीसरे (बी.एल., मलाबार), ३३. कृष्णानन्द (कुडापेट), ३४. कृष्णानन्द बी० ए०-दूसरे (संपादक 'दिव्य जीवन-' अंग्रेजी), ३५. कृष्णानन्द-तीसरे (पंजाबी व कीर्तनकर्ता), ३६. कृष्णानन्द-चौथे (यू. पी., फौजी टाइपिस्ट), ३७. कृष्णानन्द-पाँचवें (कन्नड़, वेदान्ती पंडित), ३८. कृष्णानन्द-छठे (दाढ़ीधारी योगी), ३९. कैवल्यानन्द (कलकत्ता वाले), ४०. कैवल्यानन्द (ट्रावन्कोर), ४१. महिमानन्द बी. ए., एल. एल. बी., ४२. मौनानन्द बी. ए. एल. एल. बी (तामिल), ४३. मुरुगानन्द-पहला (कन्नड़), ४४. मुरुगानन्द-दूसरे (बी. ए., बी. एल., तामिल), ४५ मधुसूदनानन्द (मलयाली), ४६. माधवानन्द (जाफना), ४७. महेश्वरानन्द (घगोटाश्रम), ४८ मुकुन्द स्वामी (मलयाली), ४९. महानन्द (कैलाश आश्रम), ५०. निर्भयानन्द (तामिल), ५१. निर्मलानन्द (बनारसी, संस्कृत के विद्वान), ५२. निर्मलानन्द- दूसरे (तामिल), ५३. निरंजनानन्द (मण्डप आश्रम), ५४. नित्यानन्द-पहला (लंका, तामिल-पण्डित), ५५. नित्यानन्द- दूसरे (कुर्ग इंजिनियर), ५६. नारायणानन्द (स्वर्गाश्रम), ५७. नारायणानन्द सरस्वती (ज्ञान-यज्ञ केन्द्र, कलकत्ता), ५८. नित्यानन्द- तीसरे (यू. पी. बुन्देल), ५९. ओमानन्द (मलाबार), ६०. ओंकारानन्द हैदराबाद, कवि), ६१. ओंकारानन्द (तामिल), ६२. प्रेमानन्द (तामिल),

६३. परमानन्द (मद्रास), ६४. प्रशान्तानन्द (तामिल), ६५. परिपूर्णानन्द (मुनी की रेती), ६६. प्रणवानन्द (तामिल, स्वर्गाश्रम), ६७. प्रणवानन्द एम. ए. दूसरे (तामिल, अवधूत), ६८. प्रणवानन्द तीसरे (बंगाली), ६९. प्रकाशानन्द (मलाबार, अंगरेजी के विद्वान), ७०. परमेश्वरानन्द बी. ए. (मलाबारी प्रोफेसर), ७१. पुरुषोत्तमानन्द (तामिल-कैलाश आश्रम, ७२. पूर्णबोधेन्द्र सरस्वती (तामिल, अवधूत), ७३. रामकृष्णानन्द (यू० पी०), ७४. रामानन्द—पहला (वृन्दावन, हार्मोनियम प्रवीण) ७५. रामानन्द—दूसरे (मलाबार, संस्कृत के विद्वान), ७६. रामानन्द—तीसरे (काश्मीरी), ७७. रामानन्द—चौथे (रंगून), ७८. रामानन्द—पाँचवे (कुरुक्षेत्र), ७९. रामभद्रानन्द (बिहारी) ८०. रामचन्द्रानन्द (कन्नड़), ८१. स्वरूपानन्द (बिहारी, लेक्चरार), ८२. शंकरानन्द—पहला (तामिल प्रचारक), ८३. शंकरानन्द—दूसरे (कन्नड़ विद्वान), ८४. सत्यानन्द (लंका के खगोलशास्त्री), ८५. सत्यानन्द-दूसरे (अलमोड़ा के विद्वान), ८६. सत्यानन्द (मराठी), ८७. सच्चिदानन्द—पहला (तामिल,स्वर्गाश्रम), ८८. सच्चिदानन्द—दूसरे (मद्रास), ८९. परमुलानन्द बी० ए० (तामिल), ९०. शान्तानन्द (दण्डी), ९१. श्रद्धानन्द (सिंगापुर), ९२. सन्यासानन्द (तेलगू), ९३. सदानन्द (मलाबार), ९४. सदानन्द एम०ए०एल०टी० —दूसरे (अवसर प्राप्त अध्यापक), ९५. सदानन्द—तीसरे (कन्नड़), ९६. शाश्वतानन्द मलाबार-हठयोगी, ९७. शुद्धानन्द (रावल साहब), ९८. स्वतन्त्रानन्द (यू०पी०), ९९. तुरियानन्द (तामिल), १००. विद्यानन्द अटगढ़ के राजा साहब), १०१. विमलानन्द (पंजाबी, संस्कृत के विद्वान), १०२. विश्वेश्वरानन्द (तामिल, हठयोगी), १०३. विष्णुदेवानन्द (मलाबार, हठयोगी), १०४. वासुदेवानन्द (मलाबार), १०५. विशुद्धानन्द (तामिल), १०६. विरजानन्द (गुजराती, खगोल-शास्त्री) १०७. विजनानन्द (संस्कृत के पंडित), १०८. विवेकानन्द

(संस्कृत के पंडित-उज्जैन कुटीर), १०९. येंकटेशानन्द (तामिल), ११०. योगानन्द बी०ए० (नगोलशास्त्री)।

द्वितीय खण्ड

ब्रह्मचारी सर्व श्री १. गोपालस्वामी २. प्रेमस्वामी (हठयोगी), ३. पुरुषोत्तमस्वामी, ४. प्रबोधस्वामी ५. राजेश्वरस्वामी (मलाबार) ६. रामप्रेमस्वामी (उड़ीसा) ७. शुद्धस्वामी (मलाबार-नंबूद्री), ८. वामनस्वामी (कन्नड़, बंगल) ९. विश्वेश्वरस्वामी (बंगाली), १०. पूर्णस्वामी (मलाबार-संस्कृत के पण्डित), ११. शिवप्रेमस्वामी (बंगाली), १२. रामदासस्वामी (संकीर्तन कर्ता), १३. रामचरणदास बी. ए. (तामिल), १४. कृष्णदास (कन्नड़-डाक्टर), १५. शिवनारायणस्वामी पंजाबी, कथावाचक), १६. रामकृष्णस्वामी (मद्रास), १७. पद्मनाभस्वामी (कन्नड़- फोटोग्राफर), १८. निर्जनोपस्वामी (तामिल)

तृतीय खण्ड

यूरोपीय—सर्व श्री १. योगीराज बोरिस सचरो (जर्मनी), २. योगीराज हेरी डिकमेन (जर्मनी), ३. योगीराज लुइस ब्रींकफार्ट (डेनमार्क), ४. होवर्ड विलियम्स (इंगलैण्ड-वेदान्ती), ५. जोन एम. शॉर्ट (आस्ट्रेलिया), ६. सी० एन० स्टेट (केलिफोर्निया, अमेरिकन-परिव्राजक), ७. वर्टिल नडेल (स्वीडन)

चतुर्थ खण्ड

महिला-साधिकाएँ—सर्व श्री १. शङ्करानन्दिनी (पंजाबी), २. गोपालनन्दिनी (वृन्दावन), ३. स्वर्णमंजरी (अटगढ़ की महारानी), ४. करीना करुणाकरन (इण्डोनेशिया), ५. लीलीयन समाश (लन्दन), ६. ऐडिथ एला (कोपनहेगन), ७. हिल्डा फ्रौबेल (जर्मनी), ८. श्रीमती

आर.लाल (लिलूआ), ६. द्रौपदी बघवा (लिलूआ), १०. शिवानन्दम् तन्वया (लंका), ११. डा० टी०एम० सुन्दरी (मंगलोर, लेडी डाक्टर), १२. डा० कमला कोर्के एम. बी. बी. एस. (मराठी, लेडी डाक्टर), १३. डा० मंगलम् एम. बी. बी. एस. (मद्रास, लेडी डाक्टर, शिवानन्द सेवाश्रम), १४. अनुसूया बाई (मराठी), १५. सत्यभामाबाई १६. लीलावती गर्दे (मराठी, लेडी डाक्टर), १७. मिल्डा विटोल्स (न्यूयार्क, अमेरिका)

त्रयोदश अध्याय

दिव्य जीवन मण्डल

उद्देश्य

दिव्य-जीवन मण्डल की स्थापना श्री स्वामी शिवानन्द जी द्वारा सन् १९३६ में की गई थी। आज इसके चार सूत्र शब्द हैं—'सेवा, प्रेम, मनन और साक्षात्कार।' इसके प्रधान उद्देश्य भी चार हैं—
(१) आस्तिकता, आध्यात्मिकता, एवम् सांस्कृतिकता का संवर्द्धन।
(२) विभिन्न वादों और भेदों को भुलाकर, भौतिकवाद से हटाकर प्राणी-

मात्र को परम प्रभु की प्राप्ति के पथ पर लगाना। (३) आध्यात्मिक वातावरण उत्पन्न करने के लिए—भक्ति, योग, ज्ञान, वेदान्त विषयक पुस्तकालय खोलना, क्रियात्मक शिक्षा देना और नर-नारायण की सेवा के आदर्श की पुनर्प्रतिष्ठा। (४) लिंग, धर्म जाति और देश के भेद-भावों से ऊपर उठकर सर्वप्रकार की एकता व समता के लिए सतत प्रयत्न करना। अर्थात् सभी के लिए एक दिव्य-जीवन का पथ-निर्देशन: चाहे वह ईसाई, मुसलमान, सिक्ख, पारसी, जैन, बौद्ध हो अथवा सनातन-धर्मी, आर्य-समाजी, शैव, शाक्त या कोई भी धर्मावलम्बी हो। साम्प्रदायिकता से दूर सबके लिए भाषण, संकीर्तन और ज्ञान-प्रसार के लिए 'एक मंच' (Common Platform) बनाना।

शाखाएँ

इस संस्था ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए देश और विदेश, विश्व के कोने-कोने में अध्यात्म-प्रेमी साधकों को संगठित कर अपनी शाखाएँ स्थापित की हैं। इस संस्था के निर्माण के दो वर्ष बाद ही देश में—लाहौर, रावलपिण्डी, अमृतसर, कराची, सक्खर (सिंध), सम्भल, रसूलपुर, फैजाबाद, दिल्ली, सीतापुर, मुरादाबाद, गया, पटना, मुंगेर, बम्बई, इन्दौर, शिमला, केन्द्रपटना (उड़ीसा), मुलन्द (दक्षिण), सेलम, बंगलौर, मण्डया (मैसूर), तिरुवन्नमलाई, गोल्डनरोक, त्रिचनापली, विल्लुपुरम, मदुरा आदि में शाखाएँ खुल गई थीं। फिर तो प्रति वर्ष इनमें वृद्धि ही होती गई। बड़े शहरों में कई-कई शाखाएँ खुलीं। सन् १९३९ में रंगून में और अगले वर्ष ही यूरोप के कई देशों—रीगा (लटविया), कोपेनहेगन (डेनमार्क), एण्टवर्प, नर्वा (एस्टोनिया) तथा लंका में—जाफना और दक्षिणी अफ्रिका में नैरोबी आदि अनेक स्थानों पर विदेशों में भी आध्यात्मिक ज्ञान के प्रसार के लिए शाखाएँ खुल गयीं।

आज भारत के प्रत्येक राज्य में, प्रत्येक राज्य के विभिन्न जिलों, नगरों और ग्रामों में स्वामी से अनुप्राणित साधक बसे हुये हैं तथा उन्होंने अपने स्थान पर 'दिव्य-जीवन-संघ' की शाखा स्थापित कर एक अध्यात्म-केन्द्र का निर्माण किया है, जहाँ अन्यों को प्रेरणा मिलती है। शाखाओं में उद्योगी, उत्साही संगठनकर्त्ता प्रति सप्ताह भजन, कीर्तन, सत्संग का आयोजन करते हैं। आध्यात्मिक उन्नति के लिये शाखाओं में एतद्विषयक पुस्तकों का पुस्तकालय, कहीं दातव्य-औषधालय, तो कहीं यौगिक-चिकित्सालय या ज्ञान प्रचार-पाठशालायें खोली गई हैं। ये लोग अपने क्रियात्मक जीवन (और भाषण, उपदेश द्वारा भी) जनता को भौतिकता से हटाकर अध्यात्म मार्ग पर लगाने की सतत चेष्टा करते हैं। देश के सभी बड़े नगरों यथा—मद्रास, बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, बनारस, पटना, अहमदाबाद, हैदराबाद, (निजाम), बंगलौर, त्रिचनापली, मदुरा, सेलम आदि में शाखायें स्थापित हैं; जहाँ आध्यात्मिक जागृति के लिये स्वामी जी की शिक्षानुसार कार्य होता है। सभी शाखाओं का एक प्रधान कर्तव्य यह है कि सम्पर्क में आने वाले साधक को स्वामी जी के व्यक्तिगत संसर्ग में—पत्र-व्यवहारादि द्वारा लाया जाय और इस प्रकार उसे उचित पथ-दर्शन प्राप्त हो। साधकों को शिवानन्दाश्रम में शिक्षा देने की भी व्यवस्था है। इस प्रकार सन् १९४७ में १५० से ऊपर शाखायें थीं और अब तो यह संख्या २५० से ऊपर है।

दिव्य-जीवन मण्डल की शाखाओं वाले कतिपय स्थानों की नामावली नीचे दी जा रही है, इससे स्पष्ट होगा कि देश में चहुँ ओर इनका जाल-सा बिछा पड़ा है और स्वामी जी किस प्रकार देश और विदेश के आध्यात्मिक उत्थान के लिये सन्नद्ध हैं। जून १९५१ तक केन्द्र से सम्बद्ध शाखाओं के पदाधिकारियों की सूची भी नीचे दी गई है। विदेशों में दिव्य-जीवन के प्रचारकों और इस संस्था के जागरूक कार्यकर्त्ताओं की सूची व पते भी सुविधा के लिये दिये गये हैं।

शाखा-सूचीः—१. अन्नावकड़ा २. अहमदनगर ३. इरोड ४. ओकिल पट्टी ५. काण्डानिपुरम् ६. कांचीपुरम् ७. चाँदबली (उड़ीसा) ८. चित्तूर (दक्षिण) ६. चेंगलपेठ १०. जामनगर ११. जालन्धर १२. तम्बरम् १३. तिरूचेनगोडी १४. तिरूइगोइमलई १५. तिरूपट्टूर १६. थूराल (कांगड़ा-पंजाब) १७. नन्दकोट १८. नेगनाथपेट (सौराष्ट्र) १६. नीमसार २०. नीलासुन्दर २१. नेगपटम् २२. नैलोर २३. पार्ली (मलाबार) २४. बरेली २५. बंगनापल्ले २६. बालासोर (उड़ीसा) २७. मदुरा २८. मुजफ्फरपुर २६. मेट्टपलायन ३०. मेप्पाड़ी ३१. मैसूर ३२. रहूड़ी ३३. राजनीलगिरि ३४. रूसेलकोण्डा (उड़ीसा) ३५. लुधियाना ३६. वाल्टेयर ३७. वारंगल ३८. शिवसमुद्रम (मैसूर) ३६. हवड़ा (यह सन् १६४० में ही श्री एम. एस. जगन्नाथम् द्वारा खोली गई थी) ४०. होसूर।

४१. अमृतसर— (कृपाकुंज शाखा १६४० में) अध्यक्ष—डा० हेतराम अग्रवाल, उपाध्यक्ष, संतराम अग्रवाल और मंत्री, श्री पन्नालाल। गुरूमहल में, दूसरी शाखा १ जनवरी १६४४ को खुली थी। ४२. अमरेली—(काठियावाड़) मंत्री, श्री मूलशंकर जगजीवन त्रिवेदी ४३. अलीगढ़ यू०पी०—जून १६४५ में यहाँ 'आध्यात्मिक सम्मेलन' भी हुआ था। मंत्री, श्री दुर्गाशरण एडवोकेट पता—रेलवे रोड। ४४. अहतूर (जिला मदुरा)—अध्यक्ष, एल० रामास्वामी, श्री रामभजन-संघ। ४५. अहमदाबाद—श्री एन० बी० ठाकोर, संपादक 'भजनसेवक' गुजराती साप्ताहिक। ४६. इम्फाल (मणिपुर)—टी० जगेन्द्रजीतसिंह, नेचर क्योर होम, स्थान—कैशमपींग। ४७. इलाहाबाद—एन० रामनाथन, ८०५, लीडर रोड। ४८. उल्सूर-(बंगलौर)—मंत्री, डी० के० हनुमन्थ राव; २१ श्रीरामकृष्णमठ। ४६. ओटापलम् (दक्षिण मालाबार)—मंत्री, के०बी० नायक। ५०. कलकत्ता—(क) काशीराम गुप्ता, बनरल प्रिंटिंग वर्क्स, ८३, पुराना चीना बाजार

स्टोट। (ग) एन०सी० पोप, एम. ए., टानापुकर रोड, पोन्ट-दकुरिया (ग) सेट मनसुखराय मोर, यहाँ १६४० में ही शाखाएँ एम. पी. आर. नायडू. आर. सी. दत्त और गोरीशंकर लाटिया के प्रयत्नों से स्थापित हुई थीं। ५१. कलोल (उत्तर गुजरात)—अम्बालाल मास्टर, प्रबन्धक श्री शिवानन्द सेवाश्रम, स्थान-रहवी। आश्रम का अपना भवन है। ५२. कालीकट—अध्यक्ष, पी०पी० इराडी, चेलापुरम और मंत्री, आर० विश्वनाथन्, संपादक'चेम्पियन'। ५३. किरकी (पूना)—एस० एन० फोदन्दराम, एस० टी० ओ० ११/२ एलफिंसटन रोड। ५४. कोयम्बेटूर—डा० (श्रीमती) राधा मानन, आर० एस० पुरम्। ५५. कोव्वूर—पी० रामलिंगेश्वर राव, एडवोकेट।

५६. गया (बिहार)—(क) काशीनाथमंदिर, 'आनन्द भवन' (ख) श्री शिवप्रसादलाल, विश्वनाथमंदिर, रमना। ५७. गुण्टूर—अध्यक्ष, गोविन्दराजा सत्यनारायण, एडवोकेट। ५८. गोल्डन रॉक—(त्रिचनापली), अध्यक्ष, के० मुनिस्वामी नायडू; आपने यहाँ १६४० ई० में ही शाखा का निजी भवन निर्माण कराया था। ५६. चाँदपुरा—मंत्री, चन्द्रमौकुमारी द्वारा श्री जमुनाप्रसाद रिटायर्ड इन्पेक्टर ऑफ स्कूल्स, दामूचौक, मुजफ्फरपुर (बिहार) ६०. चेरुकुवानम् अग्रहारम्—(पिटलपुडु हो कर, जिला पश्चिम गोदावरी)—श्रीनिवासानन्द ६१. जमशेदपुर—मंत्री, के० एस० रामास्वामी, एजन्ट-कार्यालय, टाटा आयर्न एण्ड स्टील क० लि० ६२. झांसी—(यू० पी०) एस०; वी० सिंह, प्लाटून; यहा चलता-फिरता पुस्तकालय है। ६३. तिलौथु (जिला शाहाबाद, बिहार)—अध्यक्ष, राधाप्रसाद सिन्हा ६४. तिरूचेनगडो (जिला सेलम)—मंत्री, जी० मुथुकृष्णन, स्थान-ओक्किलपट्टी ६५. टीरूकेडेयर (मायावरम होकर)—के० कैलाशम् पिल्लई, मिराशदार ६६. तुराईयुर (त्रिचनापली)—अध्यक्ष, ए० शिवरामकृष्ण अय्यर, १८, रोकफोर्ट-

साउथ स्ट्रीट; यहाँ यौगिक शिक्षण का प्रबन्ध भी है। ६८. टेडापल्लीगुडेम् (पश्चिम गोदावरी)—अध्यक्ष, डाक्टर बी० रामदास; ६६. तंजोर—टी० एस० सदाशिवराव, महाराष्ट्र लौज, २०२७, सखानायक स्ट्रीट, ७०. तिरुचनापल्ली—(क) एन० नटेश शास्त्री अय्यर, एडवोकेट, १, डबल माल स्ट्रीट, त्रिचनापल्ली (ख) ए० शिवराम कृष्णैयर, १८, रोक पोर्ट, त्रिचनापली; आपने १६३६ में ही शाखा खोली थी। ७१. तूतीकोरन—मन्त्री, ए० नटराजन द्वारा मदूरा मिल्स कं० लि०; स्त्री-शाखा की अध्यक्षा, श्रीमती शिवराम सीताबाई, ५२, नार्थ कार स्ट्रीट एक्सटेन्सन, तूतीकोरन। ७२. धनुषकोडी—मंत्री, एस० राधाकृष्ण नायडू, पीयर मास्टर, धनुषकोडी बन्दरगाह। ७३. नागरकोइल (दक्षिण भारत) (क) अध्यक्ष, बी० सुन्दरम् अय्यर, दीप स्ट्रीट, वडिवीश्वरम् (ख) ए० रामनाथ शर्मा, ब्राह्मण स्ट्रीट।

७४. नागपुर—मंत्री, ए० आर० वेंकटरमन, अकाउण्टेण्ट, गवर्नमेंट प्रेस; ७५-नागरीकटकम् (जिला विजगापट्टम्)—मंत्री, एम० वेंकट कृष्णैया ७६ नेगापटम्—मन्त्री एस० नमः शिवाय, ७७. नेडूननगढ (त्रावनकोर)—मंत्री, ए० ऐश्वर्य अय्यर, इंग्लिश हाई स्कूल ७८. पटना—(क) ए० के० सिन्हा, रिटायर्ड पुलिस इन्सपेक्टर जनरल १२, स्ट्रैण्ड रोड (ख) ए० बी० एन० सिन्हा, 'रूपकला कुटीर', मिठापुर, मन्त्री; ७६. पालघाट—मन्त्री, पी० सी० शंकर, 'गोदर महल'; यहाँ योग-शिक्षण का प्रबन्ध भी है। ८०. पलयमकोट्टै (जिला तिरूनेलवेली)—एम० तिरूवेंगडम्, १२/१२ अरूलप्राणज्योति स्ट्रीट। ८१. पिलानी (जयपुर)—अध्यक्ष, प्रो० ए० एस० बी० पन्त; उपाध्यक्ष, गङ्गा प्रसाद शारदा, मंत्री, अखिल विनय; योगशिक्षण का प्रबन्ध भी है। ८२. पुदुकोट्टै—डी० श्रीनिवास अय्यर, एडवोकेट, नार्थ मेन स्ट्रीट; स्त्री शाखा की मंत्री, श्रीमती डी० एस० बालम्माल, २६२६, ईस्ट मेन स्ट्रीट। ८३. पूना—मंत्री, जे० सी० व्यास, ८१३, रविवार पैठ;

सन् १९४० में ही एस० ए० नागर ने यहाँ शाखा खोली थी। ८४. प्रोद्दटूर—अध्यक्ष, स्वामी अभेदानन्द, पता—एन० सुब्बाराम शेट (चावल मिल के मालिक) ८५. फिरोजपुर शहर (पूर्वी पंजाब)—मंत्री, अमरनाथ खोसला, भागा गली चौक।

८६. फैजाबाद (यू० पी०)—अध्यक्ष, रामशरण मिश्र, सिविल लाइन्स् ८७. बड़ौदा—मंत्री, बी०पी० पण्ड्या, घड़ियाली पोल, सुलतानपुरा, ८८. बनारस—(क) पं देवीनारायण वकील, 'साक्षी विनायक,' विश्वनाथ गली (ख) श्री के० एल० किचलू, हेडमास्टर, सेन्ट्रल हिन्दू हाई स्कूल (ग) डाक्टर बी० एल० आत्रेय, हिन्दू विश्वविद्यालय, यहाँ सर्वप्रथम जून १९४३ में ही शाखा—प्रेमबिहारी वर्मा और एम० रमनाथन् के प्रयत्नों से खुली थी। ८९. बम्बई—(क) अध्यक्ष, नटवरलाल मगनलाल, ११. ह्यूगेस रोड, गिरिकुञ्ज बम्बई ७. (ख) स्वामी कृष्णचैतन्य, २८, भारतीय विद्याभवन (ग) पी० बी० पुरोहित, ६वीं रोड, तारकुञ्ज, शान्ता क्रुज (पूर्व), (घ) जी० रामशेषन्, प्लाट ४३०, १३वीं रोड, खार। ९०. बंगलोर—(क) अध्यक्ष, एम० वेंकटस्वामी, ६०, सेण्ट्रल स्ट्रीट, नीलासन्द्र, रात्रिपाठशाला चलाते हैं। (ख) मंत्री, बी० एन० नागराज (बस्कर टाउन शाखा), 'दिव्य जीवन' पत्रिका कन्नड़ भाषा में छापते हैं। ९१. मद्रास—में रायापेठ, थम्बू चेट्टी स्ट्रीट, ब्राडवे और लिंगा चेट्टी स्ट्रीट में—चार प्रधान शाखायें हैं, जो बहुत सुन्दर कार्य कर रही हैं। रायापेठ में (राजापायर प्रेस, १६/ए हाई रोड, रायापेठ) स्वामी शिवानन्द जी के सर्व प्रथम शिष्य श्री स्वामी परमानन्द जी स्वयं इस कार्य को बड़े पैमाने पर वहीं रहकर संगठित कर रहे हैं। 'माई मैगज़ीन' के सम्पादक, श्री पी के विनायकम् १९२९ ई० से ही इस कार्य में रुचि ले रहे हैं। लिंगाचेट्टी स्ट्रीट शाखा के अध्यक्ष, टी० ए० रामाराव (३६, लिंगाचेट्टी स्ट्रीट), दीवान बहादुर रामास्वामी शास्त्री भी मद्रास शाखाओं के उत्साही कार्यकर्त्ता हैं। रायापेठ और थम्बू चेट्टी स्ट्रीट शाखायें

१६४० ई० से ही कार्य कर रही हैं; पिछली शाखा के श्री एम० एल० नागन्ना ने प्रारम्भ में बहुत कार्य किया है। ६२. मदुरा—सी. एस. विश्वनाथ अय्यर एडवोकेट, व्यासरपुरम् मठ स्ट्रीट; सन् १६४०-में ही यह शाखा के० रंगास्वामी आयंगर के प्रयत्न से खुली थी। ६३. मुजफ्फरपुर (बिहार)—मंत्री, जानकीप्रसाद गौड़; घिरनी पोखर ६४. मुथुराई—मंत्री, एन० परशुराम, १४, काकाटोपे स्ट्रीट।

६५ रजतगढ़ (कटक)—के.वी. सूर्यनारायण, एस०पी० डब्ल्यू इन्सपे० बी०एन० रेलवे। ६६. राजगिर (पटना)—अध्यक्ष, दुर्गाशरणलाल, शिवानन्दाश्रम। ६७. राजमहेन्द्री—(क) मंत्री, एस० एन०एस० रो, इलेक्ट्रिकल इंजिनियर, वीरभद्रपुरम्; (ख) सी०वरदराव, मालिक, माडर्न हिन्दू होटल। ६८. विजयवाड़ा—टी०एस० बालसुब्रह्मण्यम्, डी०टी०एस०पी० कार्यालय ६६. विरूधनगर (दक्षिणभारत)—मत्री, एन०एम०ए० चिन्नामलाल्लय, कोट्टापट्टी; आध्यात्मिक संदेश छापकर प्रचलित करते हैं। १००. विल्लुपुरम्-कैप्टेन डाक्टर बी०ए० मणी, १०१. वेंकटगिरि टाउन (जिला नेलोर)-अध्यक्ष, पी० सुब्रह्मण्य नायडू, एडवोकेट। १०२. समस्तीपुर (दरभंगा; बिहार)—मंत्री, बटेश्वरप्रसाद सिन्हा १०३. सिकन्दराबाद—सी०वी० नागराजन, २००२, माला टेम्पल १०४. सिरसी (उत्तर कनारा)—संगठनकर्ता, डी०एस० नारायणराव १०५. सेलम—अध्यक्ष, एन० बी० वेंकटेश अय्यर, १५, मार्गबन्धु एक्सटेन्सन। १०६. हाजीपुर, (ओ. टी. रेल्वे)—उमाकान्त शुक्ल, आनरेरी मेजिस्ट्रेट, 'लक्ष्मी निवास', १०७. हैदराबाद-(निजाम) में दो-तीन शाखाएँ हैं; मुख्य कार्यकर्ता, पी०वी० नरसिंहराव मार्फत श्री सिद्दिरमैय्या, सुलतान बाजार, हैदराबाद। १०८. त्रिवेन्द्रम्—के० नीलकण्ठम्, १६, टीपू स्ट्रीट, फोर्ट।

शाखाएँ विदेश में

'दिव्य जीवन मण्डल' ने देश के अतिरिक्त विशाल विश्व को भी

अपना कार्य-क्षेत्र बनाया है और संसार में प्रायः सभी स्थानों पर स्वामी शिवानन्द जी से अनुप्राणित साधक हैं। नीचे एक चुनी हुई सूची दी जा रही है। इन लोगों ने अपने-अपने देशों में दिव्य-जीवन-संघ के उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रशंसनीय कार्य किया है और दत्तचित्ततापूर्वक इसमें लगे हैं।

अफ्रिका

(१) Sri G.M. Sarma,
(अध्यक्ष, दिव्य-जीवन मण्डल),
P.O. Box 1156,
Nairobi.
(British East Africa)

(२) Sri K. Asuo Afram,
P.O. Box 671,
Accra.
(Gold coast)

(३) Sri S.R. Padayachi,
President, Divine Life Society,
Roseneath.
(Umkomaas)
Natal, South Africa

(४) Sri V.P. Naidoo
13. Blythswood Place,
Mayville (opp. Brick Field Road)
Durban.
(South Africa)

(५) Sri V. Srinivasan,
P.O. Box 2079,
Durban.
(Natal, S. Africa)

अमेरिका

(६) Sri Govind Puttiah,
7519, Fountain Ave.,
Hollywood (California) U.S.A.

(७) Sri Aldo Lavagnini,
Association Biosofica Universale,
Apartedo Postal 2929,
Mexico D.F.

इंग्लैण्ड

(८) Sri G.C. Nixon,
38, Langley Road,
Walker Dene,
New Castle on Tyne.
(England)

जर्मनी

(९) Sri Harry Dikman,
IRO ACBN 303,
17/A KARLSRUHE/BADEN
Farstner Kaserne (W. Germany)

(१०) Srimati Hilda Friebel,
Dippoldiswalda/Saxony,
Altenberger St. 41.
(Germany)

(११) Sri Horst Engels,
Wolfsbwrg—20A,
Birkenweg 47.
(Western Germany)

डेन्मार्क

(१२) Srimati Edith Enna,
Solgade 103 y,
Copenhagen.
(Denmark)

(१३) Srimati Esther Mikkelsen,
Sondergade 5,
Aarhaas.
(Denmark)

(१४) Sri Guunar Lowidser,
Istedgade, 107,
Copenhagen.
(Denmark)

(१५) Sri Louis Brinkfort,
Gasvaerksvej 12 C,
Copenhagen V.

फारस (परशिया)

(१६) Sri V. Olshanský,
c/o British Embassy,
(Information Deptt.)
Tehran.
(Persia)

(१७) Sri B.B. Desai,
Secretary, Divine Life Society,
c/o Bap Company,
Bahrein.
(Persian Gulf)

ब्रह्मा

(१८) Sri V.M.K. Swamy,
Secretary, Divine Life Society,
'Wooside' Circular Road,
Maymyo (Burma)

बलगेरिया

(१९) Sri Stefan Zh. Dimov,
13, Patriarch Evtimii,
Starazagora.
(Bulgaria)

लंका

(२०) Sri K. Ramchandra,
60, Deal Place,

Colpatty,
Colombo—3.

(२१) Srimati S. Thambiagah Villulae,
Torrington Palace,
Colombo.

स्विटजरलैण्ड

(२२) Sri Andre Chatillon,
49, Avenue de Rumine,
Lausanne.
(Switzerland)

सिंगापुर

(२३) Sri N. Damodaran Pillay,
President, Divine Life Society,
12, Ord Road,
Singapore.

(२४) Sri R.M. Krishnan,
26. Lorang North,
(Opp. Telok Kurrow),
Katong (ingapore).

हालैण्ड

(२५) Srimati C. L. J. Damme,
Laanvan niluw Oost India,
Denheg 12.
(Netherland)

निजी भवन

'दिव्य-जीवन-मण्डल' के प्रधान कार्यालय (ऋषिकेश) में संस्था के निजी भवनों में विशाल 'भजन भवन' की गणना की जा सकती है तथा स्वामी जी की 'हीरक जयन्ती' के अवसर पर सन् १९४७ में संघ के पुराने कार्यालय के ऊपर एक बड़ा भवन निर्मित किया गया था। इसी 'हीरक जयन्ती भवन' में आज-कल सदस्य-विभाग तथा शिवानन्द प्रकाशन मण्डल आदि के कार्यालय हैं और नित्य प्रति स्वामी जी दोनों समय आ कर कार्य करते हैं।

इस संस्था के शाखा—कार्यालयों में निम्न स्थानों पर निजी भवन निर्माण किए गए हैं:— १. स्वामी शिवानन्द सरस्वती सेवाश्रम, कट्टूपाक्कम् (मद्रास), २. शिवानन्द सेवा आश्रम, कलोल, बड़ौदा (गुजरात); श्री अम्बालाल मोतीराम त्रिवेदी ने १९४५ ई० में यह शाखा स्थापित की थी, ३. शिवानन्द साधना निलयम्, इंगोई (दक्षिण भारत)—कावेरी नदी के तीर, तिरुवंगोई पहाड़ियों में एकान्त साधना के लिए यह स्थान सर्वोत्तम है। सन् १९४५ से यह शाखा स्वामी अद्वयानन्द जी द्वारा संचालित की जा रही है। साधकों के लिए कुछेक कुटीर भी यहाँ बने हैं। स्वामी सहजानन्द जो पिछले दिनों (१९५१ ई) कैलाश की यात्रा करके लौटे हैं, यहाँ के एक अन्य योग्य और सेवाभावी कार्यकर्त्ता हैं। ४. शिवानन्द आश्रम, गोल्डन रॉक (मद्रास) ५. शिवानन्द आश्रम, राजगिर (बिहार) ६. शिवानन्द सेवाश्रम, मंगलापुरी—चिंगलपेट; डा० मंगलम् द्वारा प्रदत्त भूमि पर चिंगलपेट स्थान में निजी भवन निर्मित किया गया। यहाँ एक अनाथालय, औद्योगिक स्कूल तथा आस-पास के १४ ग्रामों में सेवा के लिए एक औषधालय चलाने के लिए श्री एस० वी० अय्यर प्रयत्नशील हैं। ७. दिव्य-जीवन-संघ-भवन, ओट्टापलम् (मलाबार) ८. दिव्य-जीवन संघ-भवन, मेट्टुपलायम् (दक्षिण भारत)।

प्रान्तीय सम्मेलन

दिव्य-जीवन मण्डल के प्रधान उद्देश्यों में एक यह भी है कि अलग अलग प्रान्तों में सभी आध्यामिक व्यक्तियों व कार्य करने वाली शाखाओं को संगठित करने के लिए तथा एक ही माला में सब को पिरोने के लिए—विशाल सम्मेलनों का आयोजन भी किया जाय। इस प्रकार पिछले वर्षों में कई 'दिव्य-जीवन महासम्मेलन' हुए भी हैं। सर्व प्रथम ऐसा प्रयत्न लाहौर में किला गुज्जर सिंह शाखा द्वारा १६३८ ई० में किया गया था। पंजाब के साधकगण यहाँ एकत्र हुए थे और आध्यात्मिक साहित्य वहाँ बाँटा गया। सर्वश्री ए० एल० सूद, डा० गंगाशरण वर्मा, अमर सिंह सक्सेना, लाला कर्मचन्द, चिरंजीतलाल, शिवानन्द ऋषि आदि ने समारोह को सफल बनाया।

उसके दूसरे वर्ष अर्थात् सन् १६३६ में विल्लुपुरम् शाखा द्वारा ऐसा आयोजन किया गया। दक्षिण भारत की अनेक शाखाओं ने इस में भाग लिया। इस के लिए डाक्टर वी० एस० मणि, गंगाधरण और वी० एस० सुन्दरम् ने बहुत प्रयत्न किया। अंग्रेजी और तामिल में प्रेरणाप्रद विज्ञप्तियाँ बाँटी गईं। सिंध-बलूचिस्तान प्रान्त का प्रथम प्रान्तीय सम्मेलन सन् १६४१ में क्वेटा में हुआ। आनन्द कुटीर के दो प्रतिनिधि भी उसमें सम्मिलित हुए। गीता के चौथे अध्याय की पुस्तिकाएँ निःशुल्क वितरित की गईं, जिस पर स्वामी शिवानन्द जी का भाष्य छपा था। श्री लभाराम शर्मा वहा के उत्साही कार्यकर्त्ता थे।

रंगून में भी प्रातीय दिव्य जीवन सम्मेलन के तीन अधिवेशन क्रमशः १६३६, ४० और ४१ में हुए। इनसे आध्यात्मिक प्रसार में बहुत मदद मिली। उक्त शाखा के अध्यक्ष श्री टी० वेंकटरमैया (बाद में, स्वामी रामानन्द) ने (रंगून के) राम कृष्ण मिशन के अध्यक्ष श्री

रंगनाथानन्द जी स्वामी के सहयोग से इस कार्य को सफल बनाया। शाखा के अन्य उत्साही सदस्यों—यू०ई० म्यॉग, के० अचन, सी०सी० खू और एस० के० शर्मा ने भी इसमें बहुत भाग लिया।

द्वितीय महायुद्ध और उसके बाद कुछ समय तक, आध्यात्मिक सम्मेलनों का कार्य विषम परिस्थितियों के कारण रुक-सा गया; किन्तु बिहार में स्वामी स्वरूपानन्द जी के प्रयत्न से ऐसे दो महासम्मेलन किए गए। पहला तो मुंगेर में सन् १९४५ में हुआ। भगवानदास नवादिया और दुर्गाशरण जी जमींदारों ने इसके सफल बनाने का प्रयत्न किया। श्री रमेशप्रसाद उत्साही सयोजक थे। इसके अनन्तर ३ दिसम्बर १९४४ को पुनः एक विशाल आयोजन किया गया और रायसाहब ए० बी० एन० सिन्हा, बिहार के राज्यपाल एवम् अन्य प्रतिष्ठित सरकारी अधिकारियों ने भी इसमें भाग लिया।

"दक्षिण भारतीय दिव्य जीवन महासम्मेलन" का दिसम्बर सन् १९४८ में प्रथम सफल अधिवेशन ताम्बरम् (मद्रास के निकट) नामक स्थान में, श्री एस० वी० अय्यर और कट्टूपाकम्-स्थित शिवानन्द सेवाश्रम के डा० मंगलम् के सहयोग से आयोजित किया गया। मद्रास के अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने इसमें भाग लिया। भावनगर की महारानी, राजकुमारी प्रभावती देवी और न्यायाधीश ए० एस० पी० अय्यर भी सम्मिलित हुए थे। इसमें मद्रास प्रान्त की विविध शाखाओं के प्रतिनिधि एकत्र हुए थे। 'भगवद्गीता नाटक' खेला गया तथा 'योग अजायबघर' का निर्माण भी किया गया था। तब से यह सम्मेलन प्रतिवर्ष सम्पन्न हो रहा है।

द्वितीय अधिवेशन, अगले वर्ष अर्थात् २५ दिसम्बर १९४९ को सेलम में हुआ। प्रान्तीय शाखाओं के लगभग ३०० प्रतिनिधि इसमें सम्मिलित हुए। पुरी-स्थित गोवर्धन मठ के अधिपति जगद्गुरु शंकराचार्य

ने इस विशाल सम्मेलन की अध्यक्षता की। प्रयोजक-मंडल के अध्यक्ष—अवसरप्राप्त न्यायाधीश श्री के० एस० चेट्टियर तथा स्थानीय शाखा के मंत्री श्री एन० सी० वेंकटेश अय्यर के शुभ प्रयत्नों से यह सफल रहा। गत वर्ष (१६५०) में यह सम्मेलन वेपटगिरि टाउन (शाखान्तर्गत) में हुआ और इस वर्ष दिसम्बर मास में विजयवाड़ा (दक्षिण भारत) में होने जा रहा है। आध्यात्मिक जागृति की दिशा में ये महत्वपूर्ण प्रयत्न हैं।

मण्डल की जयन्ती व सन्देश

'दिव्य-जीवन-मण्डल' के साढ़े बारह वर्ष तक निरंतर आध्यात्मिक प्रसार-कार्य की मान्यता देकर, इस संस्था की "मुक्ता-जयन्ती" (Pearl Jubilee) अप्रैल १६५० में मनाई गई। यह भौतिकता के ऊपर योग-साधना की विजय की जयन्ती ही कही जानी चाहिए। १६५० ई० के 'साधना-सप्ताह' के अवसर पर साधक वर्ग ने इसे मनाया। इस संस्था के आद्य प्रधान-मंत्री श्री स्वामी परमानन्द जी थे, जो ६ वर्ष (१६३६-४२) इस पद पर रहे। तदनन्तर २ वर्ष तक कार्यभार स्वामी कृष्णानन्द जी ने सम्हाला। सन् १६४४-४८ तक स्वामी निजबोध, इसके प्रधान मंत्री रहे तथा १६४८ से अब तक इस पद को सुशोभित कर रहे हैं।

भारत या भारतेतर किसी भी स्थान में आध्यात्मिक-ज्ञान-प्रसार के लिए 'दिव्य-जीवन' की शाखा खोली जा सकती है और इसके लिए जीवट और लगन से कार्य करने की आवश्यकता है, फिर प्रदर्शन तो स्वामी शिवानन्द जी और संस्था के प्रधान-कार्यालय से सहज ही प्राप्त हो जायगा। स्वामी जी ने शाखाओं के कार्यकर्ताओं के नाम १६४६ ई० में जो संदेश दिया था, वह निम्न भांति है:—

"जहाँ कहीं भी आप हों, जन-समूह को एकत्र कर, उसमें दिव्य-जीवन की प्रेरणाप्रद भावना भर दो। अपने स्थान पर शाखा चालू

कर दो और नियमित रूप से साताहिक सामूहिक प्रार्थना, जप, मन्त्र-लेखन, भाषण, धार्मिक पुस्तकों का पाठ या रुचिकर कथा का कार्यक्रम रखो। योगासन और प्राणायाम का प्रदर्शन करो, जन-रुचि जाग्रत करो और इन्हें सिखाओ।

"आप यह दैवी कार्य प्रारम्भ कर दीजिए और मार्ग की सारी कठिनाइयाँ तुरन्त दूर हो जावेंगी। आप के द्वारा सैकड़ों को लाभ पहुँचेगा, उनके आशीष मिलेंगे। आप को सुख, शान्ति एवं अमरत्व की प्राप्ति होगी। इस कार्य के लिए महती योजना, अत्यधिक साधन या बहुत-धन की आवश्यकता नहीं है; इसके लिए तो उत्साह, कर्मठता और मानव-मात्र की सेवा का भाव होना चाहिए। अपने जीवनोद्देश्य की प्राप्ति, हृदय की शुद्धि और मानवता की निष्काम सेवा, इसी प्रकार इस संस्था के उद्देश्यों व कार्य में सहायक बन कर की जा सकती है। इस कलि-काल में सबसे श्रेष्ठकर और प्रभावशालिनी साधना यही है।"

चतुर्दश अध्याय

शिवानन्दाश्रम और प्रवृत्तियाँ

सच्चा संन्यासयोग

प्रतिदिन हम ऐसे साधू-संन्यासियों को देखते हैं या उनके बारे में सुनते हैं कि वे निठल्ले हैं, सुल्फा, गाँजा, चरस आदि मादक पदार्थों का व्यवहार करते हैं, अनेक व्यभिचारी हैं और समाज में अपने दुराचरण द्वारा अव्यवस्था फैलाते हैं और प्रायः यह धारणा बन गई है कि यह वर्ग समाज और राष्ट्र के लिए भाररूप है। प्राचीन काल में लोग सांसारिक

उपभोग से निवृत्त हो जन-कल्याण के लिए तथा गृहस्थियों के पथ-दर्शन के लिए संन्यास लिया करते थे। कुछ तो तीनों आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ) में अपना कर्तव्य पूरा करके संन्यास-दीक्षा लेते थे तथा अन्य सीधे ब्रह्मचर्याश्रम से संन्यास ले लेते थे। स्वामी शिवानन्द ने महसूस किया कि आज साधु व संन्यासी वर्ग में सुधार की आवश्यकता है और ये ही जनता का सही कल्याण करने में समर्थ हो सकते हैं, बशर्ते कि उनमें सेवा व साधना की दृढ़ भावना हो और इसीलिए स्वामीजी ने संन्यास में दीक्षित करने का क्रम प्रारम्भ किया।

अपने एक प्रिय शिष्य स्वामी वेंकटेशानन्द को आपने बताया था कि आप की बिलकुल इच्छा न थी कि ऐसा कोई आश्रम स्थापित किया जाय, लेकिन युग की आवश्यकता को समझ कर आपने 'आनन्द कुटीर' के सामने ही छोटी पहाड़ी पर 'शिवानन्द आश्रम' भी बना लिया, जहाँ आज ५०-६० से लगभग नियमित साधक रहते हैं। प्रत्येक साधक को 'दिव्य-जीवन-ट्रस्ट-मण्डल' के संरक्षण में चलने वाली आश्रम की विभिन्न प्रवृत्तियों में पूरा-पूरा योग देना पड़ता है।

आश्रम में साधकों के निवास के लिए "योग-साधना कुटीर", "हनुमान कुटीर", "वानप्रस्थ कुटीर" आदि हैं, जहाँ पत्थर-चूने से निर्मित छोटी छोटी कुटियायें हैं, जैसे 'राम कुटीर' में साधना के लिए ६ कुटियायें बनी हैं, जो साधना के लिए छोटे कमरों की भाँति हैं— छत सीमेन्ट की बनी है। कोई भी व्यक्ति यहाँ अपनी कुटी बनवा सकता है और अनुमानित व्यय दो हजार रुपये आते हैं। इसी प्रकार आश्रम में एक विशाल 'भजन भवन' है, 'कैवल्य गुहा' (जहाँ स्वामीजी साधना करते हैं) "योग-अजायबघर", (Yoga Museum) आदि हैं। नीचे 'आनन्द कुटीर' के समक्ष ही विशाल 'हीरक जयन्ती भवन' है, जिसका उद्घाटन २८-८-४७ को लन्दन की श्रीमती लीलियन

समाज ने दिया था, जो स्वामीजी की शिष्या हैं। इस भवन के नीचे 'दिव्य-जीवन मण्डल' का कार्यालय तथा "शिवानन्द आयुर्वेदिक फार्मेसी" अवस्थित है। आश्रम के पास कृषि एवम् गोशाला के लिए ऋषिकेश में ६ एकड़ भूमि और पी. बी. वाला में ५० एकड़ भूमि भी है। वस्तुतः यह आश्रम ऋषिकेश स्टेशन से दो मील दूर, स्वर्गाश्रम में बने श्री जयदयाल गोयन्दका के 'गीता-भवन' के ठीक सामने गंगा के इस पार ही बद्री-केदार मार्ग पर स्थित है।

प्रवृत्तियाँ : एक विचित्र अस्पताल

जैसा कि हम पूर्व ही उल्लेख कर आए हैं, आश्रम की अनेक प्रमुख-प्रवृत्तियाँ हैं, जिनका संक्षेप में कुछ परिचय यहाँ देना नितान्त आवश्यक है। (१) आश्रम में मरीजों की सेवा के लिए एक औषधालय है और इसमें आस-पास के क्षेत्र से (यहाँ तक कि ३–४ मील दूर तक के और ऋषिकेश से चल कर भी) लगभग ५०–६० रोगी नित्य लाभ उठाते हैं। यहाँ निशुल्क ऐलोपैथिक इलाज किया जाता है और डा० के० सी० राय, एम० बी० बी० एस० प्रधान चिकित्सक हैं। डा० राय स्वयं बहुत सेवाभावी और मिलनसार व्यक्ति हैं। यह प्रातः ६ बजे से लेकर शाम को ६ बजे तक खुला ही रहता है और जब कभी कोई विशेष रोगी रात को आ पहुँचता है तो रात में भी खुल जाता है। वैसे तो आश्रम में विभिन्न प्रकार के अनेक डाक्टर हैं—श्री राय तो ऐलोपैथिक डाक्टर हैं ही; श्री होशियार होमियोपैथी के डाक्टर हैं; श्री सच्चिदानन्द आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेदिक पद्धति के चिकित्सक और रजिस्टर्ड वैद्य हैं, श्री विष्णुदेवानन्द आसन और प्राणायाम विधि से चिकित्सा करने वाले डाक्टर हैं; स्वामी चिदानन्द 'क्रोमोपैथी' (Chromopathy) के डाक्टर हैं; श्री वेंकटरमनम् ज्योतिषविज्ञान (Astrologopathy) के डाक्टर हैं, श्री वेल्यायूथन प्रसाद दे कर चिकित्सा करते हैं और इस

प्रकार (Prasadopathy) के डाक्टर हैं; स्वयं स्वामी शिवानन्द जी 'ओ३म् और नाम-जप-औषध' (Namopathy and Omopathy) के डाक्टर हैं। इस प्रकार आनन्द कुटीर विविध पद्धतियों पर सचालित एक विशाल अस्पताल है। २२ जून १९५१ को जब हम रात्रि के कीर्तन से लौट रहे थे, श्री स्वामी जी ने मजाक में भी यही कहा था "यह आश्रम क्या है, अस्पताल है" और सचमुच शारीरिक व्याधियों के अतिरिक्त मानसिक व्याधियों से मुक्ति दिलाने वाला एक विशाल चिकित्सालय ही 'शिवानन्दाश्रम' है; आध्यात्मिकता का केन्द्र-स्थान है।

विश्वनाथ मन्दिर

सगुणोपासक भक्तों के लिए ३१ दिसम्बर सन् १९४३ को आश्रम में श्री विश्वनाथ भगवान का एक मन्दिर निर्मित किया गया। १३ हजार की लागत से यहाँ एक यज्ञशाला भी बनाई गई और इस प्रकार ३० अक्टूबर १९४८ को विश्वशान्ति के लिए 'अतिरुद्री यज्ञ' भी सम्पन्न हुआ तथा दैनिक हवन भी होता है। दोनों वक्त नियमित समय पर मन्दिर में पूजन अर्चन का आयोजन होता है तथा भक्तों को समस्त संसार में डाक द्वारा भी प्रसाद भेजा जाता है। श्रद्धालु और भक्ति योग में पगे भक्तों को यह शान्ति और सुख प्रदान करता है। भक्त लोगों की प्रार्थना पर यहाँ वैदिक मन्त्रों से विशिष्ट यज्ञ, हवन भी होते हैं। विश्व शान्ति के लिए सन् १९४३ से ही 'भजन भवन' में अखण्ड महामन्त्र कीर्तन भी हो रहा है। एक एक घण्टे की बारी से आश्रमवासी कीर्त्तन करते हैं और २४ घण्टे यह चलता ही रहता है। इस कार्य में कलकत्ता की श्रीमती आर० लाल, इलाहाबाद की श्रीमती द्रौपदी बघवा, बम्बई की श्रीमती सरस्वती मेहता और तिरुनेलवेली के श्री गणपति राम अय्यर बहुत अभिरुचि ले रहे हैं।

स्कूल व फार्मेसी

आस-पास के क्षेत्र के अरक्षित बच्चों के लिए पठन-पाठन का कोई प्रबन्ध न था और इसीलिए आश्रम में 'शिवानन्द अपर प्राइमरी स्कूल' की व्यवस्था की गई। यहाँ विद्यार्थी पुस्तकीय ज्ञान के अतिरिक्त क्रियात्मक धर्म की व्याख्या भी समझते हैं। आश्रम की ओर से ही भोजन उन्हें मिलता है और वह भोजन 'शिवानन्द आयुर्वेदिक फार्मेसी' में कार्य करके वे अर्जन करते हैं। विगत ७-८ वर्षों से ही ये दोनों प्रवृत्तियाँ चालू हैं। आयुर्वेद-पद्धति पर निर्मित देशी औषधियों के प्रचार और हिमालय-प्रदेश में उगने वाली जड़ी-बूटियों और काष्ठादि औषधियों द्वारा कुछ दवाइयाँ बनाई जाती हैं; जिनमें मुख्य—चन्द्रप्रभा, च्यवनप्राश, ब्रह्मचर्य सुधा, शुद्ध शिलाजीत, ब्राह्मी-बूटी, ब्राह्मी आँवला तेल, दशमूलारिष्ट, चन्द्रकान्तिलेपन, पादरक्षक मलहम, दन्तरक्षक मंजन, मधुमेह निवारक, बाल-जीवनामृत आदि हैं। श्री सच्चिदानन्द मैठाणी आयुर्वेदाचार्य (विद्यापीठ) के निरीक्षण में ये तैयार की जाती हैं। स्वामी जी का यह ध्यान रहता है कि हिमालय प्रदेश की गुणकारी औषधियों से जनता इस प्रकार लाभ उठावे।

पत्र-प्रकाशन और पत्र-व्यवहार

शिवानन्दाश्रम की सबसे मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं—पत्र-व्यवहार द्वारा देश और विदेश के साधकों का पथ-दर्शन करना। स्वामी शिवानन्द स्वयं पत्र-पढ़ कर साधकों को सुझाव देते हैं और पथ-प्रदर्शन करते हैं। इस प्रकार नित्य ही दर्जनों पत्र भेजे जाते हैं। आध्यात्मिक ज्ञान-प्रसार के लिए 'दिव्य-जीवन-संघ' के सदस्यों के लिए — ८ सितम्बर १९३८ से "दिव्य-जीवन" (Divine Life) नामक अंग्रेजी मासिक का नियमित प्रकाशन हो रहा है। यह ऋषिकेश से ही प्रकाशित होता है। आज तो कई वर्षों

से इस पत्रिका के (देश की) विभिन्न भाषाओं के संस्करण भी निकल रहे हैं, यथा:— हिन्दी में — 'सात्विक जीवन' (८३, पुराना चीना बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता), बंगला में 'दिव्य जीवन' (२६, श्रीमोहन लेन, कलकत्ता –२६), गुजराती में 'सत्सन्देश' (श्रीकान्तारोड, पिटिलिया, चम्पा, अहमदाबाद), तथा मलयालम्-संस्करण, (दिव्य–जीवन–संघ शाखा, चेलापुरम्, कालीकट) और कन्नड़ संस्करण, (दिव्य-जीवन-संघ शाखा, बास्कर टाउन, बंगलौर) से प्रकाशित हो रहे हैं। इनके अतिरिक्त मराठी संस्करण (नागपुर से) तथा तामिल व तेलुगु भाषाओं में भी यह पत्रिका प्रकाशित हो रही है। प्रति वर्ष सितम्बर मास में स्वामी जी के जन्म-दिवस पर "डिवाइन लाइफ" पत्रिका का विशेषाङ्क निकलता है। इसके अतिरिक्त १६५० ई० में 'दिव्य-जीवन संघ' की 'मोती जयन्ती' (Pearl-Jubilee) पर तथा 'शिवानन्द प्रकाशन मण्डल' की मोती जयन्ती पर एक-एक विशेषाङ्क प्रकाशित किए गये थे। पत्रिका के अतिरिक्त सदस्यों के लिए सदस्य-क्रोड़-पत्र (Membership Supplement) भी जनवरी १६४८ से प्रकाशित हो रहा है जिसका अप्रैल १९५० से Wisdom light नाम-परिवर्त्तन होगया है।

योग-वेदान्त-आरण्य विश्वविद्यालय

मानवता के प्रसार और आध्यात्मिक ज्ञान के प्रचारार्थ, कतिपय साधकों को कर्म, भक्तियोग, ज्ञानयोग आदि में पारंगत करके, देश और विश्व में विभिन्न स्थानों पर भेजने की एक योजना बहुत पहले बनी थी, जब 'दिव्य-जीवन संघ' को जन्म देने की भावना उद्भूत हुई थी। धीरे-धीरे ऐसे साधकों व सन्यासियों की संख्या बढ़ने लगी, जिन्होंने इस कार्य में रुचि दिखाई। उन्हें योग, आसन, प्राणायाम एवं धार्मिक ग्रंथों की समुचित शिक्षा तथा क्रियात्मक अभ्यास के लिए, आश्रम में प्रबन्ध किया गया। इस प्रकार वेदान्त-तत्वोपदेश के लिए ३ जुलाई

१९४८ को "योग वेदान्त-आरण्य विश्वविद्यालय" की प्रतिष्ठा की गई, जो विश्व में अद्वितीय है। ८ सितम्बर, १९४९ से इस विश्वविद्यालय का एक साप्ताहिक मुख-पत्र भी (अंग्रेजी में) प्रकाशित होने लगा, जो निरन्तर ऋषिकेश से प्रकाशित हो रहा है। वहीं से, इस संस्था का हिन्दी-मासिक मुखपत्र भी जुलाई १९५१ से प्रारम्भ किया गया है, जो कि प्रति मास ८ तारीख को प्रकाशित होता है। आश्रम में साधकों के लिए विशाल पुस्तकालय भी है।

शिवानन्द-प्रकाशन-मण्डल

स्वामी शिवानन्द की जादूभरी लेखनी का किंचित् परिचय हम पूर्व ही दे चुके हैं। भारत प्राचीन काल से ही सुख और शान्ति का संदेश-वाहक रहा है। भारतीय दार्शनिकों से ही प्रेरणा ग्रहण कर ग्रीस और मिश्र आदि देशों में पैथेगोरस आदि कई विद्वानों द्वारा परिष्कृत संस्कृति का सन्देश प्रसारित किया गया। बनारस, नालन्दा और काँची के विश्वविद्यालय संस्कृति व अध्ययन के प्रमुख केन्द्रस्थल थे। रामायण और महाभारत का विदेशी भाषाओं में भी अनुवाद मुसलिम काल में हुआ था। वारेन् हेस्टिंग्ज् ने सर्वप्रथम गीता का अनुवाद अंग्रेजी में किया। अंग्रेजी के प्रभाव के कारण अंग्रेजी ही इस देश की राजभाषा तथा प्रधान भाषा बन गई। स्वामी जी ने इसी लिए भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्वों व ग्रन्थों को सरल और प्रभावमयी प्रचलित भाषा में जन के सम्मुख उपस्थित किया।

२३ अप्रेल, १९३८ को "शिवानन्द प्रकाशन मण्डल" की स्थापना की गई। इससे पूर्व ही १९२९ ई० में स्वामी जी की पुस्तकें श्री पी० के० विनायगम् (मद्रास) द्वारा प्रकाशित की गई थीं। शिवानन्द प्रकाशन-मण्डल स्थापित होने पर स्वामी जी की जो पुस्तक प्रथम छपी,

वह थी—'योग का सुगम पथ' (Easy steps to yoga)। आज तो स्वामी जी की लगभग १५० पुस्तकें इस मण्डल द्वारा प्रकाशित की जा चुकी हैं। इस प्रकार यदि हम इसे "ज्ञानवृक्ष" मानें तो इसका बीज है—'योग का अभ्यास'—यही पुस्तक सर्वप्रथम प्रकाशित हुई थी। 'मन और उसका निग्रह' (दो भाग), 'योग का सुगम पथ', 'योग का सारांश' इसके मूल हैं। 'भगवद्गीता', 'ब्रह्मसूत्र', 'प्रधान उपनिषद्', 'दश उपनिषद्' इस पेड़ का तना है।

इस ज्ञानवृक्ष की उत्तरवर्ती शाखाएँ निम्न हैं—ज्ञानयोग, वेदान्त का अभ्यास, उपनिषद् वार्ता, उपनिषद् नाटक, मोक्ष-गीता, दैनिक जीवन में वेदान्त, योग वाशिष्ठ की कहानियाँ, वेदान्त ज्योति एवम् ओ३म् का मनन व दर्शन आदि पुस्तकें। इसकी पश्चिमवर्ती शाखाओं में हम—भक्तियोग का अभ्यास, भक्तियोग का सारांश, भक्ति और संकीर्तन, कृष्ण भगवान : लीलाएँ व उपदेश, जपयोग, संगीत-लीला योग, भगवान शिव और उनकी अर्चना आदि की गणना कर सकते हैं। दक्षिणवर्ती शाखायें हैं—'कर्मयोग का अभ्यास' और 'नीति शिक्षावली'। पश्चिमवर्ती शाखाओं में प्रधान ये हैं—राजयोग, योग के क्रियात्मक पाठ, समाधि योग, योग-वार्ता, मनन और निदिध्यासन, प्राणायाम-विज्ञान, कुण्डलिनी योग, हठयोग और योग की घरेलू कसरतें आदि।

ज्ञानवृक्ष के पत्ते ये हैं:—वैराग्य के पथ पर, ब्रह्मचर्य का अभ्यास, दर्शन और विचारधारा, विद्यार्थी जीवन में सफलता, कवित्त में दर्शन और योग, आनन्द लहरी, मृत्यु के बाद आत्मा, स्तोत्र रत्नमाला, हिन्दू धर्म सम्पूर्ण, विश्व के धर्म, स्त्री-धर्म आदि पुस्तकें। मोक्ष-प्रदायक फलों में निम्न की गणना की जा सकती है—स्वास्थ्य और दीर्घ-जीवन, सुख और स्वास्थ्य, घरेलू डाक्टर, गृहस्थ-डाक्टर, घरेलू औषधियाँ, जीवन में निश्चित सफलता, आध्यात्मिक शिक्षावली और आनन्द गीता आदि।

इन पुस्तकों की ख्याति और गौरव निम्न भाँति है—'शक्तियों का भण्डार, शिवगाथा, शिवज्योति आदि तथा प्रकाश का झरना, शिवानन्द वार्ता, आनन्द कुटीर का सन्त, एक प्रमुख योगी की कथा, उत्तर गंगा और दीपक अपनी प्रभा आदि।

शिवानन्द प्रकाशन मंडल द्वारा जनवरी १९३९ से दिसम्बर १९४४ तक बीस ग्रंथ प्रकाशित हुये। जनवरी १९४५ से दिसम्बर १९४७ तक ४६ पुस्तकें प्रकाश में आयीं, जिनमें स्वामी जी की अंग्रेजी में लिखित जीवनियाँ भी हैं। जनवरी १९४८ से दिसम्बर १९५० तक ४४ पुस्तकें छपीं और नये संस्करण निकले। सम्भवतः अंग्रेजी में किसी भी अकेले लेखक ने स्वामी जी की जितनी पुस्तकें नहीं लिखी हैं। स्वामी जी की पुस्तकों का प्रथम कन्नड़ अनुवाद श्री डा० सुब्बाराव (मैसूर) द्वारा प्रकाशित किया गया; प्रथम तेलुगु अनुवाद विजयवाड़ा के श्री डी० वी० शेषगिरी राव द्वारा हुआ; प्रथम हिन्दी अनुवाद व प्रकाशन श्री रमेशप्रसाद (पटना) द्वारा किया गया, प्रथम तामिल अनुवाद 'आध्यात्मिक शिक्षावली' नामक पुस्तक का श्री नेलायप्पर (मद्रास) द्वारा प्रकाशित हुआ। 'योगासन' नामक पुस्तक का रूसी भाषा में सर्वप्रथम अनुवाद श्री सी० वी० बद्रीन द्वारा तथा सर्वप्रथम लटवियन भाषा में 'कुण्डलिनी योग' का अनुवाद श्री हेरी डिकमैन द्वारा हुआ था।

मण्डल के इतिहास में सबसे विचित्र और उल्लेखनीय बात यह है, जो दिव्य-जीवन-संघ के सन् १९४९—५० के आय-व्यय लेखा-जोखा से स्पष्ट है कि रु० ४८१२८-६-६ की पुस्तकें (डाक व्यय सहित) एक ही वर्ष में मुफ्त वितरित की गईं या भेंट में भेजी गयीं। इस प्रकार एक ही वर्ष में ४८ हजार रुपयों की पुस्तकें भेज कर आध्यात्मिक प्रसार में योग दिया गया। सन् १९४८-४९ में भी इसी प्रकार रु० २२६१५-६ ६

की पुस्तकें भेंट में दी गई थीं। इस मण्डल के पांच स्तम्भ निम्न हैं:—(१) स्वामी परमानन्द (२) स्वामी नारायण (३) स्वामी चिदानन्द (४) स्वामी वेंकटेशानन्द (५) श्री काशीराम गुप्ता (कलकत्ता)।

पञ्चदश अध्याय

दर्शन और विचारधारा

भारतीय जागरण के ऋषि

———•••———

भारतीय पुनर्जागरण के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, योगिराज अरविन्द, स्वामी शिवानन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महर्षि रमण, मोहनदास गांधी आदि की ओर हमारी निगाह दौड़ती है। ये महापुरुष अपने-अपने, परन्तु परस्पर पूरक क्षेत्र में, अपनी विधि से भारतीय संस्कृति में जो कुछ सर्वश्रेष्ठ है, उसे हमारे

तथा समस्त विश्व के सामने, स्पष्ट और स्पष्टतर करते रहे हैं और करते रहेंगे। श्री रामनाथ 'सुमन' ने एक स्थान पर विवेकानन्द, रवीन्द्र, गांधी और अरविन्द पर निम्न भांति लिखा था—

"विवेकानन्द भारतीय जागरण के अग्रज नेता थे; इस महायज्ञ के पुरोहित के रूप में हम उन्हें देखते हैं। निशा के नशे में भारत में उनकी वाणी शंखनाद की भांति कर्कश है। कर्कश इस लिए नहीं कि उसमें माधुर्य न था; कर्कश परिस्थिति के कारण। नींद की मीठी खुमारी में साधारण स्वर भी कर्कश ही मालूम पड़ता है। रवीन्द्रनाथ हमारी चिरसामंजस्यमयी संस्कृति के वीणाकार हैं और इस गये-बीते समय में भी उनकी स्वर-लहरी हमारे क्षुद्र पिण्ड के अन्दर, जो सुषुप्त-सा पड़ा हुआ है उसे, धक्के दिये बिना, हलकी मीठी थपकियों से जगाए हुए हैं। गांधी ने क्षेत्र ऐसा चुना कि वह एक आंधी बन कर, भारतीय क्षेत्र में आये और इस झंझावात के पीछे शान्त और मौन तपस्या की, जो शक्तियाँ छिपी हुई थीं, उनसे हम उसी तरह घबरा कर उठ बैठे, जैसे बाहरी आक्रमण या धावा होने पर पड़ाव में सोती हुई सेना घबराकर उठ बैठती है या मकान में आग लग जाने पर शोर-गुल सुनकर लोग शीघ्रता से उठ कर इधर-उधर दौड़ने लगते हैं। उठने पर हमने एक शक्तिशाली पुरुष को राजनीति के क्षेत्र में खड़े देखा और राजनीति से हमारे पतन का प्रत्यक्ष सम्बन्ध होने के कारण हम उसे एक धर्मपरायण राजनीतिक नेता के रूप में देखते आ रहे हैं।..... अरविन्द तो हमारी संस्कृति के मानसरोवर में खिलकर अपने नाम को सार्थक कर रहे हैं, पर मानसरोवर का यह नैसर्गिक दिव्य दृश्य साधारण जनों को सुलभ कहाँ? फिर सुलभ भी हो तो उसे ग्रहण करने और पचा जाने की शक्ति ही हम में अभी कहाँ आ पाई है?"

स्वामी दयानन्द रवीन्द्र और गांधी से भी पहले एक क्रांतिकारी

के रूप में प्रकट हुए तथा उन्होंने अंधविश्वास और रूढ़िग्रस्त हिन्दू जाति को जागृति का सन्देश सुनाया और क्रांतिकारी सुधार किए। उन्होंने वैदिक सभ्यता और संस्कृति के स्वर को गुँजाया। रमण महर्षि ने अपनी अनुपम साधना और योग के द्वारा शांति की लहर दौड़ाने का प्रयत्न किया। ये सभी विभूतियां इस धरा से उठ गईं; उनकी शिक्षाओं को मान्यता देकर विश्व ने उनसे बहुत कुछ सीखा। गांधी, रवीन्द्र, रमण और अरविन्द के ही समकालीन स्वामी शिवानन्द आध्यात्मिकता का सन्देश लेकर आए तथा दिव्य जीवन के प्रसार और मानव मात्र की सेवा के अरिए उन्होंने आत्म साक्षात्कार व आगे प्रभु-साक्षात्कार के लिए विश्व का आह्वान किया है। भारतीय नवजागरण का यह ऋत्विक, इस उथल पुथल के बीच, शान्ति समता-सद्भावना-मानवता के लिए अथक प्रयत्न कर रहा है। सेवा, प्रेम, मनन और साक्षात्कार ही उनके चार शब्द-सूत्र हैं, जिनमें उसकी साधना, सम्भाषण, लेखनी और कर्तव्य-भावना का सार निहित है। स्वामी जी ने संन्यासी होते हुए भी जीवन का सन्देश सुनाया और संसार में रहकर ही, निष्काम सेवा द्वारा अपने मन को शुद्ध करके, साधना में संलग्न होने का उपदेश दिया और जीवन के लक्ष्य को समझने का साधन बताया है। आज भी वे ६४ वर्ष की अवस्था में, भारत ही नहीं विश्व का पथ दर्शन कर रहे हैं।

आज की दुनियाँ अनेक विषमताओं और समस्याओं से पीड़ित है। विषमता और संघर्ष के बीच, मानवता का मानस क्षितिज काले-काले बादलों और अन्धकार से पूर्ण है, आगे का रथ रुका हुआ है मार्ग में काँटे बिछे पड़े हैं, पद-पद पर बाधायें हैं, ऐसे समय में, जब मनुष्य का मन शिथिल है, उसका नैतिक बल चूर-चूर हो गया है और आध्यात्मिकता लुप्त हो गई है, स्वामी शिवानन्द एक नूतन आशा का सन्देश लेकर, जीवन ज्योति का एक नया प्रकाश लेकर, एक नवीन प्रेरणा लेकर हमारे बीच आए हैं। उनकी आध्यात्मिकता कोरी आध्यात्मिकता नहीं

है, उनमें जीवन का सन्देश भरा है; वह कार्य क्षेत्र—घर और संसार—को छोड़ कर जंगलों और गुफाओं में चले जाने को नहीं कहती, प्रत्युत गृहस्थ में रहकर ही, इस दुनियाँ में रहते हुए ही, जीवन को सुधारने का लक्ष्य बताती है; कर्तव्य की बलिवेदी पर मिटने की जाग्रति का चिरंतन सन्देश सुनाती है। वे समन्वयात्मक योगी हैं और इसी लिए उनके सिद्धान्त जीवन की सर्वांगीण समृद्धि के लिए सब से अधिक उपयुक्त हैं। उनमें भारतीय संस्कृति-सम्मत आदर्श हैं और हिन्दू धर्म-शास्त्रों का सार है तथा उन्हें इस भाँति प्रस्तुत किया गया है कि प्रत्येक राष्ट्र के व्यक्ति के लिए, चाहे उसका समाज, धर्म, जाति, लिंग या पेशा कुछ भी हो सर्वथा उपयुक्त हैं और वे दिव्य-जीवन के लिए तैयार करते हैं।

आध्यात्मिक-पथ

आध्यात्मिक जीवन के बीज के अंकुरित होने के लिए यह आवश्यक है कि उसके लिए क्षेत्र भली भाति तैयार कर दिया जाय। हृदय से अहंकार को हटावे, अपनी अयोग्यता एवं पापीपन को प्रकट कर दे, अपनी कमजो-रियों को स्पष्ट कर दे, आत्म निरीक्षण के द्वारा अपने दुर्गुणों को दूर करे। आत्म निरीक्षण के विषय में कबीर ने कहा था—

> "बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
> जो दिल खोजौं आपना, मुझ सा बुरा न कोय॥"

(मैं बुरे मनुष्य की खोज में निकला तो कोई भी मुझे बुरा न दीख पड़ा किन्तु जब मैं अपने हृदय को ही टटोलने लगा तो मुझ से अधिक बुरा कोई न मिला)। संत दादूदयाल ने भी कहा है कि—

> "सदा अपराधी एक मैं, सारे रहौ संसार।
> अवगुण मेरे अति घने, अन्त न आवे पार॥"

मानवी हृदय में पाप की कुछ ऐसी संभावनाएँ विद्यमान रहती हैं, जिनके लिए पश्चात्ताप आवश्यक है अथवा मनुष्य को अत्यन्त विनीत बनाना है। आध्यात्मिक पथ के पथिक को चाहिए कि वह किसी दूसरे की निन्दा न करे, क्योंकि इससे हमारी आँखें बुराई ही देखने लगती हैं और उन भलाइयों की ओर से मुँह जाती हैं, जो दूसरों में पाई जा सकती हैं और जिनका प्रभाव दूसरे प्रकार से अच्छा हो सकता था। तथा उसे किसी निंदक से डरने की आवश्यकता भी नहीं। अपनी निंदाओं द्वारा वह हमारी उन कमजोरियों की सूचना देता रहता है, जिनसे हमारे परास्त होने की संभावना रहती है और इस प्रकार वह हमें सदा बिना पारितोषिक लिए ही, कमियों से बचाये रखता है। कबीर ने इसी भाव को पद्य में कहा है—

'निंदक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय॥'

आध्यात्मिक-साधक को चाहिए कि दूसरों का छिद्रान्वेषण करने की जगह केवल अपने ही दोषों को देखे और उन्हें दूर करने का प्रयत्न करे। उसे चाहिए कि वह अपने दोषाभावों को ईश्वर के प्रति स्पष्ट शब्दों में प्रकट करे। जब तक मनुष्य अपने पापों, कुत्सित वासनाओं को छिपाने का प्रयत्न करता है, वे वृद्धि पर रहते हैं, किन्तु अपना हृदय ईश्वर के सम्मुख खोलते ही उसके भीतर ईश्वर-प्रकाश व्याप्त हो जाता है और उसके पाप, पश्चात्ताप की भावना के साथ अज्ञान सहित नष्ट हो जाते हैं। बुराई को जड़ से दूर करने का असली उपाय उसके करने वाले के प्रति भलाई करना है। असत्य का विरोध यदि सत्य से किया जाय तो असत्य निर्मूल हो जायगा। बुराई के लिए यदि भलाई करो तो बुराई ठहर नहीं सकती। दुष्टों के प्रति दया दिखलाई जावे तो दुष्टता उसके अंतःकरण को ठेस पहुँचावेगी और वह पश्चात्ताप करेगा। एक संत ने ठीक लिखा है :—

"जो तोको काँटा बुवै, ताहि बाइ तू फूल।
तोकों फूल के फूल हैं, वाको हैं तिरसूल॥
जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप॥"

शिवानन्द जी ने लिखा है—कोई आदमी भगवान से अपने विचार छिपा नहीं सकता। वह सर्वज्ञ है। वह प्रेरक है, जो विचारों को जन्म या गति देता है। मन परमात्मा से प्रकाश और शक्ति प्राप्त करके ही विचार करता है। मनुष्य मूर्खतापूर्वक यह सोचता है कि भगवान भी उसके विचारों का पता नहीं पा सकते। वह भगवान को भी धोखा देना चाहता है। यदि मनुष्य यह याद रखे कि भगवान उसके विचारों को बराबर देखता रहता है तो वह बहुत कम दुष्कर्म करेगा। वह बड़ी जल्दी भगवान का साक्षात्कार कर सकेगा। परन्तु माया के कारण मनुष्य इस बात को एकदम भूल जाता है। यदि आप अपनी आध्यात्मिक यात्रा में शीघ्र अग्रसर होना चाहते हैं, तो आपको प्रत्येक विचार पर ध्यान देना चाहिए। अपने सब विचारों और कार्यों को परमात्मा की ओर ले जाइये। आपकी सारी वासनाएँ पूर्णतः बह जावेंगी। पूर्व अभ्यास के कारण मन बार बार विषयों की ओर दौड़ता है। आप को बार बार उसे वहाँ से खींच कर लक्ष्य की ओर ले आना होगा। प्रारम्भ में इसके लिए बड़ी लड़ाई करनी पड़ेगी, किन्तु अन्त में यह परमात्मा के चरण-कमलों में आश्रय पायेगा। 'यत मति तत गति।' जैसा मनुष्य विचार करता है, वैसा ही कार्य करता है। आपका भविष्य आपकी बुद्धि के विकास पर निर्भर है। यदि आपके पास किसी की सहायता करने के लिए कोई स्थूल वस्तु नहीं है तो आप उसकी सहायता अपने सत् विचारों से, अपनी हार्दिक प्रार्थना से कर सकते हैं। विचार बड़ा शक्तिशाली होता है। उसके बल को समझो और बुद्धिमानी के साथ उसका उपयोग करो।

शिवानन्द-दर्शन

स्वामी शिवानन्द ने पिछले पचीस वर्षों में पत्र-पत्रिकाओं में और पुस्तकों के रूप में इतना लिखा है और अपने भाषणों, प्रवचनों आदि में इतना कहा है कि उनके दर्शन या 'फिलासफी' (Philosophy) के बारे में यहाँ सीमित स्थान में कुछ भी नहीं कहा जा सकता; लिख सकना कठिन है। हम प्रयत्न करेंगे कि चुने हुए विषयों पर स्वामी जी के कतिपय विचार उद्धृत कर सकें। और सच तो यह है कि जब वे लिखते हैं, बातें करते हैं या भाषण देते हैं, व्यक्तिगत साधना के आधार पर इतने दार्शनिक सत्य प्रकट होते हैं जैसे पहाड़ों से मूसलाधार वर्षा का पानी अत्यन्त वेग से और बलपूर्वक बहा चला आता है। और इस प्रकार आपके लिखे हुए और कहे हुए में निरंतर वृद्धि होती जाती है। साधारण से प्रसगों पर बोलते हुए भी विचारों का यह स्रोत फूट पड़ता है और गगा के क्षेत्र के शुभ्र जल की भांति शब्द प्रवाहित होते हैं तथा एक विचार के बाद दूसरे विचार का उद्घाटन इतनी द्रुतगति से होता है कि दुःख और शोकमय इस क्षणिक संसार से ऊपर उठकर हमें एक नए ही संसार की अनुभूति होने लगती है, जहाँ पूर्ण शान्ति और शाश्वत सुख का अखण्ड साम्राज्य है। वास्तव में स्वामी जी का बोलकर, भाषण देकर अपने भावों को प्रकट करते हैं, उन्हें लिखा जाना असंभव ही है; क्योंकि उन्हें दर्ज करने वाला स्वयं भाववश में तल्लीन हो जाता है। तथा स्वामी जी ने आज तक लिखा भी बहुत है और जो लिखा है, वह दार्शनिक तथ्य होते हुए भी क्रियात्मक कसौटी पर पूरी तरह कसा जा सकता है। स्वामी जी ने उपनिषदों या शास्त्रीय अन्य ग्रन्थों पर तरतीबवार या स्पष्टशैली में कुछ नहीं लिखा है, ऐसे विषयों पर लिखते हुए, उन्होंने नैतिक सत्य के उद्घाटनार्थ की गई अपनी अनेक वर्षों की साधना का आधार लेकर सारांश प्रस्तुत किया है। ऐसे ग्रन्थों या विषय पर लिखते हुए या बोलते हुए आपने आभ्यन्तर

आध्यात्मिक प्रेरणा, साधना, शक्ति और प्रचार के द्वारा उसका सदैव भाषान्तर ही किया है।

स्वामी जी के दर्शन पर विचार करते हुए हम आगे स्पष्ट करेंगे कि किस प्रकार स्वामी जी के साधना-काल में सेवा से आध्यात्मिकता प्रस्फुटित हुई तथा आगे चल कर निरन्तर विकसित होती गई और हो रही है। 'शिवानन्द-दर्शन' पर लिखते हुए हम यहां निम्न तथ्यों पर किंचित प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे।

(१) धर्म का तत्व (२) नीति के प्रवक्ता (३) आत्मशुद्धि का अर्थ (४) दो विचारधाराओं का समन्वय (५) माया और ब्रह्म (६) आत्मा और साधना (७) संसार और मोक्ष (८) सत्य और अहिंसा (६) गुरू और शिष्य (१०) विचारकण; शायद यह लिखना यहाँ असंगत न होगा कि राजनीति को छोड़ कर स्वामी जी ने जीवन से सम्बन्धित प्रायः सभी विषयों पर लिखा है। स्थानाभाव के कारण सभी पर लिख सकना यहाँ सम्भव नहीं और इसी लिए उपरोक्त कतिपय विषय हमने चुने हैं और आशा करते हैं कि इससे ही शेष विचारों को भी समझने में सुविधा व सहायता मिलेगी।

अनुभूति की ओर

स्वामी शिवानन्द जी ने अब तक जो कहा या लिखा है, उसके पीछे अनुभूति की आधार शिला है। जिस प्रकार हीरे और जवाहिरात की खानों के निकट जाने पर खान के से आसार दृष्टिगोचर होने लगते हैं; स्वामी जी की उच्चता, सेवा-परायणता और साधना का आभास वे फटे-पुराने पर्चे देते हैं, जिन पर स्वर्गाश्रम में रहते हुए, (१६३० ई० से पूर्व) आप अक्सर अपना कार्य-क्रम व मनोद्‌गार लिख लिया करते थे।

डायरी के पर्चे पर (जो कि स्वामी जी के एक शिष्य ने किसी प्रकार जमीन से खोद कर निकाल ली थी) निम्न लिखा था—

१. भंगियों की सेवा करो।
२. बदमाशों की सेवा करो।
३. हीनों की सेवा करो।
४. मुसलमान के हाथ का खा लो।
५. गन्दगी साफ कर दो।
६. साधुओं के कपड़े धो दो, प्रसन्नता प्राप्त करो।
७. पानी भर लाओ।

दूसरे पृष्ठ पर लिखा था—'नमस्कार साधना'—प्रत्येक व्यक्ति को पहले नमस्कार करो।

तीसरे पृष्ठ पर लिखा था—१. अक्रोध स्थिति २. निर्वैर स्थिति (और पृष्ठ के दूसरी ओर)—

१ बदला मत लो।
२. बुराई का प्रतिकार न करो।
३. बुराई के बदले भलाई करो।
४. अपमान और चोट सहन करो।

दूसरे और तीसरे पृष्ठ की शुद्ध और विनीत भावनायें कोष्ठक में लिखी थीं। एक अन्य पुस्तिका में आत्म-साधना के लिए निम्न अनुशासनात्मक भाव दर्ज थे—

५८. कभी भी कठोर, गँवार या निर्दयी न बनो।
५६. अच्छी आदतों का विकास करो—अत्यन्त विनम्रता, विनीतता, सज्जनता, सुशीलता, सद्व्यवहार।

६६. इस संसार में घृणा-योग्य कुछ भी नहीं है। घृणा अज्ञानता है। प्रेम और विचार द्वारा किसी वस्तु या जीव के प्रति घृणा को नष्ट कर देना चाहिए।

अन्य दो पृष्ठों पर निम्न लिखा था—

उत्पन्न करो

१. किसी व्यक्ति के द्वारा पहुँचाई गई चोट को बालक की भाँति भूल जाओ।	(क) १. मैत्री २. करुणा ३. दया ४. प्रेम
२. इस विचार को मन में स्थान न दो। इस से घृणा जागरित होती है।	(ख) क्षमा

(१) धर्म का तत्व

एक बार एक साधक महर्षि वेदव्यास के पास गया और बोला "विष्णु के अवतार! मैं बहुत सरपज में हूँ। 'धर्म' शब्द की व्याख्या क्या है, यह मैं नहीं जान सका। कुछ लोग सच्चरित्रता को ही धर्म कहते हैं। कुछ कहते हैं—श्रेय मार्ग जो सुख प्रदान करता है, ही धर्म है और जो नीचे गिराता है वही अधर्म है। गीता में भगवान् कृष्ण ने तो यहाँ तक कहा है कि सत-जन भी धर्म के मर्म को समझाने में घबराते हैं। गहना कर्मणो गतिः। कर्म की गति बहुत विचित्र है, इसलिए मुझे कृपया धर्म की पूर्ण व्याख्या और उसका क्रियात्मक स्वरूप समझा कर कहिए।" महर्षि व्यास ने कहा— "प्रिय साधक! मैं तुम्हें सुगम पथ बताता हूँ। जब तुम कोई भी कार्य करो तो निम्न बातें स्मरण रखो—'कार्य इस प्रकार करो, जैसे कि तुम अन्य से कराना पसन्द करते; अन्यों के साथ ऐसा कार्य-व्यवहार करो, जैसा कि तुम दूसरों से अपेक्षा रखते हो।' यही धर्म

है। यदि तुम इसका पालन करोगे, न तो तुम्हें कष्ट होगा और न ही तुम दूसरों को कष्ट पहुँचा सकोगे। अपने दैनिक जीवन में इसका उपयोग करो। यदि सौ बार भी इसमें असफल रहो तो घबराने की आवश्यकता नहीं। पुराने संस्कार और अशुभ वासनायें ही तुम्हारी दुश्मन हैं। ये रास्ते में बाधायें बन कर आयेंगी, लेकिन इन्हें दूर कर दो और तुम्हें अपने ध्येय की प्राप्ति होगी।" साधक ने व्यास महाराज की शिक्षानुसार आचरण किया और वह मोक्ष पा गया।

'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां'—धर्म का तत्त्व गूढ़ है, यह विचार-धारा प्राचीनकाल से चली आ रही है, और वर्तमान में जीवन की जटिलता के कारण, अनेक प्रचलित सम्प्रदायों का धर्म की ही संज्ञा दे दी जाने के कारण राजनीति की ही तरह धर्म भी गहन हो गया है तथा साधारण मनुष्य कुछ भी समझ नहीं पाता। उस व्यक्ति की धर्म के सम्बन्ध में भी वही गति होती है जैसे कि एक साधारण ग्राहक बड़े नगर की सजी सजाई दुकान में जाकर जरूरत की चीज का कई मनोहर रूपों में देख कर विचित्र सी स्थिति में फँस जाता है और निश्चय नहीं कर पाता कि क्या खरीदे और क्या न खरीदे। पिछले दिनों धर्म की सुन्दर व्याख्या स्वामी रामतीर्थ ने की थी, लेकिन वह शुद्ध आध्यात्मिक विवेचन तनिक साधना के बाद ही समझ में आ सकता है। सर्वसाधारण के सामने धर्म को सरल रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न विवेकानन्द, महात्मा गांधी और स्वामी शिवानन्द ने किया है। विवेकानन्द ने ही सर्वप्रथम भारतीय तत्त्वज्ञान को वैज्ञानिक रूप में विश्व के समक्ष रखा, लेकिन वह भी इतना सरल न था, उसमें दार्शनिकता और पाण्डित्य की पुट थी। गांधी जी ने सर्वसाधारण के लिए धर्म की व्याख्या सीधे-सादे शब्दों में की। शिवानन्द जी ने धर्म के आध्यात्मिक एवम् साथ ही साथ क्रियात्मक रूप को भी सब के सामने रखा और यही कहा कि केवल कर्मकाण्ड (सन्ध्या, पूजा, जप, नमाज, स्वाध्यायादि) कुछ अर्थ नहीं

रखता, जब तक कि व्यावहारिक जीवन में उसका उपयोग राग द्वेष, काम क्रोध, लोभ मोह आदि के शमन में न किया जाय।

स्वामी जी ने बतलाया कि 'सत्य ही धर्म है' और 'धर्म ही सत्य है' और इसी प्रकार 'ईश्वर सत्य है' और 'सत्य ही ईश्वर है'। ईश्वर और धर्म एक ही हैं, उनका अभिन्न सम्बन्ध है। धर्म सदाचरण पर जोर देता है और सत्य बोलना, अहिंसा पालन करना, किसी दूसरे को कार्य, शब्द या विचार से चोट न पहुँचाना, किसीके प्रति क्रोध प्रकाशित न करना, दूसरों को न गाली देना, न बुराई करना तथा सब में भगवान के दर्शन करना ही सदाचार है। मनुस्मृति में भी लिखा है—आचार ही सर्वोपरि धर्म है और प्रत्येक आचार श्रुतिविहित होना चाहिए। सब तपों का मूल यही आचार-धर्म है।

धर्म अति सूक्ष्म, पेचीदा एवम् दुर्गम है, लेकिन चार प्रकार के पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—में यही सर्वोच्च है। धर्म ही श्रेय है, कर्तव्य है। धर्म जीव को मानव बनाता है। धर्म व्यक्ति और परिपूर्ण सत्य—ईश्वर के बीच की कड़ी है। प्रसिद्धि, समृद्धि, दीर्घ-जीवन की कुँजी धर्माचरण ही है। सदाचार के द्वारा ही सब कष्ट, अशान्ति और दुख-दर्द का विनाश किया जा सकता है। इसी प्रकार गांधी जी ने भी कहा था—'जो पुरुष साधु-जीवन व्यतीत करता है, जिसकी वृत्तियाँ सादी हैं, जो सत्य की मूर्ति है, जो नम्रतामय और सत्यस्वरूप है और जिसने अहंता का पूर्ण त्याग कर दिया है, वह स्वयं इसे जाने या न जाने पर, धर्मात्मा है।'

(२) नीति के प्रवक्ता

प्रत्येक अध्यात्मवेत्ता योगी का नैतिक दृष्टि से उच्च होना आवश्यक

है'। नीति-धर्म आध्यात्मिकता का प्रथम सोपान है। नीति-धर्म जीवन-पथ पर अग्रसर होने के लिये सीधा सोपान है। स्वामी शिवानन्द जी इसी लिए नीति पर बहुत जोर देते हैं। 'नीति ही सदाचार-विज्ञान है। नैतिक पूर्णता के बिना आध्यात्मिक मार्ग में उन्नति नहीं हो सकती। नीति ही योग की मूल-भित्ति है। 'नीति ही वेदान्त का दृढ़-स्तम्भ है। नीति ही भक्तियोग की आधारशिला है। नीति भगवद्प्राप्ति का मुख्य द्वार है। इसी लिए श्रेय-मार्ग के पथिक बनो, सदाचारपूर्ण जीवन-यापन करो और पूर्णत्व तथा मुक्ति प्राप्त करो।' (१अगस्त १६४६ के पत्र से)

स्वामी जी अपने आत्मानुभव द्वारा सदाचार की जो शिक्षा देते हैं, वे सर्वथा नीति सम्मत होती हैं और अतएव वही धर्म मानते हैं। आप जीवन में पद-पद पर नैतिकता के पालन को आवश्यक समझते हैं और नीति व धर्म में कोई अन्तर नहीं देखते। नीति का पालन करने से ही व्यक्ति धर्म-मार्ग पर अग्रसर हो सकेगा। आपने आध्यात्मिक ज्ञान की नीति को सरल, सारपूर्ण बातों में स्पष्ट किया है। इस विषय पर एक अलग ही (नीति-शिक्षावली: Ethical teachings) पुस्तक भी लिखी है। इस प्रकार स्वामी जी की धर्म की व्याख्या, नीति के कारण, व्यावहारिक आदर्शवाद पर अवलम्बित है। सेवा उस धर्म का साधन है और सार्वभौमिक प्रेम उसका साध्य। बुद्ध की भाँति ही सर्वसाधारण के सम्मुख सीधे-सादे रूप में आपने धर्म और नीति-धर्म को प्रस्तुत किया है।

नीति एक ऐसा शास्त्र है, जिसका सम्पूर्ण तत्व आचरण पर आधारित है। इसके जानने से ही मनुष्य को मालूम होता है कि उसे कैसा बनना चाहिए तथा अपने लक्ष्य तक पहुँचने का सीधा-सच्चा मार्ग कौन सा है, किन सिद्धान्तों पर चल कर वैसा किया जा सकता है, किन

श्रेष्ठ गुणोंको अपना कर अथवा किन अवगुणों को त्याग कर उन्नति के पथ पर बढ़ा जाता है। हम भविष्य में क्या बनना चाहते हैं, क्या बनेंगे और विश्व को कैसा बनायेंगे—यह सब नीति के अन्तर्गत ही आ जाता है, क्योंकि जैसा आचरण करेंगे, जैसे कार्य करेंगे, उसी भाँति हमारा, हमारे आस-पास के वातावरण का और विश्व का निर्माण होगा।

प्रायः प्रत्येक धर्म की शिक्षा यही है कि 'मारो मत; किसी को चोट न पहुँचाओ। अपने पड़ोसी को प्यार करो, आदि'—लेकिन हिन्दू धर्म-नीति बतलाती है कि 'सब में एक ही आत्मा व्याप्त है। यह सब जीवों की आभ्यन्तर आत्मा है। यह शुद्ध आत्म-चेतना-शक्ति है। यदि तुम अपने पड़ोसी को चोट पहुँचाते हो तो वास्तव में वह चोट तुम्हें ही लगती है।' इसी लिये सदाचरण आवश्यक है; चरित्र-निर्माण की जरूरत है। नीतिपूर्ण जीवन बिताने से शाश्वत सुख की प्राप्ति होगी और मित्रों, पड़ौसियों, अपने परिवार के सदस्यों, साथी-लोगों तथा सब के साथ सामंजस्य स्थापित होगा; हृदय की शुद्धि होगी और धम के सही मार्ग पर चलना सुगम होगा।

राजा शिवि एक महात्मा था। वह धर्म का अवतार ही था। अपने वचन को पूरा करने के लिये, एक कबूतर की प्राण-रक्षा के लिये उसने अपने प्राणों की ही बाजी लगा दी। दो नदियों के संगम पर एक गाँव बसा था। वहाँ कौशिक नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसने सदैव सत्य बोलने का व्रत ले रखा था और इसी कारण वह प्रख्यात हो गया था। एक बार उस गाँव में डाकुओं का भय समाया और सब ग्रामवासी जंगल में भाग गये। डाकू आये और उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। वे कौशिक के पास पहुँचे और चूँकि वह सत्य ही बोलता था, उसने सही ठिकाना बता दिया। फलतः सभी लोगों को जान-माल से हाथ धोना पड़ा। लेकिन यहाँ पर 'सत्य' द्वारा अहिंसा के सिद्धान्त को ठेस पहुँची।

इस लिये नैतिकता के पूर्ण अर्थ को जानना अच्छा है। कौशिक इस प्रकार कितने ही लोगों की जान लेने में सहायक हुआ था। इसलिये यदि अहिंसा के लिये किसी अवसर पर सब किसी का जीवन खतरे में हो तो ऐसी बात कह देना, जो वस्तुतः सत्य न हो, असत्य नहीं कहा जाता। लेकिन आदर्श यही होना चाहिये कि सभी परिस्थितियों में सत्य का आश्रय लिया जाय।

(३) आत्म-शुद्धि का अर्थ

मन, वचन और काया के मलों को दूर कर देना ही आत्म-शुद्धि है। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, राग-द्वेषादि अनेक विकार शत्रु की भाँति मनुष्य को घेरे रहते हैं। जब तक मनुष्य अपनी स्वार्थमयी वृत्तियों को खत्म नहीं कर देता, तृष्णा को समाप्त नहीं कर देता, वह उन्नति नहीं कर सकता, अपनी वर्तमान स्थिति से ऊँचा नहीं उठ सकता। तृष्णा ही वासनाओं का मूल कारण है। राग-द्वेष रूपी वृक्ष की जड़ें बहुत घनी और गहरी हैं और चारों ओर फैली हैं। इसकी शाखायें भी दूर-दूर तक आच्छादित हैं। मन विषयों से लिपटा रहता है। बन्दर जिस प्रकार अपने बच्चे से बंधा रहता है, यह आपने देखा ही होगा। एक महीने तक तो अपने बच्चे के मृतक शरीर को भी चिपटाये रखता है। यदि एक बन्दर के बच्चे के पास जाओ तो सब बन्दर झपट कर हमला करेंगे। एक व्यक्ति के प्रति आपका राग है तो आपके सब घर वाले उसे चाहेंगे अथवा यदि किसी से द्वेष है तो उसे कोई न चाहेगा, यहाँ तक कि छोटे बच्चे भी इस भावना को समझ जाते हैं।

अविद्या से अविवेक की उत्पत्ति होती है और इसी प्रकार तृष्णा, राग-द्वेष, काम-वासना, शरीर-कष्ट और मृत्यु को मनुष्य प्राप्त होता है। यदि आत्म-ज्ञान के द्वारा, आत्म-शुद्धि के द्वारा सब की मूल अविद्या को

नष्ट कर दिया जाय तो राग-द्वेष अपने आप ही समाप्त हो जाएँगे। शिवानन्द-दर्शन में, आत्म शुद्धि के लिए निष्काम-सेवा को बहुत महत्व दिया गया है और राग द्वेष, विषय-वासना आदि को परिवर्ती गुणों— वैराग्य और प्रेम भावना द्वारा नष्ट करने पर बल दिया है तथा यम नियम का पालन ही आवश्यक बतलाया है।

परिग्रह, स्वाद और इन्द्रियलिप्सा के ही कारण मनुष्य का पतन होता है और पतन की श्रेणियों का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जहाँ एक बार पतन हुआ, पतन होता ही चला जाता है। मनुष्य गिरता जाता है और इस लिये अत्यन्त सजग रहने की आवश्यकता है; नरनारायण की सेवा द्वारा आत्म शुद्धि आवश्यक है। जब तृष्णा ने मन में घर कर लिया तो वासनायें अवश्य आयेंगी। इसी पर बुद्ध भगवान ने 'दार्घ निकाय' के महानिदान सुत्त में निम्न कहा है:—

"इति खो पनेत आनन्द वेदन पटिच्च तण्हा, तण्हं पटिच्च लाभो, लाभं पटिच्च विनिच्छयो, विनिच्छय पटिच्च छन्द रागो, छन्द रागं पटिच्च अज्झोसान, अज्झोसानं पटिच्च परिग्गहो, परिग्गहं पटिच्च मच्छरियं, मच्छरियं पटिच्च आरक्खो, आरक्खं पटिच्च आरक्खाधिकरण दण्डादान-सत्थादान-कलह विग्गह-विवाद तुवतुवं पेसुञ्ञ-मुसावादा अनेके पापका अकुसला धम्मा संभवन्तीति।"

अर्थात् "इस प्रमाण से, हे आनन्द, वेदना से तृष्णा, तृष्णा से पर्येषणा, पर्येषणा से लाभ, लाभ से निश्चय, निश्चय से आसक्ति, आसक्ति से अध्यवसान, अध्यवसान से परिग्रह, परिग्रह से मात्सर्य, मात्सर्य से आरक्षा, आरक्षा से अरिक्षाधिकरण—दण्डदान, शस्त्रदान, कलह, विग्रह, विवाद, तू-तू, मैं-मैं, पैशुन्य, असत्य-भाषण इत्यादि अनेक पापकारक अकुशल कर्मों का जन्म होता है।

(४) दो विचारधाराओं का समन्वय

समाज का निर्माण व्यक्ति से ही हुआ है। व्यक्तियों की सामूहिक उन्नति या अवनति ही समाज के उत्थान या पतन का कारण बनती है। लेकिन आज जब हम समाज की ओर दृष्टि डालते हैं तो वैषम्य दिखाई देता है। मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन कुछ और है तथा सामाजिक जीवन कुछ और ही। इसीलिये समाज पनप नहीं पाता, चहुँ ओर घृणा, दुःख और असंतोष का साम्राज्य नजर आता है। शिवानन्द-दर्शन में व्यक्ति के आत्म विकास के साथ साथ ही समाज के व्यक्तित्व को भी विकसित करने पर जोर दिया गया है और सच पूछिए तो, ये दोनों ही बातें नितान्त आवश्यकीय हैं। आत्म-शुद्धि के द्वारा व्यक्ति अपना निर्माण करे और तदनन्तर समाज-सेवा में प्रवृत्त हो। स्वामी शिवानन्द जी का अपना जीवन इसका प्रमाण है। इन दोनों में दिखाई पड़ने वाले विरोध को अपनी जीवन-साधना द्वारा दूर करने का प्रयत्न उन्होंने किया है।

स्वामीजी ने आत्म विकास के लिए अनेक उपाय बताये हैं, जिससे कि मन का मैल दूर हो जाय और मनुष्य आध्यात्मिक-पथ पर चल कर अपने को अधिक योग्य बना ले। इस प्रकार आत्म-साक्षात्कार को अपना लक्ष्य निर्धारित करने का वे आग्रह करते हैं। लेकिन आत्मविकास व्यक्ति तक ही सीमित रह जाता है, इससे व्यक्तिगत उन्नति तो बहुत हो जाती है, पर एकांगी होने के कारण अन्य लोगों को लाभ नहीं मिलता। इसी लिए स्वामीजी हिमालय की कन्दरा में बैठकर या जन स्थल से दूर एकाकी स्थान में साधना के पक्षपाती नहीं। उन्होंने 'दिव्य-जीवन संघ' द्वारा समष्टि के विकास के लिए प्रयत्न किया है। और यही कहते हैं कि समाज की सेवा ही सच्ची सेवा है तथा आत्म-साक्षात्कार का सीधा, सरल सरल पथ है। समाज के बीच में रहकर कार्य करने अर्थात् समाज के

अन्य लोगों को उन्नत करने, उनका सर्वविध विकास करने के लिये ही वे कहते हैं। 'सर्वभूतहितेरताः' मूलमंत्र की साधना के लिए उनका आग्रह है। वह फिर कुटुम्ब, ग्राम, प्रान्त, देश के बंधन में नहीं बंध सकता और समस्त विश्व के जीव तथा प्राणीमात्र की सेवा ही लक्ष्य रहता है।

(५) माया और ब्रह्म

माया का अर्थ है—'जो नहीं'। माया-जाल बड़ा ही विचित्र है। यह सत्-असत्-विलक्षण, अनादि, भवरूप और अनिर्वचनीय है। विश्व की उत्पत्ति का कारण माया ही है; क्योंकि इसे वास्तविक तो कहा नहीं जा सकता। माया संसार का उपादान कारण है और सतोगुण को छोड़ कर, रज और तम से इसका अस्तित्व स्थित है। ईश्वर माया में ब्रह्म की परछाईं है। ब्रह्म के अंश पर माया का अधिकार है, वही सगुण-ब्रह्म कहलाता है। प्रलयकाल में सारे विश्व का बीज माया में ही अवगुण्ठित रहता है।

माया की दो अवस्थायें हैं—गुणसाम्यावस्था और वैषम्यावस्था। प्रथम अवस्था में तो सत्व, रज और तम तीनों गुणों का साम्य हो जाता है और प्रलयकाल में यह स्थिति रहती है। इस समय असंख्य जीव एक निर्जीव और शान्त स्थिति में अपने अदृष्ट व संस्कार लिये पड़े रहते हैं। प्रलय की समाप्ति पर माया में स्पन्दन होता है तथा सब जीव-जन्तु अपने कर्मों का फल प्राप्त करने के लिए व्यग्र हो उठते हैं; यह वैषम्या-वस्था है और इसी से संसार का निर्माण होता है। ब्रह्म तो अनादि-अनन्त है और माया अनादि-सान्त है। माया आदिरहित है किन्तु ब्रह्म-ज्ञान प्राप्ति पर समाप्त हो जाती है।

स्वामी जी ने ब्रह्म के सम्बन्ध में विचार करते हुए—ब्रह्म और

उसकी प्राप्ति, सच्चिदानन्द, साक्षी चैतन्य, अन्तर्यामी ब्रह्म और इन्द्रियाँ, निर्गुण ब्रह्म, परब्रह्म, उपनिषदों का ब्रह्म, ब्रह्म और आत्मा आदि कई निबन्ध लिखे हैं। "ब्रह्म क्या है?"—ब्रह्म शान्ति स्वरूप है। वह निष्क्रिय रूप है। जहाँ किसी प्रकार की द्वैत-साधना नहीं होती, वहाँ वह निवृत्ति रूप है। 'अयं आत्मा शान्तः'—यह आत्मा शान्त है। शान्तं, शिवं, अद्वैतं—स आत्मा यह आत्मा शान्त, कल्याणकर और अद्वितीय है (माण्डूक्य उपनिषद्)। आत्मा अजर है अर्थात् यह कभी वृद्ध नहीं होगा; अचल है—अर्थात् कहीं आता-जाता नहीं; अमर है अर्थात् मरता नहीं; अविनाशी है अर्थात् इसका नाश नहीं होता। इस अवस्था का बोध तब ही हो सकता है, जब किसी एकान्त स्थान में अकेले रह कर निरन्तर और प्रगाढ़ निदिध्यासन किया जाय। ब्रह्म या ईश्वर की परिभाषा की गई है कि वह प्रकाशों का प्रकाश है, परम ज्योति है, अनन्त ज्योति है; ज्योतिस्वरूप है, ज्योतिर्मय है।

ब्रह्म ही आत्मा है। यह आत्मा पुत्र से अधिक प्रिय है, वित्त से अधिक प्रिय है, कलत्र से अधिक प्रिय है, सब से अधिक प्रिय है। साराश यह है कि अन्य सभी पदार्थों से अधिक प्रिय है; क्योंकि यह आत्मा अपेक्षाकृत अधिक शाश्वत है। इसलिए इस आत्मा की खोज कीजिए जो आनन्दस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है। आत्मा का सार ज्ञान और सुख है। उसका तत्व बुद्धि और हर्ष है। आप उसे कहाँ खोजेंगे? अपने हृदय में ही उसकी खोज कीजिए। लगन के साथ, धैर्य के साथ, रुचि के साथ, उत्साह के साथ, सावधानी के साथ उसकी खोज कीजिए। सशय-भावना और विपरीत भावना का नाश कीजिए।

क्या दोपहर के १२ बजे आप ऐसे सूर्य को पा सकते हैं, जिसकी किरणें न हों? असम्भव है। इसी प्रकार यह सगुण ब्रह्म, यह अभिव्यक्ति (सृष्टि) निर्गुण ब्रह्म की किरण है। इसके साथ ही साथ सगुण ब्रह्म

भी होना चाहिए। क्या आप सगुण ब्रह्म विहीन निर्गुण ब्रह्म की कल्पना कर सकते हैं? कभी नहीं। भक्तों को पुण्यमयी पूजा के लिए निर्गुण ब्रह्म स्वयं सगुण ब्रह्म का रूप धारण कर लेता है।

जो अमर है, उसका जन्म भी नहीं हो सकता। इसलिए ब्रह्म और सत्य अनादि है। साधारणत ब्रह्म की तुलना आकाश से की जाती है। आकाशवत्, सर्वगत, नित्य आदि शब्दों से श्रुतियों में आत्मा का सम्बोधन किया गया है। जब मैं ऊपर आकाश की ओर दृष्टि डालता हूँ तो मुझे उस रूपहीन, अनन्त, सर्वव्यापक, सारभूत ब्रह्म का स्मरण हो आता है, जिसका कोई रूप नहीं है। आकाश भी एक है, समान है और रूपहीन है। ब्रह्म या परमात्मा एक है। 'एक ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' और उसी को विभिन्न संतों ने अलग-अलग नामों से पुकारा है। मनुष्य चर्म-चक्षुओं से उसे नहीं देख सकता, किन्तु भक्तों को वह प्रकट हो जाता है या निर्विकल्प समाधि द्वारा उसका अनुभव किया जा सकता है। ब्रह्म के सौन्दर्य, महिमा और सुख का वर्णन कोई नहीं कर सकता, ठीक उसी प्रकार जैसे गूँगा आदमी मिश्री के स्वाद को व्यक्त नहीं कर सकता।

गांधी जी ने भी यही कहा था, ('यंग इण्डिया'–१६–६–१६२४)— 'ईश्वर निश्चय ही एक है। वह अगम, अगोचर और मानव जाति के बहुजन समाज के लिए अज्ञात है। वह सर्वव्यापी है। वह बिना आँखों के देखता है, बिना कानों के सुनता है। वह निराकार और अभेद है। वह अजन्मा है, उसके न माता है, न पिता, न सन्तान। फिर भी वह पिता, माता, पत्नी या सन्तान के रूप में पूजा ग्रहण करता है। यहाँ तक कि वह काष्ठ और पाषाण के भी रूप में पूजा अर्चा को अंगीकार करता है, हालाँकि वह न तो काष्ठ है, न पाषाण आदि ही। वह हाथ नहीं आता—चकमा दे कर निकल जाता है। पर अगर हम उसकी सर्व-

व्यापकता का अनुभव न करना चाहें तो वह हमसे अत्यन्त दूर है... ...
ईश्वर न काबा में है, न काशी में है। वह तो कण-कण में व्याप्त है—
हर दिल में मौजूद है।"

(६) आत्मा और साधना

जब आप किसी आम के बगीचे के पास से हो कर निकलें तो आपके मन की एक किरण आँख के द्वारा बाहर निकल कर एक आम को घेर लेती है। वह आम का स्वरूप बन जाती है। इस किरण को वृत्ति कहते हैं और ढक लेने की क्रिया को वृत्ति-व्याप्ति। पदार्थ और तत्त्व चैतन्य को जो आवरण ढक लेता है, उसको हटाना वृत्ति का काम है। वृत्ति के साथ चैतन्य होता है और वह आम को प्रकाशित करता है, जैसे कि टार्च की रोशनी में पदार्थ प्रकाश में आ जाते हैं। मन संकल्प-विकल्प करता है कि यह आम है या नहीं। बुद्धि मन की सहायता करती है और पूर्व अनुभव के द्वारा निश्चय करती है कि आम है। चित्त अनुसंधान करता है कि मुझे आम किस प्रकार मिल सकता है, क्या मैं मालिक से पूछूँ या माली से माँगूँ? अहंकार कहता है "मुझे किसी न किसी प्रकार आम मिलना चाहिये। मैं इसे चाहता हूँ।" फिर मन कर्मेन्द्रियों को आदेश देता है।

आत्मा इस विशाल मानसिक कार्यालय का मालिक है। बुद्धि इसकी मैनेजर है। मन हेड क्लार्क है। उसको बुद्धि से आज्ञा लेनी पड़ती है और अपने कार्यालय के मजदूरों की देखभाल करनी होती है। इसी प्रकार मन को दो काम करने पड़ते हैं। इसका सम्बन्ध बुद्धि रूपी मैनेजर और कर्मेन्द्रिय रूपी मजदूरों से होता है। आत्मा ही नित्य, सत्य और शाश्वत है। यह सच्चिदानन्द स्वरूप है। जिस प्रकार समुद्र में लहर उठती है, आत्मा या ब्रह्म में भी एक लहर उठती है और वही मन

है। मानसिक कल्पना द्वारा जो कुछ दिखाई पड़ता है, वही संसार है, इसी में जन्म, मृत्यु और दुःख, सुख हैं। आत्मा इन से दूर—मन का कारण-श्रोत या जन्म-स्थान है। आत्मा से अलग मन नहीं है और आत्मा तथा संसार के बीच वही (मन ही) पड़ी है। जब मन डोलता है तो संसार भूठा दीखता है, इसमें दुःख दर्द नजर आते हैं। जब मन शान्त होता है और अपने वास्तविक स्थान पर टिक जाता है तो सचिदानन्द-आत्मा का भान होता है।

विज्ञान ने आज समय और दूरी के प्रश्न को हल कर दिया है। ३६ घण्टे में ही भारत से लन्दन पहुँचा जा सकता है। लेकिन इस विज्ञान-युग में, भौतिक उन्नति के बावजूद भी, सुख और शान्ति का अनुपात बढ़ा नहीं, घटा ही है। चारों ओर युद्ध के बादल मण्डरा रहे हैं। वैज्ञानिकों ने जन-संहार के लिए 'एटम् बम' निकाला। एक-राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से लड़ रहा है। लेकिन इस एटम् बम से भी अधिक प्रभावशाली "आत्मिक बम" है। इसका आविष्कार याज्ञवल्क्य, शंकर, पतञ्जलि और दत्तात्रेय आदि ऋषि-महर्षियों ने किया था। मीरा और प्रह्लाद के पास यही आत्मिक-बम था। मीरा को ज़हर का प्याला पीना पड़ा; किन्तु इस अस्त्र के द्वारा विष भी अमृत बन गया। प्रह्लाद को जलती आग में झोंका गया, भयंकर विषधर ने काटा, हाथियों से कुचलवाया गया और पहाड़ पर से ढकेल दिया गया, किन्तु इसी अमोघ शस्त्र ने उसकी रक्षा की।

यह 'आत्मिक-बम' सर्वशक्तिमान् और अविनाशी है। यह संजीवनी-बम भी है और इसके स्पर्शमात्र से हजारों-लाखों व्यक्ति अमर हो जाते हैं। यह दिव्य-जीवन का प्रेरक है और करोड़ों एटम्-बमों से भी अधिक शक्तिशाली है। आत्मिक-बम का निर्माण आत्म-तत्वों से हुआ

है। इसे आग नहीं जला सकती; पानी भुला नहीं सकता; तलवार नहीं काट सकती; यह सचमुच एक रहस्यात्मक और दैवी शस्त्र है, जिसके आगे वैज्ञानिकों की सारी प्रतिभा प्रभावहीन हो जायगी और वे एक दिन शर्म से नतमस्तक होंगे।

साधना द्वारा आध्यात्मिक प्रयोगशाला में ही इस 'आत्मिक-बम' का निर्माण हुआ है। आप चाहें तो यह प्रयोगशाला अपने यहाँ भी स्थापित कर सकते हैं, इस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। इसका भेद किसी दूसरे को बता देना कोई जुर्म नहीं। यह प्रयोगशाला आपके हृदय के अन्दर स्थापित होगी। दैवी गुणों को विकसित करो। मन को शान्त एवं स्थिर करो। चंचल इन्द्रियों पर संयम करो। आत्मनिरीक्षण के जरिए अपने अन्दर ही झाको। नैतिक पूर्णता प्राप्त करो। यम और नियम द्वारा अपने को मजबूत और स्थिर बना लो। धारणा द्वारा अजर अमर आत्मा का ध्यान करो। बस, आत्मिक-बम तैयार हो जायगा। यह शस्त्र सार्वभौम प्रेम, स्थायी शान्ति, शाश्वत सुख और चिरस्थायी आनन्द का सम्मिश्रण बन कर आपके लिए वरदान सिद्ध होगा। साधना के विमान पर चढ़ कर ऊँचे उड़ जाओ और आध्यात्मिक-जीवन के प्राण इस 'आत्मिक-बम' को सब जगह, सर्वसाधारण पर बरसा दो। इतना बरसाओ कि समस्त संसार में सुखी-जीवन की धारा बाढ़ की भांति बह निकले।

उपनिषद् की कथा है—वर्षों की साधना के बाद भी श्वेतकेतु घमण्डी और तृष्णा से परिपूर्ण था। उसके पिता उद्दालक ने यह जान कर कि पुत्र को घमण्ड हो गया है, एक दिन उससे पूछा—"क्या तुम्हें मालूम है, एक चीज को जानने से अनजान भी जाना हुआ हो जाता है, न देखा हुआ भी दिखाई देने लगता है, और न सुने हुए भी सुनने की मधुर शक्ति प्राप्त हो जाती है?" श्वेतकेतु इस प्रश्न का कुछ भी उत्तर

न दे सका, क्योंकि वह सत्य से अनभिज्ञ था और उसने तृष्णा त्यागी न थी। इसलिए आत्मिजन्चम तैयार करने से पूर्व सावधान !

(७) संसार और मोक्ष

यह विचित्र संसार अच्छी और बुरी सभी प्रकार की चीजों का एक सुन्दर सा संग्रहालय है। जहाँ एक ओर फूल से लदे पेड़, हिमालय की चोटी, नियाग्रा का जल प्रपात, नीलाकाश, ताजमहल आदि एक से एक सुन्दर और आकर्षक वस्तुएँ यहाँ पड़ी हुई हैं, वहीं दूसरी ओर भूचाल, ज्वाला-मुखी, आग, बवण्डर, भुखमरी, भयकर व्याधियाँ फैली हुई हैं, जो एक ही बार में अगणित प्राणियों को अपने गाल में डाल लेती हैं। वसन्त प्राणप्रद होता है, उसमें उल्लास होता है, उन्माद होता है एवं चित्त को प्रफुल्लित करने की शक्ति होती है। किन्तु ग्रीष्म का सूर्य जला डालता है, हेमन्त का वायु डङ्क मारता है।

रूप-यौवन-सम्पन्ना सुन्दर स्त्री मनोमुग्धकर होती है। उसके हर एक नाज—अन्दाज में मीठी-मीठी मुस्कराहट होती है, सुकुमारिता होती है, और जब वह वस्त्रालङ्कारों से सुशोभित होकर कोमल स्वर में गाती है अथवा नृत्य करती है तो वह मन को हर लेती है। किन्तु यही नारी जब वस्त्रालङ्कारों के लिये अपने पति पर क्रुद्ध होकर, कर्कश वाणी द्वारा प्रहार प्रारम्भ करती है, जब भीषण रोगों से अथवा जरा से उसका सौन्दर्य विकृत हो जाता है तो वह घृणास्पद हो जाती है। पुत्रोत्पत्ति पर, विवाह पर, धन सम्पत्ति की प्राप्ति पर लोग बहुत प्रसन्न होते हैं, आनन्द मनाते हैं, किन्तु स्त्री की मृत्यु पर, धन के नाश पर, व्याधि से पीड़ित होने पर लोग शोक करते हैं, रोते हैं।

मायावाद के सिद्धान्त के अनुसार वास्तव में संसार है ही नहीं। केवल

मानसिक कल्पना है। बौद्धमत में इसे विज्ञानवाद कहते हैं, यथार्थवाद के अनुसार संसार एक ठीक यथार्थ सत्ता है; मध्वाचार्य का द्वैतवाद, रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवाद और महर्षि पतञ्जलि का राजयोग—ये सब संसार को सत्य मानते हैं। परिच्छिन्न मन जो स्थूल है और जो काल, देश और कारण, कार्य के नियम में स्थित है, संसार के विषय में 'क्यों और कैसे' नहीं जान सकता, इस विकट प्रश्न पर मस्तक मत खपाओ। क्योंकि इस समस्या का उत्तर आपको कभी नहीं मिल सकता। इसीलिए स्वामीजी मन को वश में करने और मन की गति को संयमित करने का आग्रह करते हैं।

जिसे आप दुनिया कहते हो, यह केवल मन ही है (मन मात्र जगत्, मनोकल्पित जगत्); उस परब्रह्म की आत्म-ज्योति ही मन के रूप में या जगत् के रूप में भासती है। जगत् में जितना हर्ष शोक का अनुभव होता है, वह मन की क्रिया से ही होता है। यह संसार की जादूगरी का खेल केवल मन ही तो चलाता है। यह संसार ऐसा ही है, जैसे जाग्रत में स्वप्न होता है। दर्पण में जैसे प्रतिबिम्ब होता है, ऐसे ही मन रूपी-दर्पण में यह संसार एक विशाल प्रतिबिम्ब है। जगत् के अभाव या नाश का यह तात्पर्य नहीं है कि इसके पर्वत, सरोवर, वृक्ष और नदियाँ सब का नाश हो जाये। जब संसार के मिथ्या होने का आपको निश्चय दृढ़ होता जाये और जब आपकी स्थिति इस विचार पर दृढ़ हो जावे कि यह संसार मृग तृष्णा के समान भ्रमपूर्ण है, तो यही जगत् का नाश कहलाता है। जगत् की अनित्यता को समझ कर यह आवश्यक है कि अपने ध्येय को ध्यान में रखा जाय और साधना द्वारा आत्म शुद्धि करके मोक्ष-पद को प्राप्त करें।

जीवन्मुक्त वह है, जो अभय है, सदाशय है, जो आसक्ति, अभिमान ईर्षा, कठोरता से रहित है, जिसने हृदय ग्रन्थि (अविद्या, काम और कर्म) तोड़ डाली है। जो भलाई-बुराई, गुण और दुर्गुण तथा मन और

कारण शरीर से भी ऊपर उठ गया है, जिसे वेद-ज्ञान है, आत्म-बुद्धि है, जो किसी के दोष नहीं ढूँढा करता, जो संशय नहीं करता, जो अपमान और निरादर सह लेता है, जो बड़ी से बड़ी उत्तेजना के समय भी क्रोध नहीं करता, जो सदैव शान्त और शिष्ट रहता है, जो सदा सत्य बोलता है, जो मधुर और शिक्षाप्रद वाक्य बोलता है, वही सच्चा जीवन्मुक्त है। जिसने सब बन्धन तोड़ डाले हैं, जिसने सब इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है, जो सभी प्रकार के प्रलोभनों से अलग है, जिसने तृष्णा, वासना, कामना और अभिमान का त्याग कर दिया है और जो केवल आत्मा में निवास करता है—वह जीवन्मुक्त है।

मोक्ष क्या है? सर्व-दुःख निवृत्ति और परमानन्द-प्राप्ति ही मोक्ष है। मोक्ष की प्राप्ति कर्म से नहीं हो सकती, क्योंकि मोक्ष तो मनुष्य की अपनी ही वस्तु है। आवश्यकता यही है कि विभिन्नता की भावना का परित्याग किया जाय। फिर स्वयमेव मोक्ष प्राप्त हो जायगा। अनन्त ब्रह्म और मोक्ष एक ही हैं। सारी साधना विभिन्नता की भावना और अविद्या को दूर करने के लिए ही है। संसार से मुक्ति का अर्थ यही है कि व्यक्तिगत आत्मा का ब्रह्म में मिल जाना। मोक्ष ही ज्ञान है और कर्म व भक्ति इसके साधन हैं। मोक्ष मानव-जीवन का सार है। मोक्ष प्राप्त कर लेने पर जीवन-मरण के बन्धन से व्यक्ति छूट जाता है। मोक्ष आत्मा का परमात्मा के साथ साक्षात्कार का नाम है। अपने आप को पहचानो और ब्रह्म पद प्राप्त हो जायगा।

(८) सत्य और अहिंसा

शिवानन्द-दर्शन में सत्य पर भी बहुत बल दिया गया है; सत्य को ही परमेश्वर कहा गया है। सत्य कथन, सत्य श्रवण और सत्याचरण से ही मनुष्य अपने को योग्य बना सकता है। जहाँ सत्य-ज्ञान है, वहाँ

परमानन्द रहेगा और शोक नाम-मात्र को भी न रहेगा। सत्य के बिना शुद्ध ज्ञान संभव ही नहीं है। सत्य की आराधना भक्ति है। सत्य साध्य है और अहिंसा साधन। सत्य के पालन में ही शान्ति है। कीमती से कीमती वस्तु बेचने वाले को उससे अधिक कीमती वस्तु नहीं मिल सकती, उस प्रकार सत्य का सत्य ही पुरस्कार है। सत्यवादी सत्य से बढ़कर और किस चीज की आकांक्षा कर सकता है।

अहिंसा अनन्त प्रेम है; आत्मा की दिव्य-शक्ति है और दिव्य जीवन भी है। प्यार के समक्ष घृणा पिघल जाती है, इसी प्रकार अहिंसा के आगे घृणा शान्त हो जाती है। अहिंसा के अभ्यास से इच्छाशक्ति बढ़ती है। यह अभय बनाती है। अहिंसा हृदय का अद्भुत गुण है। इससे व्यक्ति आध्यात्मिक बन जाता है। अहिंसा की शक्ति बुद्धि से परे है। बुद्धि को विकसित किया जा सकता है किन्तु हृदय का विकास करना कठिन है और अहिंसा के प्रयोग से ही हृदय निर्मल हो कर विकसित होता है।

अहिंसा का पथ खाण्डे की धार के समान तेज है। अहिंसा एक महान व्रत है या यों कहें कि सार्वभौम प्रतिज्ञा है। अहिंसा का अभ्यास कुछ ही हफ्तों या महीनों में नहीं हो सकता, इसके लिए निरन्तर साधना की आवश्यकता है। अहिंसा का पालन करते हुए आलोचना, आक्रमण और अप्रतिष्ठा पर ध्यान न देना चाहिए, क्योंकि ये तो मार्ग में बाधाएँ बन कर आयेंगी ही। किसी व्यक्ति के प्रति बुरे विचार मन में न आने दो, क्रोध न करो, किसीको शाप न दो। सत्य की प्राप्ति के लिए चाहे तुम्हें जीवन-त्याग भी करना पड़े, तो तैयार रहो। अहिंसा के जरिये ही शाश्वत सत्य की प्राप्ति हो सकती है।

सत्य और अहिंसा को अपने जीवन में अपना कर महात्मा गांधी

ने विश्व को चमत्कृत कर दिया। अपनी 'आत्मकथा' में उन्होंने लिखा है—"मैंने सत्य को जिस रूप में देखा है और जिस राह से देखा है, उसे उसी रूप से, उसी राह से बताने की हमेशा कोशिश की है।........ मैं सत्य को ही परमेश्वर मानता हूँ।—मेरी अहिंसा सच्ची होते हुये भी कच्ची है, अपूर्ण है। इस लिये मेरी सत्य की झाँकी उस सत्य-रूपी सूर्य के तेज की एक किरण-मात्र के दर्शन के समान है, जिसके तेज का माप हजारों सूर्यों को इकट्ठा करने पर भी नहीं मिल सकता।

"........बिना आत्म-शुद्धि के प्राणि-मात्र के साथ एकता का अनुभव नहीं किया जा सकता और आत्म-शुद्धि के अभाव में अहिंसा धर्म का पालन करना भी हर तरह असंभव है। चूँकि अशुद्धात्मा परमात्मा के दर्शन करने में असमर्थ रहता है। इस लिये जीवन-पथ के सारे क्षेत्रों में शुद्धि की जरूरत रहती है। इस तरह की शुद्धि साध्य है; क्योंकि व्यक्ति और समष्टि के बीच इतना निकट का सम्बन्ध है कि एक की शुद्धि अनेक की शुद्धि का कारण बन जाती है और व्यक्तिगत कोशिश करने की ताकत तो सत्यनारायण ने सब किसी को जन्म से ही दी है।"

गांधी जी ने अहिंसा की परिभाषा इस प्रकार की है—"दूसरे के लिए प्राणार्पण करना प्रेम की पराकाष्ठा है और उसका शास्त्रीय नाम अहिंसा है। अर्थात् यों कह सकते हैं कि अहिंसा ही सेवा है। संसार में हम देखते हैं कि जीवन और मृत्यु का युद्ध होता रहता है, परन्तु दोनों का परिणाम मृत्यु नहीं, जीवन है।........अहिंसा प्रचण्ड शस्त्र है। उसमें परम पुरुषार्थ है। यह भीरु से दूर भागती है। यह वीर पुरुष की शोभा है, उसका सर्वस्व है। यह शुष्क, नीरस, जड़ पदार्थ नहीं है। यह चैतन्य है। यह आत्मा का विशेष गुण है। अहिंसा—यह मानव-जाति के पास एक ऐसी प्रबल से प्रबल शक्ति

है कि जिसका कोई पार नहीं। मनुष्य की बुद्धि ने संसार के जो प्रचण्ड से प्रचण्ड अस्त्र-शस्त्र बनाए हैं, उनसे भी प्रचण्ड यह अहिंसा की शक्ति है। सत्य के बाद असल में अहिंसा ही संसार में बड़ी-से-बड़ी सक्रिय शक्ति है। विफल तो यह कभी जाती ही नहीं। हिंसा सिर्फ ऊपर से सफल मालूम पड़ती है। अहिंसा ही सत्येश्वर के दर्शन करने का सीधा और छोटा-सा मार्ग दिखाई देता है।"

(९) गुरु और शिष्य

निस्सन्देह स्वामी शिवानन्द जी ने कोई नया सिद्धान्त या तत्व संसार के सामने नहीं रखा है। ये सिद्धान्त तो बहुत प्राचीन काल से चले आ रहे हैं। स्वामी जी की विशेषता यही रही है कि आपने अपने जीवनानुभव द्वारा, रचनात्मक कसौटी पर कस कर, सत्य सनातन धर्म या चिरन्तन-सत्य को सब के समक्ष सीधे-सादे किन्तु प्रभावशाली शब्दों द्वारा तथा अपने जीवनोदाहरण द्वारा उपस्थित किया है। प्रेम और साधना ही आपका अमोघ सन्देश है। इस प्रकार आपने "आत्मिक-बम" रूपी असाधारण अस्त्र प्रदान किया है। इस शस्त्र से लड़ते हुए विश्वास का जन्म होता है और प्रयोग कर्त्ता की शक्ति बहुत बढ़ती है।

स्पिनोजा ने ठीक ही लिखा है—"जो व्यक्ति अत्याचार के साथ प्रेम से ही युद्ध करना चाहता है, वह आनन्द और विश्वासपूर्वक लड़ता है; वह अनेक का प्रतिरोध उसी आसानी से करता है जिस प्रकार एक का, और उसे अर्थ की बहुत कम आवश्यकता रहती है। जिन्हें वह परास्त करता है, वे प्रसन्नता से आत्म समर्पण करते हैं—असफलता के कारण नहीं, बल्कि अपनी शक्ति की वृद्धि के कारण।*

* He who chooses to avenge wrong with hatred is assuredly wretched But he who strives to conquer hatred

'मुँह में राम और हाथ से काम' (अर्थात् हाथों से तो मनुष्य मात्र की निष्काम सेवा करके आत्म-शुद्धि कर लो और सदैव भगवान् का स्मरण करते हुए अपने लक्ष्य पर ध्यान रखो।) यही स्वामी जी कहते हैं। कबीर ने भी इस भाव को अपने एक कवित्त में बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है—

"नामा माया मोहिया, कहै तिलोचन मीत।
काहे छाया छाइ लै, राम न लावै चीत॥
नामा कहै तिलोचना मुखाँ राम सँभालि।
हाथ पाँव कर काम सब, चित्त निरंजन नालि॥

इसमें कबीर ने श्रम के सम्बन्ध में नामदेव और त्रिलोचन की बात का उल्लेख किया है। तिलोचन के इस दोषारोपण पर कि सांसारिक प्रेम ने उन्हें मोहित कर लिया है और वे अभी तक छीपी का काम करते हैं, नामदेव ने कहा है कि 'हे तिलोचन, तुम होठों से राम का नाम स्मरण करो और अपने सभी कर्तव्य हाथ-पैर से करते चलो। अपना हृदय ईश्वर से ही सम्बद्ध रखो।'

इस प्रकार स्वामी जी कच्चे गुरु नहीं, उनकी सेवा केवल समाज-सेवा की भावना-मात्र नहीं है, वह तो प्रभु प्राप्ति या ब्रह्म में लीन हो जाने का एक साधन है। यह प्रथम सोपान है और आगे बढ़ने के लिए, वे कहते हैं कि निष्काम सेवा द्वारा जीवन की साधना में साधना

with love fights his battle in joy and confidence, he with stands many as easily as one, and has very little need of fortune's aid Those whom he vanquishes yield joyfully, not through failure, but through increase in their power —Spinoza.

ही जीवन बन जाये। कबीर ने इस बारे में कहा था कि जो कोई एक मात्र नित्यवस्तु ब्रह्म में लीन हो गया है, वह वास्तव में अमर है। उन्होंने कमलिनी का उदाहरण देकर इस बात को और भी स्पष्ट किया है। सूर्य के प्रकाश बिना मुरझाती हुई एक कमलिनी का वर्णन करते हुए (जिसके चारों ओर उसे जीवन प्रदान करने वाला जल भरा हुआ है) उन्होंने मनुष्य को कमलिनी माना है और जल को ब्रह्मतत्व, क्योंकि वही आत्मा के लिए आध्यात्मिक पोषण प्रदान करता है और सूर्य का प्रकाश सांसारिक वैभव के लिए आया है :

"काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी, तेरेहि नालि सरोवर पानी ॥
जल में उतपति जल में वास, जल में नलिनी तोर निवास ॥
ना तलि तपति न ऊपरि आगि, तोर हेतु कहु का सनि लागि ॥
कहै कबीर जे उदिक समान, ते नहिं मुए हमारे जान ॥

अर्थात् 'हे कमलिनी तू क्यों मुरझाई जा रही है? तेरे निकट तो तालाब का पानी भरा हुआ है। जल से ही तू उत्पन्न हुई थी और उसी में रहती भी है; वही तेरा घर है। न तो तेरे नीचे किसी प्रकार की गर्मी है और न ऊपर से आग ही जल रही है; तेरी लगन किस से लगी हुई है? कबीर का कथन है कि जो जल में मग्न है, वह कभी मर नहीं सकता। स्वामी जी भी यही कहते हैं कि अपने को ब्रह्म और सब को ब्रह्ममय जान कर इसी भाव से सेवा तथा आचरण किया जाना योग्य है। मनुष्य यदि अपनी शक्ति को पहचान ले तो निराशा, असफलता आदि का कभी भान भी न होगा।

जनता में यह धारणा घर कर गई है कि सच्चे संत, महात्मा लोग आसानी से शिष्य नहीं बनाते और न ही उनके उपदेश सर्वसाधारण को सुलभ होते हैं। प्राचीन काल में वर्षों की तपस्या और कठिन साधना

के अनन्तर गुरू किसी को अपना शिष्य बनाता था। लेकिन स्वामी शिवानन्द का उद्देश्य तो प्राणिमात्र को ऊँचा उठाना है, कुछेक व्यक्तियों को उन्नत कर देना ही उनका मन्तव्य नहीं। इसीलिए जब कोई व्यक्ति अत्यन्त संकोच के साथ स्वामी जी को लिखता है "कृपया मुझे अपना शिष्य वा साधक स्वीकार कीजिए" और जब वे उत्तर में पत्र पाते हैं, "मैंने आपको अपना प्रिय साधक बना लिया है" तो आश्चर्यचकित रह जाते हैं। इसके बाद तो उनका ऐसा सम्बन्ध जुड़ जाता है कि साधक आध्यात्मिक पथ पर बढ़ता ही जाता है और जब कोई साधक साधना में थोड़ी भी त्रुटि दिखलाता है या अन्य किसी कारण पूरी तरह निभा नहीं पाता तो उन्हें स्वामी जी का अनपेक्षित पत्र मिलता है—"आपकी साधना कैसी चल रही है? कठिन काल अब गुजर चुका है। अब श्रेष्ठ दिन आ गए हैं। दृढ़ बनो। माया बहुत शक्तिशाली है। मन और इन्द्रियों पर काबू करो। सदैव तत्पर और जागरूक रहो।" इस प्रकार आप प्रगति को ध्यान में रखते हैं और साधक को निरंतर प्रेरणा देते रहते हैं।

आध्यात्मिक मार्ग में उन्नति करने के लिए ही स्वामी जी ने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। जनता में यह विश्वास है कि बिना गुरु के इस पथ पर न चलना चाहिए और इसीलिए स्वामी जी दृढ़व्रती साधक या विद्यार्थी के तुरन्त ही गुरु बन जाते हैं; लेकिन यह गुरु अन्य गुरुओं की भाँति नहीं है। अतिभक्तिभावना से जब साधक आपके पास आकर चरणों में झुकता है या पैर दबाना चाहता है तो आप स्वीकार नहीं करते। आप पहले नमस्कार करेंगे, आगे बढ़कर अभ्यर्थना व सत्कार करेंगे और उसके लिए स्थान की सुविधा, भोजनादि का प्रबन्ध करेंगे तथा किसी प्रकार से भी सेवा करने के लिए प्रयत्नशील रहेंगे। जब कोई "जगद्गुरु" "सद्गुरु," "अवतार," या ऐसे ही सम्बोधन अपने पत्र में लिखता है तो आपको प्रसन्नता नहीं होती; आप तो पत्रों के

उत्तर में अपने को सदैव 'विनीत' (Thy humble Sevak) ही लिखेंगे। जब लोग आपकी प्रशंसा करते हैं तो आप तुरन्त कहते हैं—"बहुत अच्छा। बड़ी कृपा।" और आगे यही कहेंगे—"प्रशंसा या निन्दा तो माया का प्रपंच है—केवल भावों की लहर है।" निन्दा या प्रशंसा का आप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

साधक कौन है? जो मनुष्य दृढ़-संकल्प होता है और जो सुख-दुःख में समान भाव से रहता है, वही अमरत्व को प्राप्त करने का अधिकारी होता है। गीता में कहा है—'समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।' शिष्य में वैराग्य होना आवश्यक है। उसमें शिष्य भाव और सेवा-भाव होना चाहिए। उसमें परमात्मा के प्रति भक्ति होनी चाहिए। उसे तपस्वी होना चाहिए। उसमें परछिद्रान्वेषण का स्वभाव न होना चाहिए। वास्तविक मुमुक्षु वही है जिसने तपश्चर्या, निःस्वार्थ सेवा और भक्ति द्वारा अपने आपको पवित्र कर लिया है, और जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया है, जिसने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया है, जिसे गुरु और श्रुति के वाक्यों पर श्रद्धा है और जिसने मोक्ष के चार उपायों—(१) विवेक (२) वैराग्य (३) षट्सम्पद् (४) मुमुक्षुत्व को प्राप्त कर लिया है।

स्वामी जी कहते हैं—'प्रिय साधको, प्रकाश के पुत्रो, अमृत-पुत्रो, अमरत्व और अनन्त सुख के झरनो, हे सौम्य। मैं सदा आपके साथ हूँ। जरा भी भय न कीजिए। हम अविभाज्य हैं। आपको शान्ति अवश्य मिलेगी। मेरा आत्मा का प्रकाश आप सब पर पड़ता है। मेरी शान्ति आपकी आत्माओं पर कल्याणप्रद प्रभाव डालती है। वह प्रकाश; वह ज्योति, कभी धूमिल न हो। शाश्वत पुरुष का तेज आप सब के अन्दर से चमक उठे, जिससे आपके आस-पास का अन्धकार मिट जाय। वह दिव्य प्रकाश आपके आध्यात्मिक मार्ग को प्रकाशवान् करे। शान्ति आपके मन और हृदय में भर जाय।'

'एक नर्तकी जो सिर पर घड़ा लिये नाच रही है यद्यपि नाना प्रकार के स्वर निकाल कर नाचती जाती है तथापि उसका ध्यान सिर पर रखे हुए पानी के घड़े पर ही रहता है। इसी प्रकार एक साधक, संयमी या साधु अपने व्यापार व्यवसाय के सब कामों को देखता है। किंतु उसका मन आनन्दकन्द परमात्मा के चरण कमलों में ही निरन्तर लगा रहता है। आध्यात्मिक जीवन का यह पहला कदम है।

संसार के प्रति उसी प्रकार से अनासक्त रहिए जिस प्रकार गायों को चराने वाला गायों से या धनवानों के लड़कों की देख-रेख करने वाली आया बच्चों से रहती है। चरवाहा गायों को मैदान में चराने के लिए ले जाता है और शाम को उन्हें लाकर अपने मालिकों को वापस सौंप देता है। बस, इससे अधिक उसका और कोई सरोकार नहीं। उसी प्रकार आया बच्चों से प्यार नहीं करती। वह उनके साथ बराबर रहती है, उनकी देख रेख करती है परन्तु जब अलग होने का समय आता है, जब वह नौकरी छोड़ कर जाने लगती है तो उसके मन में वियोग की लेशमात्र भी व्यथा नहीं होती।

जब गाय चरागाहों में चरा करती है, तब वह बराबर अपने बछड़े का स्मरण करती है। इसी प्रकार आप भी इस संसार में कर्म करते जाइए, नाना प्रकार की अपनी कृतियों और कर्तव्यों का पालन करते जाइए और साथ-ही-साथ भगवान् का स्मरण भी करते जाइए। अपना मन भगवान् को सौंप दीजिए और अपना शरीर अपने कामों को। तब आप मुक्त हो जाएँगे, आप जीवन मरण से मुक्त होकर परम कल्याण प्राप्त करेंगे। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं। गरीबों और रोगियों की सेवा के रूप में भगवान् की पूजा कीजिए। इस प्रकार स्वामी जी आध्यात्मिक पथ प्रदर्शक और महान सन्त दोनों हैं।

(१८) विचार-कण

स्वामी जी की लेखन शैली ही ऐसी है कि हजारों आदर्श वाक्य आपको ढूँढने पर सहज ही में मिल जायेंगे। हम कतिपय ऐसे वाक्य यहाँ उद्धृत कर रहे हैं:—

(१) पूछो, मैं कौन हूँ और आत्म-साक्षात्कार करो।
(२) सावधानतापूर्वक अध्ययन करके किसी से भी मित्रता गाँठ लो।
(३) जिस किसी से आपने मित्रता करली है, उसे जीवन भर निभाओ।
(४) लाभ-प्राप्ति के लिए दुष्कर्म न करो।
(५) कठोर शब्द न बोलो।
(६) शुभ कर्मों के लिए तीक्ष्ण कामना करो।
(७) हमेशा गुणकारी कार्य करो।
(८) क्रोध को क्षमा, धैर्य और विचार से शान्त करो।
(९) किसी को दान देने से न रोको।
(१०) माता-पिता तो पृथ्वी पर दृश्यमान् भगवान् हैं।
(११) इसलिए माता-पिता का सत्कार, सेवा और रक्षा करो।
(१२) दूसरों को हानि न पहुँचाओ।
(१३) महापुरुष के बुद्धिमान् वचन सुनो और तदनुसार कार्य करो।
(१४) दूसरों की सम्पत्ति का अपहरण न करो।
(१५) शास्त्रविहित कर्म करो।
(१६) आत्म-ज्ञान से अज्ञान को हटाओ।
(१७) सन्तों का सत्संग करो।
(१८) बाल-बुद्धि व्यक्तियों से मित्रता न करो
(१९) संसार में व्यवहार कुशल बनो।
(२०) अपने शत्रुओं का विश्वास मत करो।

(२१) शास्त्र और संतों के आदेशानुसार कार्य करो।
(२२) दुष्ट संग त्याग दो।
(२३) अधिक मत खाओ।
(२४) महात्माओं के समक्ष अधिक न बोलो।
(२५) पक्षपात रहित बनो।
(२६) सात्विक, उच्च पुरुष बनो।
(२७) सत्य अथवा मोक्ष के मार्ग पर चलो।
(२८) बातें करते हुए किसी बात को खा न जाओ।
(२९) कुछ आवश्यक बातें लिखलो और मुक्त भाषण करो।
(३०) नित्य प्रति स्वाध्याय करो।
(३१) अनावश्यक बहस न करो।
(३२) आत्म-प्रशंसा मत करो।
(३३) वासनाओं पर संयम रखो।
(३४) बढ़बढ़कर या घुमा-फिरा कर बातें न करो।
(३५) मांगना घृणास्पद है, मांगना साक्षात् मृत्यु है।
(३६) सफलता-असफलता की चिंता बिना अपने काम में डटे रहो; संतोषी बनो।
(३७) कभी शोक न करो।
(३८) उस व्यक्ति के कृतज्ञ बनों, जिसने तुम्हें सहायता पहुँचाई है।
(३९) अपने यौवन-काल में ही कुछ सीखो।
(४०) अधिक न सोओ; ६ घण्टे निद्रा लो।
(४१) जीवों व मूक पशुओं की रक्षा करो।
(४२) किसी की जान न लो।
(४३) निरामिष भोजी बनो।
(४४) दूसरे को खिलाकर खुद खाओ।
(४५) तुम्हारे पास जो कुछ है, बाँट कर लो।

(४६) नीच कर्म न करो।
(४७) उच्च बनो, हृदय को विशाल बनाओ।
(४८) निःस्वार्थ प्रेम और क्षमा-भावना को उन्नत करो।
(४९) जुआ मत खेलो।
(५०) अपने में सात्विक गुणों का विकास करो।
(५१) दूसरे के क्रोध को शमन करने वाले कटु वचन न कहो।
(५२) चाहे कुछ भी कार्य करो, पूरी लगन के साथ करो।
(५३) अपने शरणागत की रक्षा करो।
(५४) खेतों को जोतो और वाणिज्य चलाओ।
(५५) अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखो।
(५६) स्वास्थ्य और सफाई के नियमों का पालन करो।
(५७) विद्वान् पर कीचड़ उछालने की चेष्टा न करो।
(५८) दृढ़-मति हो कर श्रेय मार्ग पर चलो।
(५९) प्रातः ४ से ६ और सायं ८ से ६ तक प्रार्थना और मनन में लगाओ।
(६०) वेश्या के यहाँ न जाओ।
(६१) अदालत की शरण न लो।
(६२) कैसी भी परिस्थिति आये, हतोत्साह होने की जरूरत नहीं।
(६३) तथ्यपूर्ण और प्रवाहमयी शैली में भाषण करो।
(६४) सदैव सत्य-भाषण ही करो।
(६५) व्यर्थ की गप शप में समय नष्ट न करो।
(६६) अन्य व्यक्तियों को हानि पहुँचाने वाले कार्य मत करो।
(६७) कार्य करने से पूर्व भलिभाँति तीन बार सोच लो।
(६८) अधिक मिठाइयाँ मत खाओ।
(६९) मादक द्रव्यों व पदार्थों का सेवन न करो।
(७०) अपनी सम्पत्ति की रक्षा करो।

(७१) सिनेमा न देखो।
(७२) फैशन छोड़ दो।
(७३) सरल, पवित्र जीवन बिताओ।
(७४) अपनी पत्नी की गलत सलाह न मानो।
(७५) लड़ो मत।
(७६) गाली मत दो।
(७७) दूरदर्शिता अपनाओ।
(७८) पापपूर्ण कर्म न करो।
(७९) नित्य कुछ न कुछ दान दो।
(८०) प्रभु की पूजा करो।
(८१) लिखने के लिए दैनिक संस्मरण-पुस्तिका रखो।
(८२) आध्यात्मिक दैनन्दिनी नित्य भरो।
(८३) जीवन का एक निश्चित ध्येय और आदर्श होना चाहिए।
(८४) इन्द्रियों को वश में करो।
(८५) दैनिक व्यायाम किया करो।
(८६) प्राणायाम करो।
(८७) समाज में निष्काम-सेवा करो।
(८८) श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न करो।
(८९) अन्यों के सकट हर लो।
(९०) घमण्ड और चालाकी को नष्ट करो।
(९१) अपने अधिकार में वस्तुओं की चर्चा न करो।
(९२) सदैव दूसरों की सराहना करो।
(९३) दूसरों के मुख पर दृष्टि रख कर बातें करो।
(९४) नित्य दो घण्टे मौन रखो।
(९५) वीर्य-रक्षा करो।
(९६) भक्तिपूर्वक महात्माओं की सेवा करो।

(६७) यह संसार अवास्तविक है ।
(६८) दूसरों के दोष निकालने या चुगली करने की आदत त्याग दो।
(६६) संतोषमय-जीवन यापन करो।
(१००) मन को वश में करो।
(१०१) सुख अपने भीतर ढूँढो।
(१०२) 'मैं', 'मेरा' का मोह छोड़ दो ।
(१०३) सम्मान व सत्कार को गोबर और विष-सम जानो।
(१०४) हर समय भगवान् का स्मरण रखो।
(१०५) प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक जीव में भगवान् के दर्शन करो।
(१०६) व्यक्ति के विशेष गुण सीखो।
(१०७) आत्म-ज्ञान प्राप्त करो।
(१०८) अपने सच्चिदानन्दस्वरूप में स्थित हो जाओ।

षोडश अध्याय

साधू-सामंजस्यवादी

साधू कौन?

सच्चे साधुओं में सबसे विलक्षण बात यह पाई जाती है कि वे अपनी स्थूल प्रकृति पर विजय प्राप्त कर एक मानसिक सन्तुलन की स्थिति में पहुँच जाते हैं। साधु किसी प्रकार भी सांसारिक प्रलोभनों द्वारा प्रभावित नहीं होता; वह मेरा और तेरा के स्तर से ऊँचा होता है तथा निन्दा एवम् स्तुति उसके लिए समान हैं। न तो वह प्रशंसा सुनकर

आह्लादित होता है और न निंदा से नाराज ही। उसमें धैर्य की अपार शक्ति सन्निहित रहती है और इसीलिए वह केवल शारीरिक कष्ट ही नहीं, अपितु, अनेक अपमानों को भी सहन कर लेता है। साधू को स्वय किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि वह अपने भीतर एव चारों और सर्वत्र भी उसके अस्तित्व का अनुभव करता है, जो सबका दाता है। उसे इसी कारण किसी भी आर्थिक लाभ की अभिलाषा नहीं। साधु कभी उस यश के लिए भी नहीं मरता जो मिलटन के अनुसार उदारचेताओं तक की दुर्बलता का कारण बन जाता है।

'साधू जल का एक अग, बरतै सहज सुभाय।
ऊँची दिशा न संचरै, निवन जहाँ ढुलकाय॥'

सत दरिया का कहना है कि— साधू स्वभावत पानी समान होते हैं, क्योंकि वे ऊपर की जगह नीचे की ओर ही बहा करते हैं उसके अन्दर अभिमान व गर्व को कोई स्थान नहीं। वह इस बात के लिए बहुत सचेष्ट नहीं होता कि उसके इर्द-गिर्द अनेक शिष्यों का जमघट एकत्रित हो कर उसके बड़प्पन तथा प्रभाव में वद्धि किया करे। उच्च ज्ञान और श्रेष्ठ आध्यात्मिक शक्तियों से सम्पन्न होता हुआ भी वह जान बूझकर इस प्रकार रहता है, जैसे कोई अज्ञानी व शक्तिहीन व्यक्ति हो। वह विनय- शील बनकर जीवन व्यतीत करता है।

स्वामी शिवानन्द एक सच्चे साधू हैं। संसारी तिकड़मबाजी और घेर घुमाव से आप बहुत दूर हैं और सरलता के कारण आप एक बालक की भाँति ही हैं। अपने आत्म विश्वास द्वारा दूसरे से शीघ्र ही बहुत घुल मिल जाते हैं। हरेक के सुझाव, चाहे फिर वह बालक ही क्यों न हो, आप ग्रहण करेंगे। हरेक परिस्थिति में अडिग और निश्चल रहेंगे। "क्षमा करो और भूल जाओ" ये सिद्धान्त की चर्चा करने वाले तो कितने ही मिल जाएँगे, किन्तु यह स्वामी जी के स्वभाव का अंग बन गया है।

स्वामी जी के विरोधी रहे हैं; मुँह पर गालियाँ देने वाले रहे हैं और उनके कार्य को बिगाड़ने वाले भी रहे हैं, किन्तु उनसे भी मधुर व्यवहार रखना मित्रवत् व्यवहार रखना और कार्य बिगाड़ते हुए देख लेने पर भी शान्ति धारण करना स्वामी जी के ही वश की बात है।

स्वामी जी सब को सम-भाव से देखते हैं, चाहे वह एक अशिक्षित, मुक्त जिज्ञासु हो या एक सुसंस्कृत, तीक्ष्णबुद्धि साधक; एक बहुत योग्य विद्यार्थी हो या गलियाँ दुहराने वाला कार्यकर्त्ता; एक पुराना कार्यकर्त्ता हो अथवा रंगरूट साधक; कोई भी हो सबके साथ समानता का व्यवहार करेंगे, एक सी स्नेह-दृष्टि करेंगे, क्योंकि प्रत्येक साधक उनकी निगाह में उच्च है। आप साधकों को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाना चाहते हैं, सब भाँति योग्य देखना चाहते हैं। और यदि एक योग्य साधक सुशिक्षा ग्रहण करके लौटने का विचार कर ले तो यह जानते हुए भी कि उसके जाने से कार्य में बाधा पहुँचेगी, आपको रंज नहीं होगा, आप उसे रोकेंगे नहीं, प्रत्युत प्रसन्नतापूर्वक पुस्तकें व अन्य सुविधायें प्रदान कर विदा करेंगे और यही कहेंगे कि आश्रम का द्वार उसके लिये सदैव खुला है।

धार्मिक सहिष्णुता

डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने अपने प्रबन्ध "हिन्दी काव्य में निर्गुणधारा" (The nirguna school of Hindi poetry) में लिखा है कि रामानुज का समय बारहवीं शताब्दी माना जाता है। उन्होंने श्रीवैष्णव सम्प्रदाय की आधारशिला को विशिष्टाद्वैत को जिसे नाथमुनि ने तैयार किया था, दृढ़ रूप से आरोपित कर दिया। वेदान्त सूत्र पर उनका श्रीभाष्य बहुत प्रसिद्ध हुआ। गीता और उपनिषदों के भी उन्होंने विशिष्टाद्वैती भाष्य किए और इनमें शंकर के मायावाद का

खण्डन कर, माया को ब्रह्म में निहित मानकर उसमें गुणों का आरोप कर लिया, जिससे तत्त्व रूप से भी भक्ति के लिए दृढ आधार निकल आया। यदि ब्रह्म में ही गुणों का अभाव है, वह तत्त्वतः करूणा करूणालय नहीं है, तो ईश्वर ही में गुणों का आरोप कहाँ से हो सकता है! भक्त का उद्धार ही कैसे हो सकता है? शंकर के रूखे अद्वैतवाद से ऊबे हुए लोगों को यह विचारधारा अत्यन्त आकर्षक प्रतीत हुई।

रामानुज ही के समय में निम्बार्क ने अपने में भेदाभेद के सिद्धान्त को लेकर वैष्णवमत की पुष्टि की और राधाकृष्ण की उपासना को प्राधान्य दिया। कर्नाटक और गुजरात में आनन्दतीर्थ ने भक्ति का प्रचार किया। महाराष्ट्र में पंढरपुर का विठोबा का मन्दिर वैष्णव धर्म के प्रचार का केन्द्र हो गया। सन् १४८५ के बाद बंगाल में चैतन्यदेव और उनकी शिष्यमण्डली ने भक्ति की उन्मादकारिणी विह्वलता में जन समाज को भी पागल बना दिया। उत्तर भारत में राघवानन्द, रामानन्द तथा वल्लभाचार्य के प्रयत्न से वैष्णव भक्ति का प्रवाह सर्वप्रिय हो गया। रामानन्द ने सीताराम की भक्ति का प्रतिपादन किया और वल्लभ ने शुद्धाद्वैत और पुष्टिमार्ग को लेकर राधाकृष्ण की भक्ति चलाई। गोसाईं तुलसीदास रामानन्द के सम्प्रदाय में हुए। गुजरात में नरसीमेहता ने, मारवाड़ में मीराबाई ने, मध्यदेश में सूरदास ने और महाराष्ट्र में ज्ञानदेव, नामदेव और तुकाराम ने इस भक्तिमूलक आनन्द की अजस्र वर्षा कर दी। तुलसीदास ने पुरानी कहानी में, दैत्यविनाशिनी क्रियमाण शक्ति का रूप देख कर, अनन्तशक्ति से संयुक्त राम को अपने अमोघ बाण का संधान किए हुए अन्यायी रावण के विरूद्ध खड़ा दिखाया। भक्त शिरोमणि समर्थ रामदास ने तो आगे चल कर शिवाजी में वह शक्ति भर दी, जिसने शिवाजी को भारतीय इतिहास में एक विशिष्ट स्थान दिला दिया।

लेकिन आज भी आप तथाकथित साधुओं को 'सीताराम' और 'राधेश्याम' के नाम पर लड़ते-झगड़ते हुए पायेंगे। अपने इष्टदेव के पक्ष समर्थन में एक इतना कट्टर है कि वह दूसरे देव का नामोच्चार, दर्शन भी पसन्द नहीं करता। दसवीं शताब्दी के लगभग प्रसिद्ध योगिराज गुरु गोरखनाथ हुए थे। और उस समय मुसलमानों के पदार्पण से हिन्दू मुसलमानों में वैर विरोध तथा संघर्षात्मक भावना ही प्रधान थी। अलबेरूनी ने इसका उल्लेख किया है। हिन्दू मूर्तिपूजक था, मुसलमान मूर्तिभंजक। हिन्दू बहुदेववादी था पर मुसलमानों के लिए एक अल्लाह को छोड़ कर, मुहम्मद जिसका रसूल है, किसी दूसरे के सामने सिर झुकाना कुफ्र था और कुफ्र के अपराधी काफिर की हत्या करना धार्मिक दृष्टि से अच्छा समझा जाता था। यहाँ तक कि हत्यारे को गाजी की उपाधि दी जाती थी। और इस सम्मान के लिए प्रत्येक अहले-इस्लाम लालायित रहता होगा। आज भी हिन्दू-मुसलमान में सौहार्द्र स्थापित न हो सका। दोनों ही अपने हृदयों को शुद्ध न कर सके।

स्वामी शिवानन्द साधक को अपना धर्म या सम्प्रदाय त्याग कर एक नवीन विश्वास ग्रहण करने के लिए नहीं कहते। उनका कोई नया पंथ नहीं है। साधक को वे कोई खास साधना या मंत्र की दीक्षा नहीं देते। समन्वय के ही आप प्रचारक हैं। राग द्वेष से ऊपर उठ कर अपने अपने धर्म के सत्याचरण की प्रेरणा ही वे देते हैं। सब में अच्छाई के दर्शन करना और कराना ही उनका मन्तव्य है। कुछ ईसाइयों का मत है ईसाई बनने और बाइबिल के अध्ययन से ही भगवद् प्राप्ति संभव है। कुछ हिन्दू कहते हैं कि संस्कृत जानने, व्याकरण और तर्क-शास्त्र के पढ़ने से जीवन के ध्येय को प्राप्त किया जा सकता है; कुछ व्यक्ति किसी विशिष्ट देवता की उपासना ही इसके लिए आवश्यक मानते हैं। कुछ मुसलमान कहते हैं कि कुरान पढ़ने से ही अल्लाह या ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु स्वामी जी सब धर्मों में

एक ही श्रेयस्कर पथ का अनुभव करते हैं। उनकी भावना कवि की निम्न पंक्तियों में भली प्रकार व्यक्त हुई है:—

> "जीसस के हाथ में था करता विनोद तू ही।
> तू अन्त में हंसा था महमूद के रुदन में।
> बुद्ध जानता था तेरा सही ठिकाना।
> तू ही मचल रहा था मंसूर की रटन में।"

और

> "तू ज्ञान हिन्दुओं में, ईमान मुसलिमों में।
> है प्रेम क्रिश्चियन में, तू सत्य है सुजन में।।"

स्वामी जी धार्मिक सहिष्णुतर और सर्व धर्म समन्वय के पक्षपाती हैं। न केवल विचार बल्कि व्यवहार से भी यह सत्य है। एक बार आश्रम में योग सीखने के लिए एक बौद्ध भिक्षु श्री उत्तम ठहरे थे। वह नामानुकूल ही बहुत विनीत और उत्तम प्रकृति के थे। स्वामी जी शाम को कीर्तन के समय नित्य ही उन्हें पाली भाषा में बौद्ध-प्रार्थना सुनाने के लिए बुलाते। आश्रम में जब दो पारसी भक्त—शान्त और धर्मात्मा बी० लुँगारना तथा दूसरे सरल-स्वभाव और प्रसन्नचित श्री के० डेरियस—ठहरे थे तो उन्हें पारसी धर्म की प्रार्थना सुनाने अथवा 'जेन्दावस्ता' में से कुछ अंश सुनाने को ही कहा जाता; यद्यपि डेरियस को 'नमः शिवाय' के कीर्तन में विशेष रस मिलता। इसी प्रकार विभिन्न-धर्मावलम्बी अन्य दो साधकों के साथ हुआ। एक तो लीवरपूल से आया नवयुवक अंग्रेज साधक था और उन्हें "ओ३म् जीसस्" कीर्तन गाने को ही कहा जाता तथा मंत्र लेखन में भी वही व्यवहृत होता। दूसरे साधक "शिव पंचाक्षरी मंत्र" की दीक्षा चाहते थे और इसीलिए उन्हें—दत्तात्रेय इष्टदेव की उपासना करने को ही कहा गया। स्वामी

जी की प्रवृत्ति यह कदापि नहीं है कि चेले ही चेले हो जावें और वे कोरे चेले ही रहें। स्वामी जी अल्लाह और मुहम्मद के नाम का कीर्तन करने में भी उतनी प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, जितना ॐ (प्रणव) का, ईसा का, बुद्ध का, रामका, कृष्ण का अथवा शिव का।

महात्मा कबीर ने कहा है—"कहै कबीर एक राम जपहु रे हिन्दू तुरक न कोई" तथा 'हिन्दू तुरक का कर्त्ता एकै ता गति लखा न जाई"। इसी प्रकार रैदास, दादू आदि सभी निगुर्णोपासक संतों ने बार-बार इस बात पर जोर दिया है कि जगत् का कर्त्ता-धर्त्ता एक ही परमात्मा है, जिसको हिन्दू और मुसलमान दोनों सिर नवाते हैं। स्वामी शिवानन्द तो न केवल हिन्दू, मुसलमान बल्कि सभी धर्मों के व्यक्तियों के लिए ऐसा कहते हैं और किसी भी जाति या कोई भी धर्म वा मत का मानने वाला हो; सगुणोपासक हो या निर्गुणोपासक वे किसी को नीचा नहीं मानते। हिन्दुओं के विभिन्न देवी देवताओं को वे एक ही परमात्मा के अनेक नाम-रूप मानते हैं, जैसा कि ऋग्वेद (२, ३, २३, ६) में भी कहा गया है—'एकं सद्विप्रा बहुधा वदंत्यग्निमिन्द्रं मातरिश्वानमाहुः'। डा० बड़थ्वाल ने इस विचारधारा को सुस्पष्ट किया है कि हिन्दू-बहुदेववाद वैसा नहीं है जैसा बाहर-बाहर देखने से प्रकट हो सकता है। हिन्दुओं के प्रत्येक देवता का द्वैध रूप है—एक व्यवहारिक और दूसरा पारमार्थिक अथवा तात्विक। व्यवहारिक रूप में वह परब्रह्म परमात्मा के किसी पक्षविशेष का प्रतिनिधि है जिसके द्वारा याचक भक्त अपनी याचना की पूर्ति की आशा करता है। ब्रह्मा विश्व का सृजन करता है, विष्णु पालन और रुद्र उसका उद्देश्य पूर्ण हो जाने पर संहार; लक्ष्मी धनधान्य की अधिष्ठात्री है, सरस्वती विद्या की चण्डी वह प्रचण्ड दिव्य-शक्ति है जो अत्याचारी राक्षसों का विध्वंस करती है और युद्ध-यात्रा में जाने के पहले जिसका आवाहन किया जाता है आदि। परन्तु परमार्थरूप में प्रत्येक देवता पूर्ण परब्रह्म परमात्मा

है और व्यावहारिक पक्ष में अन्य सब देवता उसके अधीनस्थ हैं। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रख कर मैक्समूलर ने भारतीय देववाद को 'पोलीथिज़्म (बहुदेववाद) न कह कर' 'हीनोथिज़्म' कहा है। डाक्टर ग्रियर्सन को भी यह बात माननी पड़ी है कि हिन्दुओं की मूर्तिपूजा और बहुदेववाद हिन्दू-धर्म के गहन सिद्धान्तों के बाहरी आवरणमात्र हैं।

समत्व-भावना

एक व्यक्ति के पास पचास हजार रुपये हैं, वह बिना माली-मसीक के बाहर नहीं चलता। मौजानन्द के लिए उस उसे सब प्रकार के आमोद-प्रमोद की आवश्यकता है। वह बिना मोटर के नीचे पैर नहीं रखता। और उस व्यक्ति के अभिमान का तो कोई ठिकाना नहीं, जिसके पास लाखों रुपये हैं। ५० हजार रुपयों के मालिक का लक्षपति का दिवाला निकल आता है अथवा चंचला लक्ष्मी गाँठ से निकल जाती है तथा वह फटे कपड़ों में इधर-उधर घूम रहा है। अब वह बिल्कुल निरभिमानी और शान्त स्वभाव का हो गया है। वह सब को प्रेम से मिलता है दीन है, याचना करता है। उसमें अब मनुष्यता का गुण विकसित हो रहा है। अब वह किसी को हीन या नीचा नहीं समझता। इसीलिए स्वामी जी किसी को नीचा नहीं मानते। शूद्रों के उद्धार में उनका विश्वास है। वे कहते हैं कि सभी को आध्यात्मिक उन्नति करने का जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त है। 'जात-पाँत पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।' छुआछूत और वर्णभेद को स्वामी जी अभिशाप समझते हैं। गीता में भी (अध्याय ५, १८) कहा गया है—

> 'विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
> शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥'

कहा जाता है कि महाराष्ट्र का सुप्रसिद्ध संत नामदेव अपनी जवानी

में डाकू बन बैठा था और लूटमार कर आजीविका चलाता था। एक दिन उसके दल ने ८४ आदमियों के समूह को मार डाला। शहर में लौटकर आने पर उसने एक स्त्री को करुण क्रन्दन करते हुए पाया। पूछने पर मालूम हुआ कि उसके पति को डाकुओं ने मार डाला है। उसे अपने कृत्य पर उत्कट घृणा हो आई और वह घोर पश्चात्ताप करने लगा। विसोबा खेचर को गुरू बना कर वह भक्ति पथ में अग्रसर हुआ और विठोबा की भक्ति में अपने जीवन को उत्सर्ग करके एक उच्च कोटि का संत हो गया। भक्त सधना खटिक था। बेचने के लिए मांस तौलते समय बटखरे की जगह शालिग्राम की बटिया रखता था। एक वैष्णव का देख कर बुरा लगा और शालिग्राम की बटिया माग कर ले गया। रात में उसे स्वप्न हुआ कि भाई, तुम मुझे बड़ा कष्ट दे रहे हो। अपने भक्त के यहाँ मैं (तराजू के) झूले पर झूला करता था, उस सुख से तुमने मुझे वञ्चित कर दिया है, भला चाहो तो वहीं दे आओ और वह दे आया। दादू धुनिया, कबीर जुलाहा, धन्ना जाट और सेन नाई था। सेन (जो किसी राजा के यहाँ नौकर था।) की भक्ति की इतनी महिमा प्रसिद्ध है कि एक बार जब वह साधु सेवा में लीन होने के कारण राजा की सेवा करने के लिये यथा समय न जा सका, तब स्वयं भगवान् सेन का रूप धारण कर राजा की सेवा करने पहुँचे।

नन्दा एक अछूत था और उसे नटराज भगवान् के साक्षात् दर्शन हुए। तुकाराम एक किसान था और उसने एक अमीर की बहुमूल्य भेंट को उठा कर फेंक दिया। संत रैदास का जन्म काशी में हुआ था और वह जाति का चमार था, किन्तु जूती गाँठते हुये भक्ति विह्वल हो कर मस्ती में गा उठता—

'प्रभुजी। तुम चन्दन हम पानी, जाकी अँग अँग बास समानी।
प्रभुजी। तुम घन बन हम मोर, जैसे चितवत चन्द चकोरा।

प्रभुजी! तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति बरै दिनराती।
प्रभुजी! तुम मोती हम धागा, जैसे सोनहि मिलत सुहागा।
प्रभुजी! तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करै रैदासा॥'

ये सभी लोग निर्धन थे, अशिक्षित थे, अछूत थे; किन्तु उनकी शिक्षायें आज भी गूँज रही हैं। जब तक चन्द्र और सूर्य रहेंगे उनकी प्रेरणाप्रद सुक्तन्दिया जीवन में जागृति का सन्देश भरती रहेंगी। इतिहास में उनका नाम सदैव अमर रहेगा। इसलिये जन्म से कोई व्यक्ति छोटा या बड़ा नहीं होता। शूद्र और चाण्डाल शुभ कर्मों द्वारा श्रेष्ठ बन सकता है। इसीलिये स्वामी जी सभी का सम्मान करते हैं; कर्तव्य व कर्म द्वारा ऊँचे उठाने की ओर ही आपका ध्यान रहता है—चाहे वह कोई हो, कहीं भी हो। जाति भेद हिन्दुओं का महारोग है और उसके भी आप प्रारम्भ से चिकित्सक रहे हैं।

योग में सामंजस्य

आत्मा और परमात्मा की ऐक्य-साधना का निर्देश करने वाली मधुरवाणी का साधु-संतों की भावना, रुचि और आकांक्षा के ऊपर सर्वदा से वर्णनातीत अधिकार रहा है। आध्यात्मिक प्रवृत्ति की इस धारा का उद्गम बहुत प्राचीन है। महर्षि पतञ्जलि ने चित्त की वृत्तियों का निरोध करके, मन साधने को योग कहा है। योग की यह लहर, आध्यात्मिकता का वह अविरल श्रोत युग-युगान्तर को पार कर अबाध गति से बहता आ रहा है। इस क्षणिक जीवन के परवर्ती अनन्त अमर जीवन के लिए आकुलता भारत की अन्तरात्मा का सार है तथा परलोक की साधना में ही यह इहलोक की सार्थकता मानती है। इहलोक और परलोक को सुधारने के हित विभिन्न प्रकार के योगों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। किसी ने निष्काम कर्मयोग को श्रेष्ठ ठहराया, किसी ने हठयोग द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत कर उच्च आध्यात्मिक अवस्था की

प्राप्ति को ही एक मात्र साधन बताया, किसी ने ज्ञान-योग की व्यवस्था दी और ज्ञानी को ही सर्वश्रेष्ठ करार दिया, तो किसी ने राजयोग को महत्ता प्रदान की। योग की यह धारा प्रवाह भूमि के अनुरूप कभी सिमटती, कभी फैलती, कभी बालुका में विलीन होती और फिर प्रकट होती हुई अनेक रूप अवश्य धारण करती आई है परन्तु उसका प्रवाह कभी बन्द नहीं हुआ।

भगवान् कृष्ण ने युद्ध-स्थली में अर्जुन को भी योग का उपदेश दिया था—

'योगस्थः कुरू कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनजय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्व योग उच्यते॥'

सफलता और असफलता में समत्व भावना रख कर अर्थात् समता-योग द्वारा भगवान् में ध्यान जमा कर अपना कार्य कर—हे अर्जुन। स्वामी शिवानन्द कहते हैः—'योग भगवान् से एकाकारता का नाम है। यह वह आध्यात्मिक विद्या है, जिसे सीख कर निरन्तर योगाभ्यास द्वारा व्यक्तिगत आत्मा का परमात्मा से मिलन हो सकता है; इन दोनों का मिलन ही योग है। संसार में रहते हुए भी संसार से अलिप्त रहना, यही सब से बड़ा योग है।' यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि से योग की सिद्धि होती है और त्रिकुटी तक पहुँचने के लिए मूलाधार, स्वधिष्ठान, मणिपूर, अनहत्, विशुद्ध, अग्न और सहस्र आदि क्रमशः सात चक्रों को सिद्ध करना पड़ता है। लेकिन योग के कई प्रकार हैं—कर्मयोग, ज्ञानयोग, और भक्ति योग आदि। स्वामी जी जीवन के अभ्युथान के लिए प्रत्येक प्रकार के योग से कुछ न कुछ ग्रहण कर, तदनुसार अभ्यास को आवश्यक मानते हैं। यदि कोई हठयोग के अनुसार आसनादि करता है, धोती नेती, मुद्रायें और

पन्थ का अभ्यास भी कर लेता है तथा कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत किया चाहता है तो स्वामी जी उसे चित्तशुद्धि के लिए 'कर्मयोग' का सुरता बतायेंगे। स्वामी आध्यात्मिक उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि राग-द्वेष आदि द्वन्द्वों से ऊपर उठा जाय।

स्वामी शिवानन्द समन्वयवाद के प्रबल समर्थक हैं। भारतीय दर्शनों की मूल-भित्ति भी समन्वय ही है। हिन्दू धर्मशास्त्रों में विश्वात्म भावना स्पष्ट लक्षित है। यद्यपि विभिन्नता और परिवर्त्तन प्रकृति का सिद्धान्त है, किन्तु दुःख के दिनों में संगठन तथा एकता ही जीवन का सत्य तथ्य है। हमारा प्राचीन धर्म—सनातन धर्म, समरसता, सर्वग्राहता, और विविध विचार-धाराओं के समन्वय के लिए प्रख्यात है। उपनिषदों को विशुद्ध वेदान्त के ग्रंथ कहा जाता है और विद्वान् बिना किसी हिच-किचाहट के कह देंगे कि हाँ, उपनिषदों में ज्ञानकाण्ड है और वेदान्त तथा ज्ञान की ही चर्चा है। किन्तु स्वामी जी ने उपनिषदों में भी ज्ञान-मार्ग के अतिरिक्त भक्ति, कर्म और योग के प्रतिपादक तत्वों को ढूंढ निकाला है तथा सब पन्थों का समन्वय उसमें बताया है। कठोपनिषद् में कर्म, भक्ति, सांख्य, वेदान्त और राजयोग का सुन्दर समन्वय आपने सिद्ध किया है। इसी प्रकार ईशावास्य, केन, प्रश्न, मुण्डक तैत्तीर्य, बृहदारण्यक और छान्दोग्य उपनिषदों में भी आपने योग के सभी पथों के सामंजस्य का निर्देश किया है।

स्वामी जी इसी प्रकार दैनिक कार्य-व्यवहार में योग के समन्वय को आवश्यक मानते हैं, जैसा कि पीछे वर्णित "आध्यात्मिक दैनन्दिनी" के प्रश्नों से स्पष्ट हो जायगा। आपने आसन, प्राणायाम, ध्यान, निष्काम कर्म, ब्रह्मचर्य का पालन, मंत्र लेखन, इष्ट भगवान् (सगुण या निर्गुण) का ध्यान आदि सभी बातों को, योग के सब मार्गों पर विचार कर स्थान दिया है। साधारण कसरत से शरीर की पुष्टि होती है, आसनादि से

इन्द्रिय-निरोध होता है। इस प्रकार भगवद् प्राप्ति के चार प्रमुख आध्यात्मिक मार्ग आपने बताए हैं:—कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग और ज्ञानयोग। निष्काम सेवा ही कर्मयोग है; भक्त-स्वभाव वाले व्यक्ति के लिए भक्तियोग उत्तम बताया है; रहस्यवादी स्वभाव वाले व्यक्ति के योग्य महर्षि पतञ्जलि प्रणीत राजयोग श्रेष्ठ है; और तर्कशास्त्री या दार्शनिक स्वभाव वाले व्यक्ति के लिए ज्ञानयोग ही सर्वोत्तम है। इनके अतिरिक्त मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग, कुण्डलिनी योग, संकीर्तन योग आदि भी हैं। लेकिन स्वामी जी ने मन के तीन दोषों—मल, विक्षेप और आवरण, को दूर करने के लिए उपरोक्त सभी योगों के समन्वय को जनसाधारण के लिए उत्तम बतलाया है। प्राणायाम के लिए आपने लिखा है कि यह दीर्घ जीवन का नुस्खा है; इससे श्वास की गति घटा कर जीवन-काल बढ़ाया जा सकता है।

साधारणतः स्वस्थ व्यक्ति एक मिनट में १४ से १६ बार तक श्वांस लेता है। कसरत, प्रसंग, दौड़ते या सोते हुए व्यक्ति के श्वांसों की संख्या बढ़ जाती है। कुम्भक के द्वारा श्वास रोकने से शक्ति स्वास्थ्य, बल-वीर्य तथा दीर्घ जीवन की प्राप्ति होती है। एक मिनट में श्वासों की संख्या जितनी ही कम होगी, जिन्दगी उतनी ही बढ़ जायगी। कुत्ता एक बार में ५० श्वास लेता है और लगभग १४ वर्ष तक जीता है; घोड़े के श्वासों की संख्या ३५ है और ये आमतौर पर २८—३० वर्ष तक जीवित रहते हैं। हाथी की आयु १०० वर्ष की होती है क्योंकि वह एक मिनट में २० बार श्वास लेता है। कछुआ ५ ही श्वांस लेता है तथा ४०० वर्ष तक जीवित रहता है तथा सर्प जो कि केवल २ या ३ बार ही श्वास लेता है, उसकी आयु ५०० से १००० वर्ष तक होती है। इसलिए प्राणायाम करना बहुत आवश्यक है।

महात्मा ईसा का सन्देश

शान्ति, सद्भावना और प्रेम को अपनाकर ईसा ने जनता को

जाग्रत किया। उन्होंने कहा—प्राचीन समय से कहा गया है कि विषय वासना से दूर रहो और मैं कहता हूँ कि जो एक स्त्री की ओर भोग की दृष्टि डालता है, वह तो उस वासना में लिप्त हो ही गया है। वासनामय जीवन पापमय जीवन है, यही नहीं, स्त्रियों के बारे में सोचना भी पाप है। तुम हत्या मत करो—एक पुराना धार्मिक सिद्धान्त था और ईसा ने, इससे भी आगे बढ़कर कहा कि दूसरों को गाली देना और क्रोधित होना भी गलत है। उन्होंने कहा—'यदि कोई तुम्हारे दाँये गाल पर थप्पड़ मारे तो दूसरा भी आगे बढ़ा दो; यदि कोई कानून द्वारा तुम्हारा कोट छीन ले तो उसे और कपड़े भी दे दो, कोई तुम्हें जबरन एक मील ले जावे तो दो मील और जाओ, यदि तुम से कोई याचना करता है तो उसे वह प्रदान करो, तथा दी गई वस्तु, हमेशा के लिए दी गई समझ कर, दे दो।' कितने सुन्दर उपदेश हैं ये और इन पर चल कर कोई भी नैतिकता का उच्चादर्श स्थापित कर सकता है।

स्वामी शिवानन्द कहते हैं कि विषय वासना से दूर रहना ही श्रेयस्कर है, उसके बारे में सोचना भी नहीं चाहिए और आगे बढ़ते हुए यह भी कहते हैं कि इस बारे में बातें भी न करो। आपका कथन—'एक बार के प्रसंग में ही इतनी शारीरिक शक्ति का ह्रास होता है, जितनी दस दिन तक कठोर शारीरिक परिश्रम करने में और इतनी मानसिक शक्ति का व्यय हो जाता है, जिसका उपयोग तीन दिन मानसिक श्रम में किया जा सकता था। केवल उपस्थेन्द्रिय का संयम ही काफी नहीं है, सभी इन्द्रियों को वश में करने की आवश्यकता है। स्त्री (पत्नी) का विचार ही छोड़ दो, स्त्रियाँ मातायें और बहनें भी लगती हैं।' नैतिक आचरण के लिए स्वामी जी का आदर्श तो और भी ऊँचा है। आप कहते हैं—'थप्पड़ मारने वाले की ओर दूसरा गाल ही न कर दो, बल्कि उसे सचमुच में प्यार करो। जो तुम्हें पैर से ठोकर मारता है, उसके पैर में मालिश कर दो, पैर दबाओ। तुम्हारे पर आक्रमण करते हुए कोई व्यक्ति आहत हो गया है तो उसे सहायता दो। एक बार गोस्वामी तुलसीदास

था कुछ चोर बर्तन आदि कुछ सामान चुरा ले गए तो उन्होंने चोरों का पीछा किया और मिल जाने पर यही कहा कि फलाँ स्थान पर कुछ और सामान रखा था, वह भी लेते जाओ। उन्होंने यही कहा कि सामान ले जाने से पहले मुझे जगा लेते तो मैं तब ही सब भेद बता कर तुम्हारा और लाभ कर देता। सत्य हरिश्चन्द्र ने अपना राज्य-पाट भी दे डाला और स्वयं भी बिक गया। ऐसे ही परोपकार में स्वामी जी का विश्वास है और केवल कथन में नहीं, कार्यरूप में वैसा ही वे करते हैं। दैनिक कार्य-व्यवहार में वे इन्हें अमल में लाते हैं।

ईसा ने कहा था—'अपने शत्रुओं को प्यार करो, घृणा कर देने वालों को आशीष दो, अपने घृणा करने वालों का भला करो और जो अपना काम निकाल कर तुम्हें पकड़वा देते हैं, उनके लिए भी प्रभु से प्रार्थना करो।' और स्वामी शिवानन्द का कथन है—'चाहे भूमि बंजर हो या उपजाऊ मेघ सब जगह ही वर्षा करता है। सूर्य तो सब को ही प्रकाश देता है, चाहे कोई गुणी और दयावान हो अथवा निर्दयी और निकृष्ट। इसी भाँति सब को प्यार करो।' अपने भाई से प्रेम करो, अपरिचित से प्रेम करो, अपने को हानि पहुँचाने वाले को भी प्रेम करो; साँप और बिच्छू से प्रेम करो, शेर और चीते को प्रेम करो, प्रत्येक से प्रेम करो। दूसरा क्या कर रहा है, यह न निहार कर तुम अपना कर्तव्य या धर्म-पालन करो।' स्वामी जी राग-द्वेष और घृणा को विश्व से ही मिटा देना चाहते हैं। आपकी अहिंसा कायरों की अहिंसा नहीं, गाँधी जी के शब्दों में यह वीरों की अहिंसा है। प्रेम और अहिंसा द्वारा सब पर विजय प्राप्त की जा सकती है। पीड़ित मानवता के उद्धार के लिए, ईसा हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते पर झूल गया; महर्षि सुकरात ने प्राण दे दिए, स्वामी दयानन्द ने पिसा हुआ काँच और ज़हर का प्याला पी डाला। शाक्यमुनि ने सत्य की खोज के लिए सुख-सामग्री, कामिनी और परिवार तथा विशाल राज-पाट को त्याग दिया। स्वामी शिवानन्द

भी मुख शान्ति समता के प्रसार के लिए अपनी बड़ी आय, घर और परिवार को छोड़ कर भगवान् की, नर-नारायण की सेवा में लगे हैं।

महात्मा बुद्ध की शिक्षाएँ

शाक्यमुनि, राजकुमार सिद्धार्थ ज्ञानी बन कर बुद्ध कहलाए। उन्होंने सांसारिक आकर्षण को तिलांजलि देकर निवृत्तिमार्ग को अपनाया और अपने आदर्श जीवन, त्याग व बलिदान, और प्रेमभरी शिक्षाओं से विश्व को मोह डाला तथा इतिहास में अपना नाम अमर कर दिया। वह गरीब और बीमार की सेवा करते, यही उनका धर्म था। अपने शिष्य नारायण को बुलाकर उन्होंने कहा—"मेरा अन्धानुकरण मत करो, यह पथ है और अपनी अन्तःचेतना के कहेनुसार चलो।" उपनिषदों का सार ही बुद्ध की शिक्षायें हैं। उन्होंने कहा था—'पिपासा का नष्ट करो, यह बन्धन कारक है। अष्टाग मार्ग पर चलो: उत्तम विचार व उत्तम ही कार्य करो। बेड़ियों को काट डालो, अहम् को नष्ट कर दो, निर्वाण पद की प्राप्ति होगी, वाधिसत्व बन जाओगे।' आगे कहा—'यदि कोई व्यक्ति मूर्खतावश मेरा बुरा करे तो मैं उसे स्नेह दान दूंगा, उसका सदैव भला ही करूँगा। वह जितनी बुराई करेगा, मैं उतनी ही अधिक भलाई करूँगा। मैं तो कहता हूँ कि ठीक ढँग से जीवन-यापन करो, अपने कार्य में उद्योग पूर्वक लगे रहो। जीवन, धन और सामर्थ्य नहीं, इन चीजों (धन, शक्ति, जिन्दगी) से आसक्ति तुम्हें गुलाम बनाती है।' एक बार महात्मा बुद्ध एक नवीन मठ में पधारे। वहाँ बीमारी से पीड़ित और दर्द से कराहते एक व्यक्ति पर उनकी निगाह पड़ी तथा अपने स्वागत व दूसरों को भाषण की बात भूल कर, वे उसकी सेवा में जुट गए।

स्वामी शिवानन्द भी सेवा करने के लिए उतने ही व्यग्र रहते हैं। रोगी और पीड़ित की सेवा करना अपना प्रथम कर्तव्य समझते हैं।

कुछ समय पूर्व, एक दिन आश्रम में एक वृद्ध साधू आया जिसने जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव देखे थे और व्यथित-सा जान पड़ता था। स्वामी जी उसका विशेष ध्यान रखते थे और उससे कठिन श्रम नहीं कराया जाता था। सायंकालीन प्रार्थना के समय फिर भी वह थका हुआ सा रहता, झुककर बैठता। स्वामी जी ने उसे एक खम्बे के सहारे बैठने की इजाजत दे दी और जब कभी कोई अन्य उस स्थान पर बैठ जाता तो स्वामी जी मजाक में कहते "ओ३म् स्वामी जी का सुरक्षित स्थान है!" एक दिन, एक कॉलेज का विद्यार्थी जो पास में 'रामाश्रम पुस्तकालय' के निकट ठहरा था, किसी कारणवश दैनिक कीर्तन में नहीं आया। स्वामी जी उसकी अनुपस्थिति का भान कर अपने कुटीर से पुनः लौटे और औषधालय में जाकर दवाई की खुराक तैयार की तथा उस पीड़ित साधक को खोजने चले। रात के ११ बजे थे। साधारणतः स्वामी जी सांध्यकालीन कीर्तन के बाद कुटीर से नहीं निकलते, लेकिन यह देख कर सब को आश्चर्य हो रहा था। पीड़ितों की सेवा के लिए आप हर समय तैयार रहते हैं और कोरे कहने में आपकी श्रद्धा नहीं है। बुद्ध ने कहा था—'अक्कोधेन जिने कोधं' (अर्थात् अक्रोध से क्रोध को जीतना चाहिए।) और स्वामी जी क्षमा के अवतार हैं। आप हत्यारे से भी घृणा नहीं करते; शत्रुओं के लिए भी प्रार्थना करते हैं। गाली देने वालों को भी दूध व फल देते हैं और उनके पैर दबाते हैं; घृणा के बदले प्रेम करते हैं; मानों बुद्ध की क्षमा-भावना, शान्ति और अलिप्तता ही स्वामी जी में कार्य कर रही है।

माहात्मागांधी क्या थे ?

बापू ने 'हिन्दी नवजीवन' (६ ४·१९२४) अपने बारे में एक बार लिखा था—"मैं तो एक विनम्र सत्य शोधक हूँ। मैं अधीर हूँ, इसी जन्म में आत्मसाक्षात्कार कर लेना, मोक्ष प्राप्त कर लेना चाहता हूँ। मैं अपने देश

की जो सेवा कर रहा हूँ यह तो मेरी उस साधना का एक अंग है जिसके द्वारा मैं इस पंचभौतिक शरीर से अपनी आत्मा की मुक्ति चाहता हूँ। इस दृष्टि से मेरी देश-सेवा केवल स्वार्थ साधना है। मुझे इस नाशवान ऐहिक राज्य की कोई अभिलाषा नहीं है। मैं तो ईश्वरीय राज्य को पाने का प्रयत्न कर रहा हूँ। यह है मोक्ष। अपने ध्येय की सिद्धि के लिए मुझे गुफा का आश्रय लेने की कोई आवश्यकता नहीं। मैं समझ पाऊँ तो एक गुफा तो मैं अपने साथ ही लिए फिरता हूँ। गुफा निवासी तो मन में महल को भी खड़ा कर सकता है, पर जनक-जैसे महल में रहने वालों को महल बनाने की जरूरत ही नहीं रहती। जो गुफावासी विचारों के पैरों पर बैठकर दुनिया के चारों ओर मंडराता है उसे शान्ति कहाँ? परन्तु जनक राजमहलों में आमोद-प्रमोदमय जीवन व्यतीत करते हुए भी कल्पनातीत शान्ति प्राप्त कर सकते हैं। मेरे लिए तो मुक्ति का मार्ग है अपने देश की और उसके द्वारा मनुष्य-जाति की सेवा करने के लिए सतत परिश्रम करना। मैं संसार के भूतमात्र से अपना तादात्म्य कर लेना चाहता हूँ। मैं 'सम. शत्रौ च मित्रे च' हो जाना चाहता हूँ। इस प्रकार मेरी देश-भक्ति और कुछ नहीं अपनी चिरमुक्ति और शान्ति के देश की मंजिल का एक विश्रामस्थान है। मेरे नजदीक धर्मशून्य राजनीति कोई चीज नहीं। राजनीति धर्म की अनुचरी है। धर्महीन राजनीति को फांसी ही समझिए। वह आत्मा का नाश कर देती है।"

उन्होंने १५-१-१९२५ को फिर उसी पत्र में लिखा था—"मुझे सेवा धर्म प्रिय है। इसी से भंगी प्रिय है। मैं तो भंगी के साथ बैठ कर खाता हूँ। पर आपसे नहीं कहता कि आप भी उसके साथ बैठकर खाओ, रोटी बेटी व्यवहार करो। आप से कह भी किस तरह सकता हूँ! मैं एक फकीर जैसा हूँ—सच्चा फकीर हूँ या नहीं, सो नहीं जानता। मैं सच्चा संन्यासी हूँ या नहीं, सो भी नहीं जानता। पर सन्यास मुझे पसन्द है। ब्रह्मचर्य मुझे प्रिय है पर नहीं जानता कि मैं सच्चा ब्रह्मचारी

हूँ या नहीं। क्योंकि ब्रह्मचारी के मन में दूषित विचार आते हों, वह सपने में भी व्यभिचार करने का विचार करता हो तो मैं कहूँगा कि वह ब्रह्मचारी नहीं। मेरे मुँह से यदि गुस्से में एक भी शब्द निकले, द्वेष से प्रेरित होकर कोई काम हो, जिसे लोग मेरा कट्टर से कट्टर दुश्मन मानते हों उसके खिलाफ भी यदि क्रोध में कुछ वचन कहूँ तो मैं अपने को ब्रह्मचारी नहीं कह सकता। सो मैं पूर्ण संन्यासी हूँ कि नहीं, यह नहीं जानता। पर हाँ, मैं जरूर कहूँगा कि मेरे जीवन का प्रवाह इसी दिशा में बह रहा है। ईश्वर की इच्छा हो तो मुझे बचावे अथवा मार डाले। पर मैं तो कोढ़ी की सेवा किए बिना नहीं रह सकता। "स्वामी जी ने भी वस्तुतः अब तक ऐसे ही विचारों को जनता में भरने की कोशिश की है; मानव-मात्र की सेवा के सम्बन्ध में गाधी जी और स्वामी जी के विचारों में कितना सामंजस्य है। स्वामी जी पूर्ण ब्रह्मचर्य के पक्षपाती हैं और ऐसे ही गाँधी जी भी थे। गांधी जी देशभक्ति को देश की और अपनी मुक्ति का साधन मानते थे; स्वामी जी तो आध्यात्मिक प्रसार द्वारा विश्व-मुक्ति के लिए ही प्रयत्नशील हैं, जगती के जन जन को जगाना चाहते हैं।

लाखों ही व्यक्ति बेघरबार होगए। पंजाब का यह हत्या-काण्ड अमाननीय कृत्यों में अग्रगण्य रहेगा। इस को सुन कर हमारा शिर शर्म से नीचा झुक जाता है। आज भी हजारों विस्थापित इधर उधर मारे-मारे भटक रहे हैं। केवल यही नहीं पूर्वी बंगाल में भी इस साम्प्रदायिकता ने जोर पकड़ा है और कितने ही भाई कष्ट में जीवन बिता रहे हैं।

यदि थोड़ी देर के लिए ऐसे प्रश्नों पर विचार करें कि यह सब क्यों हुआ तो एक ही उत्तर होगा—मन की मलिनता। मनुष्य ने मनुष्य के गले पर छुरा मारते हुए, भाई ने भाई का गला काटते हुए कभी यह न सोचा कि इस घोर कृत्य में वह क्यों कर प्रवृत्त हो रहा है? उसने कभी इस बात पर विचार नहीं किया कि क्या उसके विचार पवित्र हैं? क्या वह अन्दर से स्वच्छ है? उसने कभी नहीं सोचा कि वह किस ओर जारहा है? आत्म-निरीक्षण के द्वारा अपनी गति विधियों को नियंत्रित करने की ओर उसका ध्यान नहीं गया। इस जघन्य कर्म से बचने का एक ही साधन था और है। स्वामी शिवानन्द के शब्दों में 'अपने मन को वश में करो।"

स्वामीजी कथन है कि मन को शुद्ध और पवित्र बना लिया जाय तो विचार तथा कार्य भी फिर स्वयमेव शुद्ध और पवित्र बन जायेंगे। इस मन की परिभाषा स्वामीजी ने निम्न प्रकार की है—'बहुत से मनुष्य मन का अस्तित्व और इसकी क्रियाओं को नहीं जानते। शिक्षित कहे जाने वाले लोग भी मन के विषय में, इसके स्वभाव और कार्यों के विषय में बहुत थोड़ी जानकारी रखते हैं। पाश्चात्य चिकित्सक मन के एक अंश को ही जानते हैं। मन कोई स्थूल पदार्थ नहीं है जो देखा या स्पर्श किया जा सकता है। इसका परिमाण (नाप तौल) भी नहीं बतलाया जा सकता। इसके रहने के लिए स्थान की भी आवश्यकता नहीं है। इसके स्वभाव और स्वरूप का

भली प्रकार ज्ञान हुए बिना इसका संयम नहीं किया जा सकता। ऊँचा विचार मन को रोकता है और नीच विचार मन को भड़काता है।'

'मन आत्म-शक्ति है। मन के द्वारा ब्रह्म अनेक प्रकार की सृष्टि में प्रकट होता है। मन विद्युत शक्ति है। मन संस्कारों का समुदाय है। यह स्वभाव की गठरी है। अनेक पदार्थों के सग से उत्पन्न हुई इच्छाओं का समूह मन है। सांसारिक चिन्ताओं से पैदा होने वाले अनुभवों का समूह मन है। ये इच्छाएँ, विचार और अनुभव नित्य बदलते रहते हैं। कुछ पुराने विचार, इच्छाएँ और अनुभव मन से जाते हैं और नए-नए आते रहते हैं। परन्तु यह परिवर्तन मानसिक क्रियाओं के समभाव में अन्तर नहीं आने देता। मन का असली स्वरूप वासनाएँ हैं। मन का बीज अहंकार है और अहंकार की जड़ बुद्धि है। जैसा कि छान्दोग्य उपनिषद् में कहा है—डोरी से बंधा हुआ पक्षी इधर उधर उड़ने के बाद और विश्राम का कोई स्थान न पाकर फिर उसी जगह लौट आता है, जहाँ वह बंधा हुआ है। इसी प्रकार मन सब और घूमने के बाद विश्राम का कोई स्थान न पाकर प्राण का आश्रय लेता है। निश्चय ही प्राण मन के बांधने की डोरी है।' विशेष जानने के लिए श्री स्वामीजी लिखित पुस्तकें—"मन और उसका निग्रह" (दो भाग) पढ़नी चाहिए।

मनोनिग्रह के उपाय

स्वामी जी ने हमारे राष्ट्र की उन्नति के लिए यह आवश्यक बतलाया है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको सब प्रकार से उच्च बनावे। इसके लिए आध्यात्मिक उन्नति अत्यावश्यक है और इसके लिए मन का निग्रह किया जाना जरूरी है। आपने मनोनिग्रह के लिए सात बातें बतलाई हैं—(१) आपको सारी कामनाओं, वासनाओं और तृष्णाओं

से रहित होना चाहिए। (२) आपको अपनी भावनाओं, क्रोध और अधीरता का संयम करना चाहिए। (३) आपको मन का संयम करना चाहिए जिससे विचार शान्त और उद्वेग रहित हों। (४) मन के द्वारा आपको नाड़ियों का संयम करना चाहिए कि वे कम से कम उत्तेजित हों। (५) आपको अभिमान का त्याग कर देना चाहिए। निराभिमानी बनने से ही आलोचना और आक्षेप का असर न होगा। (६) आपको सारी ममताओं का कठोरता से नाश कर देना चाहिए। (७) आपको सारी आशाओं और पक्षपातों का त्याग कर देना चाहिए।

क्रोध के भाव को मिटाने के लिए क्षमा, धैर्य, सहिष्णुता, दया, विश्व प्रेम और निरभिमानिता आदि गुणों को अपनाना चाहिए। क्रोध का भाव चले जाने के बाद थोड़ी अधीरता बची रहती है, इसको भी नष्ट करना आवश्यक है। सब से प्रेम और दया का व्यवहार करो। दया दुःख निवारण का उपाय ढूँढ निकालती है। किसी को कष्ट पाता हुआ नहीं देख सकती, किसी को चोट नहीं पहुँचाती और जो दुःखग्रस्त हैं, उनकी आवश्यकताओं को देखती रहती है। संशय नष्ट करना भी आवश्यक है। संदेहों का अन्त नहीं होता। ये मनुष्य को बारम्बार दुःख देते हैं। यदि एक संशय दूर कर दिया जावे तो दूसरा इसका स्थान लेने को तैयार रहता है। यह मन का धोखा है।

मन की एकाग्रता के लिए द्वेष को दूर करो। जिस मनुष्य से द्वेष हो उसकी सेवा करो। आपके पास जो वस्तु हो, उसमें से उसको भी हिस्सा दो उसको कुछ चीज खाने को दो। उसकी टांगें दबाओ। सच्चे हृदय से प्रणाम करो, द्वेष दूर हो जायगा। वह व्यक्ति भी आपसे प्रेम करने लगेगा। उपहार और मधुर शब्दों से उद्धत मनुष्य भी वश में हो जाते हैं। जब कभी द्वेष प्रकट हो तो प्रेम के मधुर परिणाम का विचार करो, धीरे धीरे द्वेष जाता रहेगा। जब आप अपने शत्रु की

बात सोच रहे हो, यदि अपने प्रति किए गए उसके अपराधों का स्मरण करोगे तो मन में द्वेष ही उत्पन्न होगा। इसलिए आपको उसके प्रति बारम्बार प्रेम का चिन्तन करके द्वेष-भाव को निकाल देना चाहिए। बारम्बार कल्पना करो कि वह आपका प्रेमी, मित्र है और प्रयत्न-पूर्वक उसके प्रति प्रेम की प्रबल धारा उठाओ। 'भक्त विजय' में लिखी हुई पवहारी बाबा की और गीत गोविन्द के रचयिता पंडित जयदेव का कथा याद करो, जिसने अपने हाथ काट देने वाले शत्रु डाकू के लिए मोक्ष की हार्दिक प्रार्थना की थी।

इस प्रकार स्वामी जी के जीवन व दर्शन से शिक्षा लेकर तथा पत्रों से अनुप्राणित हो कर अनेक व्यक्तियों की जीवन-चर्या ही पलट गई। स्वामी जी की व्यावहारिक शिक्षाओं को अपना कर उन लोगों ने अपने दुर्गुणों को त्याग दिया। राष्ट्र व्यक्तियों से बना है और यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको सुधारने में लग जाय तो राष्ट्र को सुधरते देरी न लगेगी। इसीलिए स्वामी जी व्यक्तिगत आचरण पर बहुत जोर देते हैं। जैसा कि हम कह चुके हैं अनेकों ने अपने जीवन को सुधारा है तथा दूसरों को सदाचरण के मार्ग पर चलने के लिए उत्साहित कर रहे हैं।

संन्यासी-संगठन

अपने गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस से दीक्षा लेकर स्वामी विवेकानन्द ने एक नई परम्परा का सूत्रपात किया और वह था—ऐसे साधू व सन्यासियों को दीक्षित करना, जो जनता जनार्दन की सेवा कर सकें तथा साथ-साथ आध्यात्मिकता का उच्च संदेश सब को सुना सकें। यही कारण है कि आज भी रामकृष्ण विवेकानन्द मिशन दुनिया के प्रत्येक कोने में मानवता का प्रसार कर रहा है। लेकिन रामकृष्ण-मिशन के मुट्ठि भर साधुओं को यदि छोड़ दें तो भी लाखों की संख्या में निठल्ले

साधु-संन्यासी इस देश में भरे पड़े हैं और उनकी संख्या में बढ़ोत्तरी का एक मात्र कारण है—अकर्मण्यता। जब मुफ्त में खाने-पीने को मिल जाय और अन्ध श्रद्धालु जनता से सुलफा, गाँजा, चरस आदि मादक पदार्थ दम लगाने को मिल जायँ तो किसे देश, जाति व समाज की चिंता होगी। और यही कारण है कि अधिकांश साधु भगवा तो पहन लेते हैं लेकिन अपनी चंचल वृत्तियों के कारण समाज के अहित में ही लगे रहते हैं। ऐसे ढोंगी साधुओं की संख्या आज काफी है।

यही कारण है कि स्वामी जी घर पर रह कर ही दीन-दुखियों की सेवा, साधना और संभव हो सके तो योगाभ्यास करने के लिए कहते हैं। लेकिन आपका कथन है कि वैराग्य की भावना तीव्र हो तो घर का त्याग किया जा सकता है और वह इसलिए कि अधिक योग्यतापूर्वक समाज की भलाई की जा सके। स्वामी जी का कथन है कि जिस माता-पिता के ६ बेटे हों, यदि वे उनमें से एक को संन्यासी बनावें और गृहस्थ के चक्कर में न डालें तो अच्छा ही होगा। अर्थात् उनमें से यदि किसी एक की प्रवृत्ति अध्यात्म की ओर हो और वह क्रियात्मक साधना द्वारा अपने को योग्य बनाकर समाज सेवा में लगना चाहता है तो उसके मार्ग में बंधन न बनें। इस प्रकार स्वामी जी ने अपने शिष्यों को दीक्षित करते समय यह भलिभाँति देखा है कि वे सब प्रकार योग्य हैं और किसी एक उत्तेजना के वश हो कर संन्यास तो नहीं ले रहे हैं। आप भली प्रकार परीक्षा करके ही शिष्य बनाते हैं तथा दीक्षित होने पर समाज के उपकार के लिए तैयार करते हैं। वह संन्यासी प्रेम और अध्यात्म का संदेश लेकर शान्ति व सद्भावना का प्रसार करता है। वह अपने आपको दुर्गुणों से बचाता हुआ, दूसरों को दुर्गुणों से बचने के लिए प्रेरित करता है।

स्वामी जी ने अपने साधनाकाल में ही (स्वर्गाश्रम में रहते हुए) साधुओं के सम्मान की रक्षा के लिए अथक प्रयत्न किया था। अन्नक्षेत्रों

में साधू पंक्तियाँ बांधे खड़े रहते और उन्हें भीखमंगे की भांति समझा जाता था। आपने अपने शुभ कार्यों द्वारा बतला दिया कि साधू केवल पेटपूर्ति के लिये नहीं बना जाता, वरन् इसका ध्येय ऊँचा होता है। वह सोये हुए मानव को जगाता है, दुखियों-पीड़ितों की सेवा करता है और शुभ कर्मों में प्रवृत्त होने की सबको प्रेरणा देता है। इस लिए आपने कहा कि सच्चे साधू बनो। लोकसंग्रह की भावना लेकर जीने का आवाहन करते हुए, मानवता की सेवा में सन्नद्ध होने के लिए स्वामी शिवानन्द ने "अखिल विश्व साधु सम्मेलन" का सन् १६४६ में उद्घाटन किया। इस तरह विश्व-बन्धुत्व और विश्व-कल्याण की भावना लेकर तथा आध्यात्मिकता के प्रसार और युद्ध-क्लांत विश्व को आपने शान्ति का संदेश दिया था। इसी प्रकार आपने 'अखिल विश्व धर्म संगठन' के लिये भी दिसम्बर सन् १६४५ में एक विशाल आयोजन किया था। संसार के सभी धर्मों में एक शिक्षा समान रूप से पाई जाती है और वह है—मानवता। स्वामजी इसी के प्रचारक हैं और प्रस्तुतः यही भारतीय संस्कृति का मूल भूत सदेश भी है।

सांस्कृतिक संवर्द्धन

स्वामी जी के भक्तों में अधिकांश डाक्टर, वकील, शिक्षक आदि पेशेवाले लोग हैं। शिक्षित वर्ग को आपने अपनी ओर आकृष्ट किया तथा उसको आपने भारतीय संस्कृति सम्मत मार्ग दिखाया। आपने उच्च विचारों को व्यवहारिक जीवन में अपनाने के लिए कहा और यही कारण है कि अनेकों डाक्टर गरीबों की सेवा प्रेम से मुफ्त में करते हैं, वकील सच्चे मामले ही लेते हैं और शिक्षक सचाई के साथ अपने कार्य में लगे हैं। स्वामी जी का संदेश इसी प्रकार क्रियात्मक ढंग से सर्वसाधारण के पास पहुंचा है। इस तरह आपने न केवल भारतवासियों का ही सही पथ-प्रदर्शन किया है बल्कि भारत के बाहर भी लोग अधिकाधिक संख्या

में इससे प्रभावित हुए हैं। आपने अपनी पुस्तकों, पत्रिकाओं तथा पत्र-व्यवहार द्वारा उनमें एक नवीन भावना भर दी है, जो कि पाश्चात्यों के लिए बिलकुल नवीन और प्रेरणाप्रद है।

जैसा कि हम पूर्व ही लिख चुके हैं, स्वामी जी ने अपने १०० से ऊपर ग्रन्थों में भारतीय संस्कृति के सन्देश को सर्वसाधारण के लिए सरल, सीधी सादी भाषा में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार देशवासियों को अपने धर्म, संस्कृति, योग और वेदान्त से परीचित होने का अभूतपूर्व अवसर मिलता है। स्वामी शिवानन्द ने "योग वेदान्त कोष" संकलित कर साहित्य की विशुद्ध सेवा की है। पाश्चात्य साधकों के लिए यह पुस्तक अमृत समान ही है। इसमें वेदान्तिक शब्दों को नागरी लिपि व रोमन लिपि में लिख कर, सरल अंग्रेजी में शब्दार्थ भली भाँति समझाया गया है। स्वामी जी के अन्य ग्रन्थ भी बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि कोरे तर्क और विद्वत्ता पर नहीं प्रत्युत प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर उनकी सृष्टि हुई है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि स्वामी शिवानन्द का सन्देश युग-युगान्तर तक जीवित-जाग्रत रहेगा, क्योंकि उसके पीछे भारतीय संस्कृति का सुदृढ़ सम्बल और आधार है; वह क्रियात्मक है; उसमें मानवता की शुभ सेवा का सन्देश निहित है। यह सन्देश पीड़ित विश्व के लिये एक सहारा है और आज उसका प्रत्यक्ष प्रभाव चहुँ ओर स्पष्ट दृष्टि गोचर हो रहा है। जिसने साधना की, उसने फल पाया। जो स्वामी जी की शिक्षाओं के अनुसार आचरण करेगा, उसका जीवन धन्य होगा; वह जीवन में सफलता प्राप्त करेगा; सुख और शान्ति को प्राप्त करके इन्हें दूसरों में बाँट सकेगा।

अष्टादश अध्याय

विदेशों मे स्वामी जी का कार्य

विदेशी साधक

हम पूर्व ही लिख चुके हैं कि स्वामी शिवानन्द ने अपने जीवनादर्श द्वारा देश ही नहीं विदेश के लोगों को भी प्रभावित किया है। आज पृथ्वी पर ऐसा कोई देश नहीं, जहाँ कुछ-न कुछ आप के भक्त या साधक न हों। यह सच है कि विदेशियों को यह प्रेरणा मूलत आपकी कृतियों से मिली है। अनेक विदेशियों ने आपके ग्रथों को पढा है और वे

आध्यात्मिक जीवन की ओर झुके हैं। विदेशों में आज भौतिकवाद अपनी चर्म सीमा पर पहुँच चुका है इसलिए वहाँ के अधिकांश निवासी आधुनिकता से घबरा उठे हैं और अपने जीवन में प्रेरणा के लिए पूर्व की ओर देख रहे हैं। यही कारण है कि विदेशी साधक खर्च करके यहाँ स्वामी जी के आश्रम में आकर ठहरते हैं और योग-साधना का पाठ पढ़ते हैं; जिसमें जीवन का संदेश निहित रहता है। विदेशी लोग बड़े प्रेम से आसन, प्राणायामादि क्रियायें करते हैं और थोड़े ही अभ्यास से इसमें अभिरुचि जागृत हो जाती है।

यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि विदेशों में अब योग के प्रति अधिकाधिक रुचि बढ़ती जा रही है। स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ ने योग और वेदान्त का सन्देश पश्चिम को सुनाया था। इस युग में स्वामी जी ने उस कार्य को और आगे बढ़ाया है। यौगिक कसरतों के जरिए, स्वास्थ्य को उन्नत किए जाने का सिद्धान्त अब सर्वमान्य हो चुका है। हठयोग और कुण्डलिनी योग मानसिक एकाग्रता के सोपान हैं। लेकिन स्वामी जी की 'दैनिक जीवन में योग' परिभाषा ने विदेशियों को अधिक आकृष्ट किया है। चूँकि स्वामी जी ने निष्काम कर्मयोग के सन्देश को गुंजारित किया है, यह अत्यन्त प्रभावशाली है। मानव-जीवन को सुधारने का यह सरल, सुगम पथ है। स्वामी जी के सामंजस्य-वादी योगी होने के कारण पाश्चात्यों को धैर्यपूर्वक, इस पथ पर आगे बढ़ने के लिए एक योग्य प्रदर्शक मिला है।

हैरी डिकमेन की लगन

पाश्चात्य साधकों में सभी अवस्थाओं के लोग हैं—२० वर्ष से लेकर ७० तक के तथा स्त्री और पुरुष दोनों ही। उन लोगों की लगन सराहनीय है। श्री हैरी डिकमेन को स्वामी जी लिखित पुस्तक "कुण्डलिनी

योग" इतनी पसन्द आई कि उन्होंने लटवियन भाषा (लटविया-यूरोप में बोली जाने वाली भाषा।) में उसका उल्था कर डाला और वैसे ही नक्शे, चित्रादि भी परिश्रमपूर्वक बना कर, सारी पुस्तक टाइप में छाप ली। यह छापे में इसलिए न छप सकी, क्योंकि गिर्जे के द्वारा ईसाई धर्म से अतिरिक्त धार्मिक पुस्तकों के छापने पर वहाँ प्रतिबन्ध है। परिश्रमपूर्वक तैयार की गई इस पुस्तक की दो प्रतियाँ, दिव्य जीवन-मण्डल के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं, जो इस व्यक्ति की लगन पर पर्याप्त प्रकाश डालती हैं।

हेरी डिकमेन उन यूरोपियों में हैं, जो दिव्य-जीवन-मण्डल के स्थापना-काल में ही स्वामी जी के सम्पर्क में (पत्र-व्यवहार द्वारा) आये। उन्होंने अपने एक पत्र में स्वामी जी की अद्भुत कर्तृत्वशक्ति पर लिखा था कि एक ही व्यक्ति ज्ञान, भक्ति और वेदान्त पर लिखे तथा साथ ही रामायण-महाभारत भी, श्रीकृष्ण की लीलाओं, शिवपूजा और औषधियों पर भी, तथा दर्शन, योग और उपासना पर भी अमूल्य ग्रंथ लिखे, यह वास्तव में चमत्कार है। लटविया में रहकर उन्होंने ५ वर्षों तक दिव्य-जीवन-मण्डल का कार्य सुचारू रूप से संगठित व संचालित किया था। उसके बाद वे जर्मनी आगए। वहाँ से उन्होंने एक पत्र में लिखा था।—

"लटविया में सभी प्रकार के योग—हठ, राज, कुण्डलिनी और ज्ञानयोग का शिक्षण दिया जाता था और आसन, बंध, मुद्रा, नौली, आदि क्रियाओं का प्रदर्शन होता था। अनेक रोगी जिनको डाक्टरों ने असाध्य करार दिया था, यौगिक क्रियाओं से बिलकुल स्वस्थ हो गए और इस प्रकार जिन्हें ईश्वर व आत्मा में विश्वास न था, पक्के विश्वासी भी बन गए।

स्वामी शिवानन्द जी की विशेषता यह है कि वे साधक को उसी के अनुकूल योग्य हिदायतें देते हैं और अपने गहरे ज्ञान से सब को लाभान्वित करते हैं। उन्होंने यूरोप के अनेक साधकों को शरीर, मन और आत्मिक रोगों से छुटकारा पाने का उपाय बताया है। स्वामी जी देवी पुरुष हैं, जो भारत के साधकों का पथ-दर्शन करते हुए, पत्रों में इतना लिखकर और पुस्तकें लिखते हुए, विदेशी साधकों को भी मार्ग दिखलाते हैं।"

श्रीमती अन्ना ग्लाडिस

दिव्य-जीवन-मण्डल की रीगा (लटविया) शाखा की उत्साही कार्य-कर्त्री प्रारम्भ से ही श्रीमती अन्ना ग्लाडिस रही हैं और वहाँ इस संस्था के उद्देश्यानुकूल महिलाओं में बहुत कार्य उनके द्वारा सम्पन्न हुआ है। कहाँ गङ्गा का किनारा और कहाँ बलगेरिया हजारों मील का फासला है, किन्तु वहाँ भी द्वादशाक्षर मंत्र का जप होता है। रीगा की महिलायें सात्विक जीवन के लिए प्रयत्नशील हैं। स्वामी जी की वेदों की व्याख्या उन्हें अच्छी लगती है, क्योंकि आप ईसाई धर्म को बुरा नहीं बतलाते, किसी धर्म को बुरा नहीं कहते, सब धर्मों को आदर की दृष्टि से देखते हैं और निष्कलंक, दिव्य जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देते हैं। अन्ना ग्लाडिस ने एक बार यही लिखा भी था। उन्होंने स्वामी जी की विशतियों और पुस्तिकाओं को अपनी भाषा में अनूदित कर प्रकाशित किया तथा इस प्रकार सत्य, अहिंसा, साधना, शुद्धि के प्रसार में बहुत योग दिया है।

कतिपय महिला शिष्यों व साधिकाओं के नाम हम पूर्व ही दे चुके हैं जिन्होंने स्वामी जी के मिशन में बहुत सहयोग दिया है और दे रही हैं। वोरसेस्टर (इंगलैण्ड) की श्रीमती वाइलेट टॉयड तथा अम्मगर-ब्रोगेट (डिनमार्क) की श्रीमती एल्व फ्रोयसे के उत्साही कार्यकर्त्री तथा

भक्त हैं। श्रीमती मार्गरेट तो लिखती हैं—"योग में मेरी विशेष अभिरुचि है। मैं डा० शिवानन्द के योग स्कूल में अध्ययन करती हूँ। डा० शिवानन्द स्वामी जी के भक्त हैं। यह स्कूल इस पुनीत विषय के अध्ययन, शिक्षण का (जिसकी आज के मानव को सर्वाधिक आवश्यकता है।) एक सुन्दर केन्द्र है।"

महिलाओं में लन्दन की श्रीमती लीलियन ग्रामेस स्वामी जी के संदेश व कार्य को आगे बढ़ा रही हैं। कुछ साल पूर्व, वे आश्रम में आकर अतिथि भी रही थीं और योगासनादि की शिक्षा भी ली थी। आसन वे बहुत भली प्रकार कर लेती हैं। शिवानन्दाश्रम के अन्य साधकों के साथ आसनादि करते हुए उनके चित्रों की एक फिल्म भी बनाई गई है। उन्होंने आध्यात्मिकता की खोज में अपने पति के साथ विश्वभ्रमण भी किया है। केलिफोर्निया (अमेरिका) से एक पत्र में उन्होंने लिखा था—"स्वामी जी के आध्यात्मिक संसर्ग में व्यतीत किए गए दिवसों की स्मृति कभी भुलाई न जा सकेगी। वास्तव में उन्होंने मुझ में अत्यन्त परिवर्तन कर दिया और आज मेरा व्यक्तित्व निखर उठा है। उनकी शिक्षाओं और सद्भावनाओं के लिए मैं आभारी हूँ। मैं अब सर्वत्र ईश्वर के दर्शन करती हूँ और इससे मुझे सदैव प्रसन्नता का अनुभव होता। मुझे विश्वास है कि अब मैं दिनोंदिन, भगवत्कृपा और स्वामी जी के शुभ विचारों से, उन्नति करती जाऊँगी। मैं प्रातः, मध्याह्न और सायं स्वामीजी की बताई हुई प्रार्थना करती हूँ और ॐ ॐ ॐ का जप भक्ति से करती हूँ। स्वामीजी के रिकार्ड बजा-बजा कर सामीप्य अनुभव करती हूँ। गंगा के पवित्र जल में किए गये स्नान भी सदैव स्मरण रहेंगे। श्रीमती ग्रामेस ने बृहदाकार लगभग १८० पृष्ठों की आर्ट कागज पर छपी एक पुस्तक "स्त्रियों के प्रकाश एवम् प्रदर्शक" (Women's Light and Guide) भी सम्पादित की है, जिसमें चार खण्डों में पूर्व और पश्चिम की महिला

साधिकाओं द्वारा स्वामी शिवानन्द के गहन व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है। इससे उनकी भक्ति-भावना का पता चलता है; उन्होंने आश्रम में एक कुटिया भी बनवाई है।

आस्ट्रेलिया में प्रभाव

प्रायः सभी महाद्वीपों तथा देशों में स्वामीजी की पुस्तकों व पत्र-पत्रिकाओं द्वारा उनका नवीन संदेश फैला है और यह क्रमशः प्रगति कर रहा है। लोगों के दिल और दिमाग पर यह असर करता है। तथा वे इस पथ पर चलने के लिए व्याकुल हो उठते हैं। समस्त विश्व से साधकों के पत्र आश्रम में प्राप्त होते हैं और वे स्वामी शिवानन्द से कर्तव्य-पथ पर आरूढ़ होने के लिए प्रेरणा ग्रहण करते हैं।

बुन्दानून (न्यू साउथ वेल्स) स्थान के ६५ वर्षीय श्री जॉन एम० शॉर्ट लिखते हैं:—"आप के लेख व पुस्तकादि पढ़ कर मैं अपने को आपके समीप अनुभव करता हूँ। मुझे आशा है कि इस अवस्था में भी आप के चरणों में बैठकर मैं बहुत कुछ सीख सकूंगा। जब मैं सोचता हूँ कि मुझे सत्य और आत्म-ज्ञान की आवश्यकता है तो मैं 'भारत' की ओर ताकता हूँ और दिव्य-जीवन-मंडल के पास मानसिक भोजन मुझे प्राप्त होता है।........आप कितने प्रेम से पत्र लिखते हैं और मुझ जैसे व्यक्ति के सुधार एवं प्रसन्नता में रुचि लेते हैं। मैं आपको लिखना तो चाहता हूँ किन्तु जब लिखने बैठता हूँ—अश्रुधारा फूट पड़ती है। आप शुभमूर्ति हैं, जो मुझे इतनी पुस्तकें भेजते हैं। रात-रात भर मेरी आध्यात्मिक दावत इन्हें पढ़कर होती है। आपका १८ दिसम्बर १९४७ का पत्र कल ही मिला; 'दिव्य-जीवन' पत्रिका भी। आप तो गुह्यात्मा ज्ञानी हैं और प्रेम के भूखे हैं। भगवान् करे, मैं आप से निःस्वार्थ प्रेम और अन्यों की भलाई का पाठ पढ़ सकूं। आपने टूटे हुए दिल में जान डाल दी है।

श्री एस०एल० पोलक लन्दन

लन्दन से श्री पोलक ने स्वामी शिवानन्द के लिए लिखा था, पाठकों की सुविधा के लिए यहाँ उद्धृत कर रहे हैं:—श्री स्वामी जी महाराज द्वारा सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में जो सेवाएँ की गई हैं, उनका मेरी निगाह में बहुत मान है। प्रधानतः, मेरा विश्वास है कि उनका सर्वोच्च सन्देश भारतीय युवकों के लिए भ्रातृत्व, विशाल दृष्टिकोण व सहृदयता का है। भारत का उज्ज्वल भविष्य उन्हीं पर आधारित है, आधुनिक जीवन पर सत्य के प्राचीन सिद्धान्तों को लागू करके उन्हें अनुप्राणित करने की आवश्यकता है और इस प्रकार वे एक नवीन विश्व के लिए अमूल्य निधि साबित होंगे। आध्यात्मिक शिक्षाओं का लोगों के दैनिक जीवन में क्रियात्मक व्यवहार होना आवश्यकीय है। स्वामी जी महाराज ने इसके लिए भारतीय युवकों को जो आवाहन किया है, प्रशंसनीय है और भगवान् करे, उसमें सफलता प्राप्त हो।"

श्री विलियम अटकीन्स (इंग्लैण्ड) ने एक पद्य में अपने भावों को निम्न भांति व्यक्त किया है:—

"Awakening from their dreamless sleep,
Yogis arise——Brahmacharya do keep.
Washing their souls with Namasivaya,
Point on the fore-head the Tilak of Siva.
Padmasana, Siddhasana or any comfortable pose
With straightened spines, neck upright, and
Into the Lord's arms they gently go.

Our Guru—Swami Sivananda by name
Helps us to keep our mind in flame.

By bestowing on us the Glory of Ram
Ram, Ram, Ram, he readily prescribes
To those sincere students, as he describes
Are worthy of the Yogic Nam (Name)

Keep up Brahmacharya some of us do
That makes us veritable Yogis too
Stand up! Gird up thy lions—hear Swamiji say,
Be ever vigilent, in celibacy you will fail nay,
The reading of Gita, Ramayan and books of its kind
Will enable the students to control the mind

Live aloof from the worldly folk,
These cursed wretches, who laugh and joke,
If thou art humble, Nishkamya'll arise
To serve humanity, becomes the most treasured prize
Repetition of Gayatri or Ishta Devata's name,
Helps the Yogi to overcome wicked thoughts of fame.

O, Kaivalya, your existence to me is far away
Because I commit sins day by day
But by Yoga, I will endure
To reach Thee some day, I am sure

Evening prayers, Japa I repeat
Before retiring to His Lotus Feet,
I prostrate, fall, my sins to declension
To ask forgiveness is my intention
OM! Prostration to thee, Sad Guru

(अर्थात्—योगी ब्रह्मचर्य का पालन करके, किसी योग्य आसन पर बैठ कर ध्यान लगाते हैं। हमारे गुरू स्वामी शिवानन्द जी हमें राम नाम

की महिमा बताकर मानसिक विजय का मार्ग बताते हैं। स्वामी जी कहते हैं कि ब्रह्मचर्य पालन के लिए लंगोटी लगाओ और सदैव सावधान रहो; मन पर संयम के हित गीता, रामायण या ऐसी ही पुस्तकों का स्वाध्याय करो। संसारी व्यक्तियों से दूर रहो; प्रसिद्ध के मूर्ख मार्गों को गायत्री या इष्टमंत्र के जाप से हटाओ। विनम्र बनो, निष्काम सेवा करो और यही सबसे बड़ा पारितोषिक है। पाप करने वाले व्यक्ति से कैवल्य बहुत दूर है और योग साधना ही सहज मार्ग है। संध्या-प्रार्थना, पाद-पद्मों में झुकने से पूर्व—जप और पाप-निवृत्ति के लिए क्षमा-याचना उचित है। सद्गुरु के चरणों में प्रणाम)।

डा० होलसिंज (स्काटलैण्ड) ने अपने एक पत्र में लिखा था—"आप सबके मध्य दो दिन ठहरने की अनुमति पाकर वास्तव में मैं बहुत हर्षित हुआ। आपकी शिक्षानुसार जीवन-यापन करने की मैं भरसक चेष्टा करूँगा; चाहे प्रगति मन्द हो या प्रारम्भ में सफलता न ही मिले—मैं निराश न होऊँगा। आपके सदय शब्द सदैव मुझे स्मरण रहेंगे और विशेष कर अस्पताल में कार्य करते हुए। भगवान् करे आप स्वस्थ रहें और आपका मिशन दिन प्रतिदिन उन्नति करता रहे तथा सदैव आपसे मेरा सम्पर्क बना रहे।" इसी प्रकार कोलोन (जर्मनी) से श्री हैंज वाश्र-लौट लिखते हैं:—"शब्दों में शक्ति नहीं है कि वर्णन कर सकें—मैंने श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की पुस्तकों से कितना लाभ उठाया है। मैं भारत के आगे श्रद्धा से नतमस्तक हूँ, जिसने विश्व के लिए जीवन-दर्शन का ऐसा महापुरुष उत्पन्न किया।"

एक रूसी भक्त

श्री बोरिस सचारो जन्म से एक रूसी हैं जो पिछले कितने ही वर्षों से जर्मनी में रह रहे हैं। आप स्वामी जी के प्रारम्भिक साधकों में हैं।

आपने योग की शिक्षा प्राप्त की है और इस दिशा में पति-पत्नी अग्रसर हैं। विगत महायुद्ध के दिनों में आपको हिटलर की सरकार ने कैदी बना दिया था तथा इस प्रकार के प्रचार-कार्य पर प्रतिबन्ध लगा दिया था; लेकिन फिर भी आप किसी-न-किसी प्रकार अपने उद्देश्य की पूर्ति करते ही थे। आप ही के पुनीत उद्योग से जर्मनी के ५० से ऊपर शहरों में दिव्य-जीवन-मण्डल की शाखाएँ सन् १९४६ में खुली हुई थीं और तब से यह कार्य निरन्तर प्रगति करता रहा है।

नूरेम्बर्ग (जर्मनी) से विनफरेड इगर्ट ने लिखा है—"लड़ाई के दिनों में जब मुझे अमेरिकन केम्प में एक कैदी के रूप में रहना पड़ा और उस काल में मेरे ख्यालातों में परिवर्तन हुआ। मेरे प्रोटेस्टेंट विचार (वंशानुगत थे) बदल गए और ६ सालों की घृणा मारकाट ने मुझ में यह इच्छा जाग्रत कर दी कि अदृश्यशक्ति के क्षेत्र को पहचानने की चेष्टा करूँ। इस प्रकार हिन्दू दर्शन शास्त्र से मैं परिचित हुआ। ३ वर्ष पूर्व मुझे श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज का परिचय श्री बोरिस सचारो द्वारा मिला और मुझे योगाभ्यास का अवसर मिला।

उस समय से स्वामी शिवानन्द जी मेरे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पथ-दर्शक के रूप में रहे हैं। उन्होंने मेरी सारी शंकाओं का निवारण किया, जीवन का असली उद्देश्य बताया और मेरे दैनिक—क्रम में क्रांतिकारी प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा। उनके प्रति सीमाहीन कृतज्ञता प्रकट करना बदले में कुछ नहीं के बराबर है। मैंने तो अपना जीवनादर्श स्वामी जी और महात्मा गांधी को बनाया है। स्वामी जी भगवद्गीता में वर्णित स्थित-प्रज्ञ ब्रह्म हैं।

स्वामी जी की पुस्तक 'योग के क्रियात्मक पाठ' से मुझे बहुत सहायता मिली है। इसमें बड़े वैज्ञानिक ढंग से सर्वसाधारण के लिए, विषय

पर विशद प्रकाश डाला गया है। उनकी पुस्तकें यहाँ यूरोप में तो अमूल्य ही हैं क्योंकि ऐसी सारगर्भित पुस्तकें यहाँ मिलना दुर्लभ है। स्वामी जी ने पुस्तकों में योग और हिन्दू धर्मशास्त्रों का निचोड़ ही भर दिया है।"

अमेरिका में प्रभाव

श्री मोर्टन अलेक्जेण्डर (सम्पादक "ह्यूमेनिटी," केलिफोर्निया) ने स्वामी जी के लिए 'अन्धकार में प्रकाश' का सम्बोधन करते हुए लिखा है—"एक अन्धेरा घर स्वमेव ही प्रकाशित नहीं हो सकता जब तक कि किसी यंत्र द्वारा या बिजली का बटन दबाकर रोशनी न की जावे। बटन दबाते ही सारा मकान जगमगा उठता है; खिड़की-द्वार से भी प्रकाश-किरणें बाहर फूट पड़ती हैं। इसी प्रकार सुदूर पश्चिम में दिव्य-जीवन-मण्डल-गृह से प्रकाश की कतिपय किरणें श्री स्वामी शिवानन्द जी द्वारा पहुँची, और चमक उठी हैं।

हमारी भौतिक सभ्यता के अन्धकार को दूर करने में इस प्रकाश से मदद मिल रही है, यह हम हर्ष के साथ कह सकते हैं। अब तक विभिन्न वस्तुओं के संचय में ही और आमोद-प्रमोद में ही, सुख व शान्ति के झूठे इन्द्रधनुष के दर्शन करते थे लेकिन अब हजारों व्यक्ति सत्य को पहचानने के लिए व्यग्र हो उठे हैं और यह अनुभव करने लगे हैं—कि सुख भोग में नहीं त्याग में है।.........चूँकि जीवन वस्तुतः एक है और परम पिता व समग्र सन्तान एक हैं तो हम कैसे कह सकते हैं कि कोई अच्छा है, कोई बुरा; जीवन के कुछ रूप ऊँचे हैं और अन्य नहीं। जीवन ही परमात्मा है और परमात्मा ही जीवन है और सब एक हैं तो मनुष्य का सर्वोच्च कार्य यही है कि आत्म-साक्षात्कार की ओर अग्रसर हो।"

डा० जुडिथ टीवर्ग एम० ए०, पी० एच० डी० (केलिफोर्निया) लिखते हैं—"मेरे पिता के घर में कई खण्ड हैं (In my Father's house are many mansions)—यह बाइबिल का एक वाक्य है और इसका पूरा अर्थ मेरी उस समय समझ में आया जब मैंने भारत के विभिन्न आश्रम देखे। पश्चिम में घर का एक खण्ड—मानवता के शारीरिक सुख के लिए विज्ञान की उन्नति के चमत्कार—मैंने देखे थे और भारत में आकर आध्यात्मिक जीवन का स्वरूप देखने को मिला। मैंने अनुभव किया कि मानवता के विकास के लिए वैज्ञानिक ज्ञान के साथ-साथ पूर्व में सुविकसित आध्यात्मिकता का भी प्रचुर ज्ञान होना चाहिए।

शिवानन्दाश्रम (ऋषिकेश) में मुझे देखने को मिला कि भारतीय धार्मिक जीवन, पूजा-पाठ, दान-धर्म, निदिध्यासन किसे कहते हैं। दूसरे, परमात्म-शक्ति का मुझे आभास मिला और गङ्गा के तट पर घूमते हुए, गंगोतरी से आते जाते यात्रियों को देख कर, गंगामाता की आरती गाते हुए सुन कर मुझे भी वैसा ही अनुभव हुआ। प्रत्येक कार्य में भगवद्-भावना देखकर मैं श्रद्धा से नतमस्तक हुआ। मुझे ऐसा लगा कि मैं सर्व शक्तिमान की अतुल शक्ति से सम्पन्न किसी स्थान में पहुंच गया हूँ, शिवानन्द जी की प्रार्थना, दान और साधकों के मध्य कीर्तन मनोमुग्धकारी एवम् इतना प्रभावोत्पादक लगा था।

फ्रांस से आवाज

श्री चार्ल्स एण्ड्रीयू ने स्वामीजी की ६५वीं जयन्ती पर फ्रांस के लोगों को ओर से शुभ कामनाएँ भेजते हुए लिखा है—"जब श्री बीन ट्बेटे ने श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती की पुस्तक 'ध्यान व मनन' (Conentration and Meditation) मुझे भेंट की तो, उसका अध्ययन करने के उपरान्त वह मुझे बहुत अच्छी लगी। इसके

पश्चात् जब जीन हर्बर्ट ने इस पुस्तक के फ्रेंच अनुवाद पर उपोद्घात के रूप में कुछ लिखने का अनुरोध किया तो मुझे बहुत प्रसन्नता हुई कि एक ऐसे सन्त से मैं अपने देशवासियों का परिचय करा सकूँगा जो स्वयं ज्योतिर्मय हैं और विशेषतः आज की विपरीत परिस्थितियों में जब कि देशवासीगण अधिकांश अपने जीवन से परेशान और दुःखी हैं।

"मैं मानता हूँ कि यह देश आध्यात्मिकता से बहुत दूर है और भारत में तो यह दैनिक जीवन का एक अंग ही है। फ्रांसीसी सोचते हैं कि आध्यात्मिक ज्ञानोपलब्धि के लिये अधिक समय की आवश्यकता है और इस कार्य के लिए समय उनके पास नहीं बच रहता। लेकिन हमारे देश में अब ऐसे व्यक्तियों की संख्या बढ़ चली है जो उन्मुक्त वातावरण में विहार करना चाहते हैं। ऐसे लोगों के लिये स्वामी जी की शिक्षाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और मुझे आशा है कि अन्य देश-वासियों की भाँति हमारे लोग भी अधिक से अधिक लाभ उठायेंगे। मैं तो स्वामी जी की लेखनी से भलीभाँति परिचित हो गया हूँ और इसे अपना अहोभाग्य समझता हूँ।

शिव का रूप आज धरती पर

(श्री गौण्डाराम 'चंचल', बी० ए०)

आज मानव विनाश के कगार पर
ध्वंस-मद में चूर
क्रूरता, बर्बरता जाग उठी है उसकी
साम्राज्यवादी शक्तियाँ
पी रही हैं खून उसका ।
दूसरी ओर
तानाशाही खा रही है—
स्वतन्त्र हमारी भावनाओं, विचारों को ।
उच्च वर्ग नागिन बन
डस रहा है निम्न वर्ग को
आज इस तम-तोम को, विदीर्ण करने
यत्नशील है भारत-संत
दे रहा है, रोशनी वह
अपने प्रकाश-स्तम्भ से ।
आज जब घूसखोरी बढ़ चली है
लिप्सा वैभव की बढ़ रही है
आज मानव गला काटने पर उतारू
आज भूग का ताण्डव नर्तन
मानव सिर की गेंद बना कर
खेल रहे हैं खेल लोग मद में

ग्रह-लग्न-निरूपण

(दैवज्ञशिरोमणि पं० गणेशदत्त काशीवाले, गाडर वारा—मध्यप्रदेश)

रा० रा० योगिराज तपोमूर्ति श्री स्वामी शिवानन्द जी की जन्म-कुण्डली हमने जन्म-स्थान के अक्षांश से शुद्ध करके बनाई है। इष्ट-शोधन तथा लग्न-शोधन किया है। भरणी नक्षत्र दिन में मध्यान्ह के भीतर समाप्त हो जाता है और कृत्तिका नक्षत्र आ जाता है, जिसका तृतीय चरण है; मेष राशि नहीं है; वृषभ राशि है। "उदिताम्बर प्रकाश"—जन्म नाम रक्खा है। लग्न सिंह है। शोधित इष्टकाल ५६ घ० ८ पल ३० विपल है। शोधित लग्न ४-२-२३-२६ है। ग्रहों का स्थान सब चमत्कारी है और प्रायः सभी उत्तम श्रेणी के हैं। १—सिंह का सूर्य स्वक्षेत्री बुध युक्त लग्न में; २—धन भाव में शुक्र और धनेश बुध लग्न में है। अति श्रेष्ठ है। ३—गुरू अति उत्तम स्थान में है। ४—छठे भाव में शत्रु स्थान में केतु अति श्रेष्ठ; ५—चन्द्रमा उच्च राशि में अति श्रेष्ठ बलवान् है। ६—व्यय भाव में तीन ग्रह राहु, शनि, मंगल तीनों पाप ग्रह हैं, ये भी उत्तम हैं।

मुख्य फल निम्न प्रकार हैः—सिंह लग्न—स्वामीयुक्त सिंह के समान बल पराक्रमी हो; अर्थात् जिस प्रकार सिंह अपने वन से अन्यत्र जाकर बलवान्, प्रसिद्ध होता है इसी प्रकार अपने स्थान से दूसरी जगह जाकर, तीर्थस्थान में वास्तव्य हो, प्रसिद्ध हो, गणनायक हो, लाखों व्यक्तियों के शिरोभूषण हो—सूर्य के समान प्रकाशमान हों, जैसे सूर्य अपने प्रकाश से अन्धकार को दूर करते हैं इसी प्रकार इतर जनों का भी अंधकार दूर करेंगे। १२वें वर्ष से ही भक्तों का सग, भक्तिमार्ग में रुचि, देवभक्ति-चर्चा में प्रसन्नता और हृदय का गद्‌गद् होना। १८वें

धर्म में भक्ति में अधिकाधिक रुचि और इस मार्ग का अवलम्बन कर हर्षित होना, मानसिक तर्क से इसी भाव का दृढ़ होना; धनादि से परिपूर्ण होते हुए भी उस में लिप्सा न रहना।

विद्या में पारंगत रहें, तीन विद्याओं मे परिपूर्ण रहें; विद्याध्ययन करते हुए भी किसी छिपे हुए तत्त्व-पदार्थ की खोज में मग्न रहें। सत्संग में विशेष प्रीति रहे, परमोपयोगी हों, पराक्रमी हों, अपने विचार के दृढ़ संकल्पी हों और एकान्त में अधिक रुचि रहे। निवृत्तिमार्ग में अभिरुचि अधिक रहे तथा त्याग में प्रसन्नता पावें। ग्रहों के योग से पूर्व जन्म के योग-भ्रष्ट पुण्य-श्लोक रहें। परमात्मा की दिव्य-विभूति से उस जन्म के उत्तम कर्मों द्वारा दिव्य-ज्ञान प्राप्त करके परमेश्वर की आज्ञा से अब शेष तत्त्व-पदार्थ को पूर्ण करते हुए भूले-भटकों को सन्मार्ग बता कर मोक्ष गति को प्राप्त होने का पूर्ण योग है।

विग्रहयोग दश मेष की राशी में योग प्रव्रज्या—राजऋषि करता है। प्रथम तो ब्राह्ममुहूर्त का जन्म है। इस समय देव तथा दैवी विभूति वाले ही जन्म लेते हैं। ये लोग अतुल भाग्यशाली होते हैं। ज्योतिषशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रंथों में प्रमाण है कि सूर्योदय के ४ घटी (घड़ी) पूर्व और २ घटी बाद तक जिसका जन्म होता है, वह राजयोगी, भाग्यशाली, उद्धारक और पालक होता है। यदि वह लक्ष्मी को त्याग कर वन खण्ड जावे तो वहाँ भी ऋद्धि-सिद्धि अहर्निशि उपासना करें।

दशम में उच्च का चन्द्रमा होने से राजसम्बन्ध, राज-तुल्य मनुष्यों का आजन्म सम्पर्क एवं घनिष्टता होगी। पूर्ण राजयोग है। शास्त्रानुसार —जन्म में जो नीचे का ग्रह हो उसका स्वामी केन्द्र में उच्च का होकर बैठा हो तो राजयोग कर्त्ता है। जैसे इस कुण्डली में नीचे का भौम कर्क राशि का है, उसका स्वामी चन्द्रमा दशम में उच्चस्थ वृषभ राशि

का है; यह बड़ा प्रबल योग है। किसी भी राशि का चन्द्रमा दशम में अत्यन्त श्रेष्ठ होता है। यह तो उच्च का है, यदि यही दश मेप पाप ग्रह युक्त हो और व्यय भाव में हो तो अत्यन्त धारा प्रवाह द्रव्य लाता हुआ खर्च कराता है और अधियोग करता हुआ चन्द्रमा दीर्घायु, भाग्यवान् बनावे तथा शत्रुगणों का हन्ता, राजतुल्य आजन्म रहे।

स्वामी जी के एक और प्रबल योग—केमद्रुम है अर्थात् चन्द्रमा के आगे और पीछे कोई ग्रह न होने से यह योग होता है। चन्द्रमा को यद्यपि शुक्र देखता है, इससे केमद्रुम का भंग होता है परन्तु शुक्र के आगे शुक्र के शत्रु गुरू हैं, अतः केमद्रुम योग नाशक बल नहीं रह जाता। केमद्रुम योग घर छुड़ा कर, साधु, त्यागी व दीर्घायु करता है।

स्वामी जी का जन्म सूर्य की महादशा में हुआ था, जो १ वर्ष ७ मास २८ दिन ३४ घटी ५२ पल भोग चुके; और क्रमानुसार चन्द्रमा, मंगल, राहु, गुरू और शनि भी भोग चुके हैं। शनि में अरिष्टकारक योग भी थे जो निकल चुके हैं। सम्वत् २००६ वर्ष ६३ के वैशाख मास से १७ वर्ष को बुध की महादशा चली जो ८० वर्ष तक रहेगी; ७१, ७२, ७७ ये वर्ष पीड़ाकारक हैं, सो यह दशा भी निकलती जावेगी। ग्रहों के अनुसार आप परमात्मा की विभूति हैं और पूर्व जन्म के बचे हुए कर्मों को पूर्ण करने पर मोक्ष गति का निर्णय होगा।

(ज्योतिष प्रेमी पाठकों के लाभार्थ हमने पूज्य श्री स्वामी जी महाराज की जन्म कुण्डली मध्यप्रदेशान्तर्गत गाडर वारा नगर स्थित 'ज्योतिष भवन' के अधिष्ठाता एवं सुप्रख्यात ज्योतिषाचार्य पं० गणेशदत्त जी काशी वाले से तैयार कराई है और उन्होंने ही फल भी लिखने की कृपा की है।——लेखक)

प्रथम परिशिष्ट

श्री स्वामी शिवानन्द जी के पत्र

१
योग

आनन्द कुटीर
१० मई १९५१

श्री विलियम महाशय !

भारतवर्ष योगियों, ऋषियों और महात्माओं का देश है। हिमालय के दृश्य कितने मनोहर हैं। माता जाह्नवी कितनी मधुर है। इनके स्पन्दन कितने शान्तिप्रद और उत्कर्षकारी हैं। योगियों का सत्सग कैसा अन्तः करण को उन्नत करने वाला है। योगियों, गङ्गा जी और हिमालय समेत ऋषिकेश कितना सुन्दर और मधुर है।

यदि आप योग का अभ्यास करना चाहते हो तो भारत में आ जाओ और ऋषिकेश में रहो।

एकान्तवास की शान्ति का आनन्द उठाओ। 'आत्मा का आनन्द प्राप्त करो। मौन की शान्ति में ध्यान करो। महान् शान्ति में प्रवेश करो'।

आप योगी बन जावें !

स्वामी शिवानन्द

२
धर्म

आनन्द-कुटीर
१ सितम्बर १९४३

श्री गोविन्द !

जहाँ सत्य है वहाँ धर्म निवास करता है। जहाँ लोभ है वहाँ अधर्म रहता है और जहाँ भक्ति है वहाँ भगवान् का निवास होता है।

इसलिए धर्म का विकास करो, लोभ का नाश करो और भक्ति की वृद्धि करो।

धर्म से अधिक कोई उपासना नहीं है। धर्म से शान्ति प्राप्त होती

है। धर्म जीवन और समृद्धि से भी बड़ा है। धर्म आनन्द का प्रवेश द्वार है।

इस लिए सदा धार्मिक बनो। धर्म आपका मुख्य आश्रय होवे।

स्वामी शिवानन्द

३

प्रेम-धर्म

आनन्द कुटीर
१ सितम्बर १९३९

प्रिय अमृत पुत्र !

अविनाशी आत्मा में नित्य जीवन बनाना धर्म है। सिद्धि या अनुरूपता धर्म है। एकत्व धर्म है। प्रकाशवान् प्रेम धर्म है। धर्म मन और इन्द्रियों से ऊपर है। धर्म विधि और क्रियाओं से ऊपर है। ईश्वर के साथ एकी भाव होना धर्म है। दैवी ज्ञान प्राप्त करना धर्म है। अविद्या, मोह, संशय, भय, शोक और भ्रम से छुटकारा पाना धर्म है। आध्यात्मिक क्षेत्र में, पवित्रता के संघर्ष में युद्ध करना, सनातन तत्वों को स्थापित करना धर्म है जो कि आत्मा को उन्नत करके श्रेय या मोक्ष प्रदान करता है।

अपने हृदय के उद्यान में घृणा, संदेह, प्रतिकार, द्वेष, अभिमान, स्वार्थ के जंगल को हटा कर प्रेम की वृद्धि करो। प्रेम की शक्ति अकथनीय है। प्रेम के द्वारा राष्ट्रों का आपस में सम्बन्ध हो सकता है। प्रेम के ही द्वारा स्वराज्य प्राप्त हो सकता है। इसलिए प्रेम के धनी बनो, सबमें प्रेम का विस्तार करो। हे वत्स! प्रेम और धर्म का वास्तविक स्वरूप समझ लो और प्रेम तथा आत्म बलिदान का सच्चा धार्मिक जीवन बनाओ।

स्वामी शिवानन्द

४

ईश्वर

आनन्द कुटीर
१ जौलाई १९४२

मधुर राम !

ईश्वर का लक्षण बताना ईश्वर की सत्ता से इनकार करना है। आप एक निश्चित पदार्थ का ही लक्षण बता सकते हो। असीम अनन्त सत्ता का लक्षण किस प्रकार कह सकते हो। यदि आप ईश्वर का लक्षण बताते हो, तो आप असीम सत्ता को सीमा बद्ध कर रहे हो; अपने मन के भावों में ही बन्द कर रहे हो।

परमात्मा स्थूल मन की पहुँच से परे है। परन्तु शुद्ध, सूक्ष्म और एकाग्र मन से ध्यान के द्वारा उसे प्राप्त किया जा सकता है।

भगवान् प्रेम है। भगवान् सत्य है। भगवान् शान्ति है। भगवान् आनन्द है।

स्वामी शिवानन्द

५

भक्ति

आनन्द कुटीर
६ अगस्त १९४१

प्रिय नारायण !

ईश्वर के प्रति परम प्रेम को भक्ति कहते हैं। यह भक्तों के मुकुट में कोहेनूर मणि है। पश्चात् यह ज्ञान में परिणत हो जाती है और भगवत्प्राप्ति या अमृतत्व तक ले जाती है।

सत्संग, जप, कीर्तन, प्रार्थना, ध्यान और भक्तों की सेवा के द्वारा इसकी वृद्धि करो।

भक्ति रहित जीवन वास्तविक मृत्यु है। प्रह्लाद और ध्रुव का जीवन याद रखो। आपको प्रेरणा मिलेगी।

ससारीपन, वासनाएँ, तृष्णाएँ, अभिमान, आसक्ति, अहंकार और काम ये भक्ति के वैरी हैं। इनको मार दो। प्रभु को पूर्ण आत्म-समर्पण कर दो।

आपका हृदय भक्ति से परिपूर्ण हो जावे। आप सर्वदा प्रभु में ही निवास करो।

स्वामी शिवानन्द

६

भक्ति

आनन्द कुटीर
१ जून १९४३

प्रिय प्रेम नारायण!

भगवान् की भक्ति से रहित आपका जीवन शून्य है। भक्ति से रहित होकर आप व्यर्थ ही जीवन धारण कर रहे हो।

भक्ति शक्तिदायिनी है। यह महान् शक्ति है। यह जीवन का सार है। भक्ति उद्धार करती है और कष्टों को नाश करके शान्ति लाती है।

सेवा, जप, कीर्तन, सत्सग, ध्यान, और रामायण-भागवत आदि के स्वाध्याय के द्वारा इस भक्ति को बढ़ाओ।

ध्रुव, तुलसीदास, प्रह्लाद, जैसे भक्तों की जीवनी को याद रखो।

स्वामी शिवानन्द

७

कीर्तन

आनन्द कुटीर
८ अगस्त १९४१

प्रिय गोविन्द!

प्रभु का नाम गायन कीर्तन कहलाता है। यह अत्यन्त सुगम,

निश्चित और सुरक्षित पथ ईश्वर को प्राप्त करने का है।

कीर्तन सुधामय है। यह आत्मा के लिए दिव्य आहार है। कीर्तन आपको अमर बना सकता है।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

इस मन्त्र को गाओ।
आप कीर्तन के द्वारा भगवत्प्राप्ति कर लो।

स्वामी शिवानन्द

८

अखण्ड कीर्तन

आनन्द कुटीर
१८ मार्च १९४२

अविनाशी आत्मस्वरूप!

नमस्ते नमस्ते चिदानन्द मूर्ते!

आपका कृपा पत्र मिला। एक मास का अखण्ड कीर्तन बहुत अच्छा और अत्यन्त लाभकारी है। कलियुग में इससे बड़ा कोई यज्ञ नहीं है। भगवान् कृष्ण आप सबको शान्ति और समृद्धि का आशीर्वाद देवें।

भगवान् का ज्ञान प्राप्त करना उनके साथ एक हो जाना है। उनको जानना ही अविनाशी जीवन है।

जो विचार आप मन में बनाते हो तथा अपने दैनिक जीवन में जैसी आकृतियाँ अंकित करते हो वे सब आपके आधुनिक तथा भावी जीवन के बनाने में आपकी सहायता करते हैं। यदि आप निरन्तर भगवान् का चिन्तन करोगे तो आप सदा उनमें ही निवास करोगे।

भगवान् आपको अपना साधन अबाध रूप से चलाते रहने के लिए आन्तरिक शक्ति प्रदान करे।

स्वामी शिवानन्द

९

प्रार्थना

आनन्द कुटीर
१७ जुलाई १९४६

प्रिय साधकों

प्रार्थना में एक अद्भुत शक्ति है। प्रार्थना बड़े आश्चर्य पूर्ण कार्य कर सकती है। यह पर्वतों को भी हिला सकती है। यह आपके हृदय के अन्तस्तल से भाव सहित आनी चाहिए।

चाहे कितने ही प्रलोभन और संकट आपको घेर लें, प्रार्थना को मत छोड़ो प्रार्थना के द्वारा आप एक दुर्भेद्य दुर्ग बना लोगे।

प्रार्थना ही आपकी आश्रय और जीवन जल पोत की लङ्गर है।

स्वामी शिवानन्द

१०

सच्चरित्रता—भगवत्साक्षात्कार

आनन्द कुटीर
१ नवम्बर १९३९

प्यारे राम !

आपका पत्र मिला। आप आध्यात्मिक पथ पर उन्नति कर रहे हो यह जान कर हर्ष हुआ। इसी उत्साह को बनाए रहो। अपना ध्यानाभ्यास नियमानुसार करो।

भगवान् के मन्दिर के लिए सच्चरित्रता तो द्वार है। यह आपको मोक्ष नहीं दिला सकती। यह तो साधन मात्र है। यह अहंकार अथवा

द्वैतभाव को नहीं मिटा सकती। वह आपका हृदय शुद्ध करके दिव्य ज्ञान प्राप्त करने योग्य भूमिका बना सकती है। यह आपको धार्मिक जीवन बिताने में सहायक हो सकती है। यह मन मुकुर को निर्मल बना सकती है। परन्तु इसका विक्षेप और आवरण नहीं दूर कर सकती।

योगी, भक्त अथवा मुनि को जो आनन्द भगवत्साक्षात्कार के द्वारा मिलता है उसका कथन नहीं किया जा सकता। वह तो ऐसा ही है जैसे गूँगे ने बड़ी मधुर मिठाई खाई हो और वह अपना अनुभव नहीं बता सकता हो। इस अहंकार को घुला कर स्वयं इस आनन्द का अनुभव करो। भगवान् में लीन होकर अपने मन को पवित्र करलो।

भक्त को न तो शोक होता है और न किसी वस्तु की चाहना होती है। वह सदा प्रेमामृत का पान करता है और दिव्य उन्माद में मस्त रहता है। वह न प्रेम करता है और न घृणा करता है। वह कभी अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए प्रयत्न नहीं करता। वह सदा शान्त रहता है। वह भगवत्प्रेम में मग्न रहता है। वह सदा प्रसन्न रहता है।

इस लिए हे राम! सर्वदा अपने पूर्ण हृदय और मन से भगवान् की उपासना करो। उनकी महिमा गाओ। सदा उनका नाम स्मरण करो। सारे क्लेशों का अन्त हो जावेगा। भगवान् शीघ्र ही आपको दर्शन देंगे। आप उनकी व्यापकता का अनुभव करने लगोगे।

स्वामी शिवानन्द

११

क्या करो ?

आनन्द कुटीर
१ जून १९५१

सुरेन्द्रनाथ!

सेवा करो और प्रेम करो। दे डालो और त्याग करो। सहन करो और धीरता से सहो। निग्रह करो और संयमी बनो। भूल जाओ और

क्षमा कर दो। परिस्थितियों के और वातावरण से अनुकूल बनो। निश्चय पूर्वक अपने ध्येय की प्राप्ति में संलग्न रहो और अभ्यास किए जाओ।

महत्वाकांक्षा रखो और पवित्र बनो। मनन करो तथा अन्वेषण करो। विचार करो और निदिध्यासन करो। ध्यान करो और साक्षात्कार करो।

ईश्वर की कृपा से आप कैवल्यपद प्राप्त करो।

स्वामी शिवानन्द

१२

आध्यात्मिक मार्ग

आनन्द कुटीर
१ मई १९४१

सुन्दर युवक !

निस्सन्देह आध्यात्मिक मार्ग में अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ भरी हुई हैं। यह क्षुरधार मार्ग है। इस मार्ग में चलना तलवार की धार पर चलने के समान है। आप कई बार गिरोगे, परन्तु आपको जल्दी ही उठना होगा और अधिक उत्साह साहस और प्रसन्नता से चलना होगा। प्रत्येक ठोकर लगने वाला पत्थर आपकी सफलता की सीढ़ी बन जावेगा या आध्यात्मिक ज्ञान रूपी पहाड़ी पर चढ़ने में सहायक होगा। प्रत्येक गिरावट से आपको योग सोपान में ऊपर चढ़ने और गिर कर उठने के लिए अधिक शक्ति प्राप्त होगी।

अपने लक्ष्य को मत भूलो। अपने आदर्श को मत भुलाओ। निरुत्साह मत हो जाओ। आपको शीघ्र ही अन्दर से आध्यात्मिक शक्ति मिलेगी। अन्तर्यामी भगवान् आपके मार्गदर्शक बनेंगे और आपको ऊपर को धकेलेंगे। सारे ऋषियों और महात्माओं, मुनियों और पैगम्बरों को

अपने लक्ष्य पर पहुँचने से पहले बड़े कठोर संघर्ष और कठिन परिक्षाओं में से गुज़रना पड़ा था।

हे मित्र साहस पूर्वक आगे बढ़े चलो।

स्वामी शिवानन्द

१३

योगी कैसे

आनन्द कुटीर
१ मई १९५२

सुधन्य आत्माओं!

योग अचूक विज्ञान है। इसका ध्येय शरीर, मन और आत्मा की समकालीन उन्नति करना है। योग पूर्णत्व, शान्ति और नित्यानन्द प्रदान करता है।

यमों और नियमों का अभ्यास करो। सुख पूर्वक पद्मासन या सिद्धासन से बैठो। इन्द्रियों को संवरण करो। ध्यान का अभ्यास करो और योग के सुगम ज़ीने के द्वारा सबसे ऊँची सीढ़ी निर्विकल्प समाधि को प्राप्त करो।

विनित, सरल, साधु, सहिष्णु और दयालु बनो। सत्य की प्राप्ति के लिए तीव्र उत्कट इच्छा बनाओ।

आप शक्ति सम्पन्न योगी होकर प्रकाश करें।

स्वामी शिवानन्द

१४

ज्ञान कहाँ

आनन्द कुटीर
१ नवम्बर १९५२

प्रिय विवेक !

जो मन लोभ, क्रोध, काम और द्वेष से परिपूर्ण है, जो इच्छाओं

और आशाओं के वश में है और जो सन्तोष से रहित है उसमें आत्मज्ञान का उदय कभी नहीं हुआ करता।

ज्ञान केवल पवित्र और शान्त मन में ही प्रकाश करता है। इसलिए अपने मन को पवित्र करो और उसकी शान्ति को बढ़ाओ।

स्वामी शिवानन्द

१५

दिव्य स्वरूप

आनन्द कुटीर
१ जनवरी १९४३

सुधन्य आत्माओं!

आन्तरिक आध्यात्मिक जीवन बनाओ। मलिन राजसी और तामसी शक्तियों के साथ संघर्ष करो। साहस, बल और शक्ति अपने अन्दर से ग्रहण करो।

नियम पूर्वक आत्मचिन्तन का अभ्यास करो। वासनाओं से मुक्त आत्मा में केन्द्रीभूत मन बनाओ।

मन और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करो। ये आपके सच्चे शत्रु हैं। आप दिव्य ज्योति हो। अपना सच्चा दिव्य स्वरूप जानलो और सदा सुखी रहो।

स्वामी शिवानन्द

१६

विचारों पर विजय

आनन्द कुटीर
१ दिसम्बर १९४२

नमस्ते चिदानन्द मूर्ते!

अनावश्यक और असंगत विचारों को भगाने की चेष्टा मत करो। जितनी अधिक आप चेष्टा करोगे उतने ही अधिक वे लौट लौट

कर आवेंगे और उतने ही अधिक सबल हो जावेंगे। आप अपनी शक्ति और इच्छा को व्यय करोगे।

उदासीन हो जाओ। मन में दिव्य विचार भर लो। शनैः शनैः वे अदृश्य हो जावेंगे।

निरन्तर ध्यान के द्वारा निर्विकल्प समाधि में स्थित हो जाओ।

स्वामी शिवानन्द

१७

मन पर विजय

आनन्द कुटीर
१ जौलाई १९४२

प्रिय राम !

मन पर विजय पा लेना मृत्यु पर विजय प्राप्त करना है।

मन के साथ आन्तरिक युद्ध मशीन गनों के बाहरी युद्ध से कहीं अधिक भयङ्कर है। मन पर विजय प्राप्त करना शस्त्रों के द्वारा संसार पर विजय प्राप्त करने से अधिक कठिन है।

वीर बनो। इस दृढ़ शत्रु चंचल और प्रमाथी मन को जीत लो। आत्म विजय अनेकों बलिदानों से अधिक गौरवमय है।

हे राम! अपने ध्यानाभ्यास को नियमपूर्वक करते रहो और विजयी हो जाओ।

स्वामी शिवानन्द

१८

मन

आनन्द कुटीर
१ जून १९४२

सुन्दर युवक !

जो विचार आप अपने मन में रचते हो और जो आकृतियाँ आप

नित्य के जीवन में बनाते हो, वे ही आपका वर्तमान और भावी जीवन बनाने में सहायक होते हैं।

यदि आप निरन्तर विचार करो "मैं अविनाशी ब्रह्म हूँ" तो आप ब्रह्म ही बन जाओगे।

आत्मा या ब्रह्म को जान लेना ब्रह्म ही बन जाना है। ब्रह्म को जान लेना ब्रह्म के साथ एक हो जाना है। ब्रह्म को जान लेना अनन्त अविनाशी जीवन है।

अपने आपको जान लो और मुक्त हो जाओ।

स्वामी शिवानन्द

१६

समतोलन

आनन्द कुटीर
१ अगस्त १९४२

अमृत आत्म स्वरूप!

प्रभात समय थोड़ा सा आत्म चिन्तन, सुनियमित जीवन, आत्मा के अविनाशित्व का स्मरण और अपने सार्वजनिक तथा घरेलू जीवन में यह भावना करने की चेष्टा कि आप सर्वव्यापी आत्मा हो—ये बातें आपके जीवन को समतोलन और गतिसारूप्यता प्रदान करेंगी और आन्तरिक आध्यात्मिक बल और साहस देंगी।

आपको अच्छा स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन प्राप्त होवे। आपको गम्भीर और स्थायी शान्ति और ब्रह्मज्ञान के द्वारा आत्म स्वराज्य की महिमा प्राप्त होवे।

आपके कल्याण और दैनिक साधन का समाचार सुन कर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी।

स्वामी शिवानन्द

२०

ब्रह्मचर्य

आनन्द कुटीर
१ अगस्त १९४०

प्रिय आत्मस्वरूप !

अमृतत्व प्राप्त करने का आधार ब्रह्मचर्य है। यह चिरस्थायी आनन्द, परम शान्ति और अविनाशी सुख देता है।

पवित्र बनो। ब्रह्मचर्य व्रत पालन करो और इसी जन्म में जीवन्मुक्त बन जाओ।

स्वामी शिवानन्द

२१

पूर्ण ब्रह्मचर्य

आनन्द कुटीर
१ अगस्त १९४१

मधुर आत्मस्वरूप !

पूर्ण ब्रह्मचर्य के बिना ठोस आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती। आध्यात्मिक मार्ग में अधूरा काम नहीं होता।

पहले शरीर का संयम करो। फिर प्रार्थना, जप, कीर्तन, विचार और ध्यान के द्वारा अपने विचारों को पवित्र बनाओ।

दृढ़ निश्चय कर लो कि मैं आज से पूर्ण ब्रह्मचारी बनूँगा।

भगवान् आपको प्रलोभन से बचने और कामदेव को नष्ट करने के योग्य आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करें।

स्वामी शिवानन्द

२२

ध्यान

आनन्द कुटीर
२५ जून १९४०

प्रिय आत्मस्वरूप !

प्रणाम

त्राटक करते समय भगवान् कृष्ण अथवा अपने इष्टदेव के चित्र पर धीरे-धीरे देखो। देखते हुए आँखों पर ज़ोर मत डालो; जब आँखें बहने लगें तो उन्हें पोंछ कर आँखें बन्द कर लो और मन में मूर्ति का चिन्तन करो। मानस पटल पर साफ़ मूर्ति बनाने की चेष्टा करो। जब मन से मूर्ति का लोप हो जावे तो फिर आँखें खोल कर मूर्ति को देखो। इस प्रकार बार-बार यही किया करो। मन को मानसिक मूर्ति पर जमाने की चेष्टा करो। इस अभ्यासकाल में इष्टदेव की मूर्ति के सिवाय और कोई मूर्ति अथवा विचार मन के अन्दर नहीं घुसना चाहिए।

वासनाओं को नष्ट करके मन और पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के निग्रह को शम कहते हैं। ब्रह्मचर्य, मौन, विषयों से मन और इन्द्रियों के प्रत्याहार द्वारा मन का निग्रह करो। अपनी आवश्यकताओं और कामनाओं को कम कर दो। शरीर, धन, नाम और यश में आसक्ति और ममत्व का त्याग कर दो।

ध्यान का अभ्यास करते समय मन की वृत्तियों को देखते रहो। जब कभी यह बाहर की ओर भागे या बाहरी पदार्थों के लिए तृष्णा करे तो मन को लक्ष्य की ओर लौटा लाओ। अपने अन्दर सत् और असत् का विवेक रखो। सच्चा सुख केवल आत्मा में ही मिल सकता है, बाहर के विषयों में नहीं। इस प्रकार विवेकपूर्वक मन को लक्ष्य पर लगाने का यत्न करो। जब चित्त स्थिर हो जावे तो आत्मा अथवा अपने इष्टदेव के गुणों का चिन्तन करो; यथा सच्चिदानन्द, पवित्रता, पूर्णता, स्वतन्त्रता,

सर्वज्ञता और व्यापक। सब से पहले मन में उठते हुए विचारों को, धारणा के द्वारा और उन्नत विचारों से निग्रह करो। धीरे-धीरे आपको धारणा में उन्नति मिल सकती है।

आत्म विश्लेषण में शान्त हो कर बैठो' अन्तर-निरीक्षण करो और मानसिक विकारों पर कड़ी निगाह रखो। आप सोचते होंगे कि मैं ध्यान कर रहा हूँ; परन्तु वास्तव में मन गन्धर्वनगर बसा रहा होगा या तन्द्रा में लीन हो जायगा और फिर मानस सरोवर में लोभ, काम, द्वेष, क्रोध, वासना जैसी कुवृत्तियाँ प्रकट हो जावेंगी। ये राजसी वृत्तियाँ बहुत वेग से आक्रमण नहीं करतीं, परन्तु मन के अन्दर एक सूक्ष्म अलक्षित प्रवाह काम करता रहेगा। इन प्रवाहों को सावधानी से देखते रहो और इन्हें रोको। यही आत्म-विश्लेषण है।

नियमानुकूल ध्यान के अभ्यास के द्वारा आपको जीवन का लक्ष्य प्राप्त होवे।

स्वामी शिवानन्द

२३

स्थायी शान्ति

आनन्द कुटीर
१ अप्रैल १९४२

प्रिय साधक!

जब गम्भीर निदिध्यासन के द्वारा आप शान्ति में प्रवेश करोगे तो बाहरी संसार और आपके सारे संकट स्वयं गिर जावेंगे। आपको परमानन्द का अनुभव होगा। यही शान्ति (मौनावस्था) समस्त ज्योतियों की ज्योति है। इसी शान्ति में वास्तविक शक्ति और आनन्द है।

इन्द्रियों के द्वार बन्द करो। विचारों और भावों को निश्चल कर दो। प्रातःकाल निश्चल और शान्त होकर बैठ जाओ। रङ्ग बिरंगे

प्रकाशों को भुला दो। सत्य को ग्रहण करने का भाव बनाओ। भगवान् के साथ अकेले रहो। उससे साक्षात्कार करो। इस मौन में स्थायी शांति का उपयोग करो।

स्वामी शिवानन्द

२४

समाधि अवस्था

आनन्द कुटीर
१ अगस्त १९४२

श्री विलियम्स महाशय,!

समाधि अतिचेतन अवस्था है। समाधि अवस्था का कथन नहीं हो सकता। इसका वर्णन किस भाषा में किया जाय?

लौकिक अनुभव में भी आप सेब का स्वाद उस मनुष्य को नहीं बता सकते, जिसने सेब खाया न हो और न ही अन्धे को रङ्ग का लक्षण बता सकते हो।

यह अवस्था तो आनन्द, हर्ष और शांति से पूर्ण है। केवल इतना ही कहा जा सकता है। इसे आपको स्वयं अनुभव के द्वारा प्रतीत करना होगा।

आप इस अवस्था को प्राप्त करें।

स्वामी शिवानन्द

२५

मोक्ष

आनन्द कुटीर
१ जून १९४३

मित्रो!

जन्म मरण से छुटकारा पा लेना मोक्ष है। यह नित्य सुख की प्राप्ति है। इसमें देश और काल नहीं है और नहीं कोई आन्तरिक अथवा बाह्य अवस्था है।

आपका जन्म-मोक्ष प्राप्ति के लिए हुआ है। मोक्ष आपका गन्तव्य है।

'मैं कौन हूँ' इस जिज्ञासा के द्वारा इस तुच्छ 'मैं' को अथवा अहङ्कार को मार दो। आप मोक्ष प्राप्त कर लोगे और संसार के राजेश्वर की भाँति प्रकाश करोगे।

ईश्वर करे आप इसी जन्म में मोक्ष प्राप्त करें।

स्वामी शिवानन्द

२६
सच्चा मार्ग

आनन्द कुटीर
१ मई १९४२

सुधन्य साधको!

बहस मत करो। आपको कुछ लाभ नहीं होगा। अपने गुरु या किसी महात्मा के सामने शान्त होकर बैठो और ध्यान करो। आत्मा से बात करने दो।

आपकी शंकायें स्वयं ही मिट जावेंगी। आपको अच्छे आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त होंगे। आपको अपने हृदय में अनिर्वचनीय शान्ति और आनन्द का अनुभव होगा। जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने का यही सच्चा मार्ग है।

क्रियात्मक योगी बनो।

स्वामी शिवानन्द

२७

सफलता

आनन्द कुटीर
१ दिसम्बर १९४३

प्रिय रामकृष्ण !

सावधानी से विचार करो। ठीक ठीक निश्चय करो। निष्कपट रीति से कार्य करो। सत्यपूर्वक बात करो। ईमानदारी से रहो। परिश्रम से कार्य करो। सभ्यता से बात करो। यथायोग्य व्यवहार करो।

आप जीवन के किसी भी व्यापार में अवश्य सफल हो जाओगे। आपको चित्त की शान्ति मिलेगी। आपको अक्षय आध्यात्मिक निधि प्राप्त होगी।

भगवान् की कृपा से सदा परमात्मा में रहो।

स्वामी शिवानन्द

२८

सिद्धि

आनन्द कुटीर
१ जनवरी १९४४

श्रीमती हेमलता !

थोड़ा भोजन करो। गम्भीर श्वास लो। मधुर और प्रिय वचन कहो। उत्साह सहित कार्य करो।

लाभकारी विचार करो। अपने निश्चय पर दृढता से लगी रहो। धर्म पूर्वक कार्य करो। दृढ संकल्प से कार्य में लगी रहो। विनीत भाव से व्यवहार करो। पूर्ण हृदय से प्रार्थना करो।

साहसपूर्वक प्रयत्न करो। एक चित्त होकर धारणा करो। गम्भीरता पूर्वक ध्यान का अभ्यास करो। शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर लो।

परमात्मा की कृपा से आप अनन्त ब्रह्म का नित्य आनन्द प्राप्त करें।

स्वामी शिवानन्द

२६

संयम

आनन्द कुटीर
२५ जून १९३६

प्रिय आत्मस्वरूप !

सत्य बोलो। थोड़ा बोलो। नित्य दो घण्टे का मौन व्रत रखो। मधुर, कोमल और प्रेमपूर्ण वचन बोलो। किसी को गाली मत दो। किसी की निन्दा मत करो। यह वाक् इन्द्रिय का संयम है।

सिनेमा देखने मत जाओ। स्त्रियों को मत देखो। बाजार में चलते हुए अपने पैर की ओर देखो। बन्दर की भाँति इधर-उधर देखते हुए मत चलो। यह नेत्र का संयम है।

नाच देखने मत जाओ। ग्राम्य गीत मत सुनो। संगीत-समाज छोड़ दो। संसारी वार्ता मत सुनो। यह कान का संयम है।

सुगन्धियाँ मत लगाओ। फूल मत सूँघो। यह नाक का संयम है।

मिर्च, खटाई, कॉफी, प्याज़, लहसुन, मिठाइयाँ मत खाओ। एक सप्ताह के लिए नमक और चीनी छोड़ दो। सरल भोजन पर रहो। एकादशी को निराहार रहो या दूध और फल खाओ। यह जिह्वा का संयम है।

अधिक मत घूमो। एक आसन पर तीन घन्टे तक बैठे रहने का प्रयत्न करो। यह पैर का संयम है।

अपने मन को इष्ट देवता में लगा दो। जब कभी मन इधर-उधर भागे तो इसे बार-बार लौटा कर लाओ और भगवान् की मूर्ति में लगाओ। मन के विक्षेप को रोकने और धारणा के बढ़ाने का यही साधन है। इस प्रकार आप मन को स्थिर रख सकते हो। इसके लिए निरन्तर नियमपूर्वक अभ्यास की ज़रूरत है।

आपको अपना अभ्यास अवश्य जारी रखना चाहिए। आपके अन्दर तीव्र वैराग्य होना चाहिए। अभी आपके मन में बहुत से मल भरे हुए हैं। निष्काम सेवा करो। सात्विक गुणों की वृद्धि करो। अपने को पवित्र बनाओ। भक्ति को बढ़ाओ। भक्ति बिना आपको आत्मज्ञान नहीं मिल सकता। तभी आपको उत्साहवर्द्धक चिन्ह प्रतीत होंगे। धैर्य रखो। आपने साधन में दृढ़ बने रहो।

स्वामी शिवानन्द

३०

साधना का पथ

आनन्द कुटीर

अविनाशी आत्मा!

जब आपको कठिनाइयाँ, कष्ट, रोग और दुःख प्राप्त होवें तो घबड़ाओ नहीं। यह तो चलती फिरती छाया है। धीर बनो। उन्हें सहन करो। प्रत्युत्पन्नमति होकर उनका मुकाबला करो। माता प्रकृति आपको ढालना चाहती है, बलवान् बनाना चाहती है, अपने निर्मित्तों को अपने अबाध्य खेल के उपयुक्त बनाना चाहती है। आपका शरीर, आपके हाथ, आपका मन, आपके पैर उसके कारण हैं। माता प्रकृति चाहती है कि आप रचनात्मक सद्गुण यथा साहस, दृढ़ इच्छाशक्ति, धैर्य, सहिष्णुता, दया, प्रेम, करुणा, सद्भाव, उदार सहनशीलता आदि का विकास करो। इसलिए आपको यह कठिनाइयाँ और दुख मिलते हैं। दिव्य जीवन प्रारम्भ करो। अपना दृष्टिकोण बदल लो। जीवन पर उदार दृष्टि रखो। विस्तार करो। उन्नति करो। विपुल आध्यात्मिक जीवन बनाओ। आध्यात्मिक ज्वाला जल चुकी है। आप इसे नहीं रोक सकते। इसकी प्रचण्ड अग्नि बन जाने दो। यह बताना अत्यन्त कठिन है कि कब और किस पर भगवद्-कृपा हो जावेगी। आपको प्रकाश मिल चुका है। इसे स्थिरता से जला रहने दो। जब कभी

इंद्रियाँ फु कार करें तो विवेक की तलवार से काम लो। मन पर सावधानी से निगाह करो। इस मार्ग में साहस से चलते रहो। सब कहीं भगवत् कृपा और भगवान् की सत्ता का अनुभव करो। अपने साधन में नियमपूर्वक लगे रहो।

कठिनाइयाँ जब कभी उत्पन्न हों तो उद्विग्न मत हो जाओ। जब आपको दुख होवे तो घबराओ मत। क्योंकि माता प्रकृति साधक को भगवान् के साथ मिलाना चाहती है, इसलिए बहुत से पुराने कर्मों का जल्दी निपटारा होता है। इसलिए मुमुक्षु साधक को अधिक दुःख और कष्ट मिलते हैं। परन्तु दयामय भगवान् साथ ही साथ उसे कष्ट पार करने के लिए अद्भुत सहन-शक्ति प्रदान करते हैं। केवल अब ही सच्चा आध्यात्मिक जीवन आरम्भ होता है। इन कठिनाइयों को मुस्कान सहित सहन कर लो। आध्यात्मिक वीर बनो और दुखदायक विचारों को काट डालो।

कभी अपने कदम मत वापिस करो। अधीरता और कायरता के सूक्ष्मरूपों को मार दो।

शान्त हो जाओ और सत्य को पहचान लो। जागरूक रह कर वासनाओं और वृत्तियों को मार दो। भले बनो और भलाई करो। यदि दीन अनाथों को देने के लिए आपके पास धन नहीं है तो उन्हें मुस्कान से प्रसन्न करो। मधुर और सान्त्वनापूर्ण बात करो। दवाखाने से दवाई ला दो और रोगियों को दे दो। किसी को मत बताओ कि क्या आप कर रहे हो।

कष्ट तो छिपे रूप से भगवान् की कृपा है। कष्ट आँख खोल देने वाला है। कष्ट आपका मूक गुरु है। कष्ट आपके मन को भगवान् की ओर मोड़ देगा। एक-एक करके सब कठिनाइयों को जीत लो। टहलते रहो। अपनी चिन्ताओं और कठिनाइयों को दूर फेंक दो। अपने को अन्तरात्मा में स्थिर कर लो। नवीन मंगलशाल

आध्यात्मिक व्यक्तित्व बनाओ। मन के साम्य को बढ़ाओ। सदा प्रसन्न रहो। मुस्कराओ और हंसो। आत्मा में आनन्द मनाओ। गाओ—आनन्दोऽहं, आनन्दोऽहं, आनन्दं ब्रह्मानन्दम्। आपके लिए हर्ष, शान्ति, सुख और अमृतत्व की कामना करने वाला—

स्वामी शिवानन्द

३१

आत्मसाक्षात्कार

आनन्द कुटीर
१ अक्टूबर १९४३

श्री केशर!

अविनाशी जीवन प्राप्त करने के लिए मरो। इस तुच्छ 'मैं' को मार दो और अमृतत्व प्राप्त कर लो। अपने आत्मा में जीवन बनाओ आप हमेशा जीवित रहोगे।

आत्मा पर अधिकार करो। आपको अक्षय धनराशि प्राप्त होगी। आत्मा के साथ अपनी तद्रूपता कर लो आप संसार सागर को पार कर लोगे।

अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में स्थित हो जाओ। आपको भारी दुःख भी विचलित नहीं कर सकेगा। 'मैं कौन हूँ' इसका तत्वान्वेषण करो। यही आत्म साक्षात्कार करा देगा।

स्वामी शिवानन्द

३२

स्वास्थ्य

आनन्द कुटीर
२० जुलाई १९४२

मित्रो!

शरीर की बनावट, भिन्न-भिन्न अङ्गों के कार्य, भोजन, विज्ञान,

स्वास्थ्य सम्बन्धी नियम, रोगों के निदान और चिकित्सा आदि का ज्ञान प्राप्त कर लो, और अच्छा स्वास्थ्य बना लो, जो जीवन में सफलता और ईश्वर प्राप्ति के लिए आवश्यक है।

अपने को स्वयं अपना ही चिकित्सक बनाने का प्रयत्न करो। स्वास्थ्य ही धन है।

स्वामी शिवानन्द

३३

आत्मा

आनन्द कुटीर
१ मार्च १६४२

मित्रो!

समस्त प्राणियों में एक अविनाशी आत्मा निवास करता है। यह सर्व व्यापी आत्मा इस जगत् का, शरीर का और जीवन का आधार है। मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ इस आत्मा से अपनी चेतना प्राप्त करते हैं।

आप यह नाशवान् देह नहीं हो। तत्व में आप यह आत्मा ही हो। इसी आत्मा के साथ अपना एकीकरण करो।

अनुभव करो "मैं अविनाशी आत्मा हूँ।" बार बार मन से इस वाक्य को दोहराओ। इस संकटमय समय में यह आपको पूर्णतः निर्भय बना देगा।

स्वामी शिवानन्द

३४

आत्मस्वरूप

आनन्द कुटीर

ॐ।

आत्मा या ब्रह्म ही एकमात्र तत्व है। यह भ्रममूलक अहंभाव

वैसा ही है, जैसे जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब। यदि आप अपने केन्द्र आत्मा में तत्पर रहोगे तो प्रतिबिम्ब लोप हो जावेगा। आप आत्मस्वरूप हो जाओगे और नित्यानन्द का अनुभव करोगे। सुख और शान्ति के केन्द्र को स्पर्श करना और उसी केन्द्र में वास करना—यही योग, मोक्ष, निर्वाण या निर्विकल्प समाधि है।

सब के साथ एकता का अनुभव करने में जो जो बाधाएँ आवें, उनको तोड़ डालो। अज्ञान के पुत्र अहंकार ने ही ये सारी भ्रममूलक बाधाएँ खड़ी करदी हैं। जब ये बाधाएँ टूट जायेंगी तो आपको असली स्वरूप और महिमा सहित सत्य का परिचय हो जावेगा।

यदि आप आत्मा में रहना चाहते हो तो परम वैराग्य और तीव्र मोक्ष की इच्छा होनी चाहिए। आपको सबल साधना करनी चाहिए। गुरु कृपा होना भी आवश्यक है।

नित्यानन्द का स्रोत सदा आपके ही अन्दर है। अपने हृदय-देश में गम्भीर गोता लगाओ और निरन्तर तथा तीव्र ध्यानाभ्यास के द्वारा अमृतत्व रूपी सुधा का पान करो। अब आपको प्रतीत होगा कि आप आनन्दमय आत्मरूप हो जब आप आध्यात्मिक पथ पर चलो तो आपके पगपग पर उपनिषदों का ज्ञान आपके मार्ग को प्रकाश करे। करुणामय ऋषि प्रत्येक पग पर आपका हाथ पकड़कर इस मार्ग पर चलावें।

स्वामी शिवानन्द

३५

मोक्ष का मार्ग

आनन्द कुटीर
१ सितम्बर १९४२

प्रिय आत्मन्!

सत्य बीज है। ब्रह्मचर्य-मूल है। ध्यान का सिंचन जल है।

शान्ति फूल है। मोक्ष फल है। इसलिए सत्य बोलो, ब्रह्मचर्य पालन करो शान्ति पैदा करो और नियम पूर्वक ध्यान का अभ्यास करो।

निस्सन्देह आपको जन्म मरण के चक्कर से छुटकारा मिल जायगा अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति हो जायेगी। तत्वमसि।

स्वामी शिवानन्द

२६

नित्यानन्द

आनन्द कुटीर
८ अगस्त १६४१

प्रिय गुप्ता!

वर्तापन के मोह को, पदार्थों के स्वामीपन को और "वह और यह", "मैं और वह" इस भेद को त्याग दो। आप शीघ्र ही ज्ञान प्राप्त कर लोगे।

अविवेक के द्वारा ही वासनाओं का उदय होता है। विवेक के उदय होते ही वासनायें क्षीण हो जायेंगी। सत् और असत्पदार्थों में विवेक करना सीखो।

आप नित्यानन्द के धाम (मोक्ष) की ओर शीघ्र यात्रा करें।

स्वामी शिवानन्द

२७

इच्छा शक्ति

आनन्द कुटीर
१ अगस्त १९४३

धन्यस्वरूप राम!

इस भूतल पर आपका जीवन प्रलोभनमय है। आपकी आत्म-

मात्मसाक्षात्कार के लिये जन्म मिला है, परन्तु इस संसार के प्रलोभन आपको भटकाते हैं।

जब आप विषय पदार्थों की वासनाओं से मुक्त हो जाओगे तब आत्मज्ञान प्राप्त करने की इच्छा आपके अन्दर जागृत होगी।

वासनाओं और रागद्वेष को निकाल कर और अविनाशी आत्मतत्व का चिन्तन करके अपनी इच्छा शक्ति को बढ़ाओ।

स्वामी शिवानन्द

३८

अभय

आनन्द कुटीर
१ अक्टूबर १९४२

धन्य आत्मस्वरूप!

अभय आत्मज्ञान के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। अज्ञान भय को उपजाता है। द्वैत में भय है। द्वैत अज्ञान का कार्य है। जो महात्मा सर्वत्र अपने ही आत्मा का दर्शन करता है, उसे भय कैसे हो सकता है।

अविनाशी आत्मा का निरन्तर चिन्तन करते हुए भय को नष्ट करदो। निरन्तर ध्यान के द्वारा इस निर्भय आत्मा को प्राप्त कर के नितान्तभय रहित हो जावो।

तुम अविनाशी आत्मा हो।

स्वामी शिवानन्द

३६

साधना आवश्यक

आनन्द कुटीर
१ मई १९४३

आत्म साक्षात्कार आपको गुरु के द्वारा किये हुये चमत्कार की भांति प्राप्त नहीं हो सकता।

गौतम बुद्ध, ईसामसीह, रामतीर्थ सबने ही साधना की है। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से विवेक बढ़ाने और अभ्यास करने को कहा है। उन्होंने यह नहीं कहा कि मैं तुम्हें अभी मुक्ति दे दूंगा।

इसलिये इस विपरीत भावना को त्याग दो कि आप का गुरु आपको समाधि और मुक्ति दे देगा।

प्रयत्न करो। पवित्र बनो। ध्यान करो।

शिवानन्द

४०

सत्य-दर्शन

आनन्द कुटीर
१५ मार्च १९४०

प्रिय आत्मस्वरूप!

यह स्थूल शरीर पांच तत्वों का बना हुआ है। एक न एक दिन यह नष्ट हो जायेगा। जो पैदा हुए हैं उन्हें इस संसार से अवश्य कूच करना है। युधिष्ठिर कहाँ है? राजा अशोक कहाँ है? वाल्मीकि शेक्सपीयर कहाँ हैं? नैपोलियन कहाँ? शिवा जी कहाँ है? अतीत काल के वे प्रसिद्ध सम्राट कहाँ हैं? सब की एक ही गति होती है।

आप अपने माता पिता की मृत्यु पर व्यर्थ क्यों रोते हो। प्रभु से वियोग हो जाने पर रोओ। नाशवान् पदार्थों में आसक्ति और मोह क्यों रखते हो। अविनाशी सत्पदार्थ में आसक्ति रखो। आप को शरीर में क्यों मोह होता है? अविनाशी आत्मा में मोह करो, जो आपका सच्चा शुभचिन्तक है, आपका अविनाशी मित्र है।

आपका सच्चा पिता कौन है? आपकी सच्ची माता कौन है? अपने हृदय में खोज करो। आपके अगणित जन्म हुए हैं और बेशुमार माता

पिता हुए हैं। इस संसार नाटक में जन्म और मृत्यु दो दृश्य हैं। ये माया की नट लीला है। वास्तव में ना कोई आता है और ना कोई जाता है। न ही जन्म है और ना मृत्यु। आप अविनाशी, नित्य, सर्वव्यापी आत्मा सच्चिदानन्द हो। यह संसार दो दिन का मेला है। यह शरीर दो क्षण का बुलबुला है। मित्र, इन बातों का भली प्रकार मनन करो और चतुर बनो।

आध्यात्मिक पथ में मोह सबसे बड़ा बाधक है। मोह अविद्या का विकार है। विवेक, वैराग्य और 'मैं कौन हूँ' इस तत्वान्वेषण के द्वारा इस मोह को कठोरता से नष्ट कर दो। मानसिक त्याग की वृद्धि करो। तुच्छ हृदय दौर्बल्य को दूर कर दो। कायरता के आगे मत झुको। हे राम! खड़े हो जाओ। आप सर्वशक्तिमान हो। आप सुख, शान्ति, आनन्द और ज्ञान की मूर्ति हो। इनको अनुभव करो।

परमात्मा करे, आप सर्वकाल में समस्त परिस्थितियों में प्रसन्न और निर्मल-चित्त बने रहो।

स्वामी शिवानन्द

४१

आनन्द कैसे

आनन्द कुटीर
१० मार्च १६४०

अविनाशी आत्मस्वरूप!

आपके मन में प्रतिदिन, प्रतिघड़ी, प्रतिपल आध्यात्मिक प्यास अधिक अधिक बढ़नी चाहिए। अपने जप और ध्यान में व्यवस्थित बनो। मैं अपने प्रत्येक पत्र में यह दोहराता हुआ कभी नहीं थकता, क्योंकि मनुष्य को आनन्दमय रखने का यही एक मात्र साधन है। धैर्यपूर्वक बढ़ती

हुई रुचि के साथ आध्यात्मिक कार्य में लगे रहने से मनुष्य संसारी जीवन की चिन्ताओं और भौतिक जीवन के कष्टों से मुक्त रहता है।

साधकों को ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करने में जप की संख्या नहीं, अपितु जप काल में मन की पवित्रता, एकाग्रता और भाव सहायक होते हैं। आपकी आध्यात्मिक उन्नति का अनुभव आपकी बाह्य परिस्थितियों, दुःखों, कठिनाइयों, विपरीत और विरोधकारी अवस्थाओं पर विजय प्राप्त करने की सामर्थ्य से किया जाता है। जीवन की सारी अवस्थाओं में और प्रतिक्षण अपने मन की साम्यावस्था को बनाये रखो। दृढता से जमे रहो। धीर बन जाओ। मन को पवित्र बनाओ और ध्यान करो। निश्चल हो जाओ और आन्तरिक अनुरूपता को अनुभव करो। निःसन्देह बहुत कुछ सफलता तो अभ्यास से ही प्राप्त होती है। आप जानते ही हो कि मनुष्य को अभ्यास ही पूर्ण बनाता है। इसलिए आध्यात्मिक अभ्यास को मत छोड़ो क्योंकि केवल यही जीवन का सहारा है।

अपनी भौतिक क्रियाओं को कम कर दो। शनैः २ मन को अन्तर्मुख कर लो। आपको अधिक एकाग्रता और आन्तरिक शान्ति मिलेगी।

आपको अधिक दान और दरिद्रों तथा रोगियों की अधिक सेवा करनी होगी। भगवान् ने आपको अलभ्य सामर्थ्य और शक्ति दी है। इस सामर्थ्य का आपको मानवता के कष्ट निवारण में आत्म भाव से उपयोग करना होगा। समय बीत जायगा। जितनी जल्दी हो, उतना ही अच्छा है।

शरीर अपवित्र, नाशवान और जड़ है; परन्तु आत्मा पवित्र, नित्य, कभी ना बदलने वाला, अविनाशी और स्वयंप्रकाश है। इन दोनों को एक मत समझो। इससे अधिक अज्ञान और क्या हो सकता है।

आसक्तिहीन होने का अभ्यास करो। आपको प्रतिदिन मन

को साधना होगा। आप भले ही कहो 'मुझे किसी में आसक्ति नहीं है।' परन्तु जब आपकी परीक्षा आयेगी तो आप विफलता दिखाओगे। मोह बड़ा बलवान और गहरा जमा हुआ है। इससे मुक्त हो जाओ और अन्तरात्मा के परमानन्द का उपभोग करो।

वेदान्त के परम लक्ष्य कैवल्य मोक्ष को भगवान् की कृपा से आप प्राप्त करें।

स्वामी शिवानन्द

४२

उपनिषद

आनन्द कुटीर

१० अक्टूबर १९४१

प्रिय साधको!

सारे संसार में उपनिषदों के समान प्रेरणा देने वाली, आत्मोन्नति करने वाली और आनन्द देने वाली कोई पुस्तक नहीं है।

उपनिषदों में बताये हुए दर्शन शास्त्र ने पूर्व और पाश्चात्य देशों में अनेकों पुरुषों को शान्ति प्रदान की है।

उपनिषद् अद्वैत का सिद्धान्त सिखाते हैं। उनमें वेदान्त के उन्नत सत्य सिद्धान्त भरे हुए हैं और ऐसे क्रियात्मक निर्देश भरे हुए हैं, जो आत्म-साक्षात्कार के पथ पर प्रचुर प्रकाश डालते हैं।

स्वामी शिवानन्द

४३

संसार में आत्मसाक्षात्कार

आनन्द कुटीर

सुधन्य आत्मा!

गीता और योग वाशिष्ठ की मुख्य शिक्षा संसार में रह कर संसार

के ही द्वारा आत्म साक्षात्कार प्राप्त करना है। यह जगत् आपका सर्वश्रेष्ठ गुरु है। अभी आपको बहुत कुछ सीखना होगा। आपको जगत् छोड़ देने की आवश्यकता नहीं है। त्याग तो करना है स्वार्थ, अहंकार, ममत्व, वासनाओं, भेद बुद्धि, कर्ताभाव का। संसार में निष्काम्य भाव से अपने जीवन का कर्तव्य पूरा करते हुए भी आप आत्मज्ञान प्राप्त कर सकते हो। यदि आप असुविधाजनक परिस्थितियों में होते हुए भी आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करो तो आप शीघ्र उन्नति कर लोगे।

साहस मत छोड़ो। हिम्मत रखो। सदा सावधान रहो। एक एक करके कठिनाइयों को पार करलो। सच्चे साधक को कोई बात प्रभावित नहीं कर सकती। जैसे सूर्य के आगे धुन्ध नष्ट हो जाता है वैसे ही सारे संशय और भ्रम दूर भाग जावेंगे। मैं सर्वदा आपके साथ हूँ। सान्त्वनापूर्ण मधुर वचन कहो और सबके हृदयों को वश में करलो। आप यह कर सकते हो। निस्वार्थ सेवा, नम्रता, प्रेम, दया, समदृष्टि और महानता के द्वारा सबके हृदय में प्रवेश करो।

भगवान् की कृपा से आप गम्भीर शान्ति और नित्यानन्द प्राप्त करो।

स्वामी शिवानन्द

४४

सच्चा महापुरुष

आनन्द कुटीर
१० फरवरी १९३६

अविनाशी आत्मस्वरूप !

आध्यात्मिक क्षेत्र में आपको महापुरुष बनना चाहिए। संसारी महानता किसी काम की नहीं। यह तो बच्चों का खेल है। अभी अपने

हृदय में आध्यात्मिकता का बीज बो डालो।

एक दिन भी सत्संग से मत चूको। महात्माओं की सगति करो। अपने संसारी कर्त्तव्यों का पूर्णतया पालन करो। गीता और उपनिषदों का निरन्तर स्वाध्याय करो। अवकाश मिलने पर अनेक प्रकार से समाज-सेवा करो। संसार में रहो मगर संसारी मत बनो। आध्यात्मिक युद्ध-क्षेत्र में वीर बन के प्रवास करो। धार्मिक जीवन बिताओ। आप महापुरुष बन जाओगे। आपको नैतिकता का पूर्ण विकास करना चाहिए। केवल कालेज की शिक्षा आपको महान् नहीं बना सकती।

स्वामी शिवानन्द

४५

उन्नत जीवन

आनन्द कुटीर
१ फरवरी १६४४

श्री पट्टाभिरामैया!

निस्तब्धता में परमात्मा की मन्द मन्द आवाज सुनो। श्रद्धा की शक्ति का अनुभव करो। संसारीपन से बचने का उपाय सीखो।

अपने हृदय में भक्ति का मन्दिर बनाओ। शान्ति में प्रवेश करो। भगवान् नारायण आपको अपने हृदय में बिठला लेवें और प्रेम के पवित्र जल से आपको स्नान करावें।

स्वामी शिवानन्द

४६

सन्त कैसे

आनन्द कुटीर
१० सितम्बर १९४९

प्रिय मुमुक्षुओ!

सन्तों के जीवन का निरन्तर स्वाध्याय आपको सन्त जीवनी बनाने

योग्य कर देगा। आपमें उनके उदार गुण आ जावेंगे।

आप क्रमशः आध्यात्मिक पथ में ढल जाओगे। उन सन्तों से आपको उत्कर्ष प्राप्त करने के लिए अभिलाषा जाग्रत होगी।

सन्त जीवनी बताने वाली पुस्तक आपको हर समय पास रखनी चाहिए। यह आपके लिए बहुमूल्य निधि है।

आप भी सन्त बन जावें।

स्वामी शिवानन्द

४७

कुमारी सावधान!

आनन्द कुटीर

आदरणीय आत्मस्वरूप!

प्रणाम

नि सन्देह इस समय आप पवित्र और निर्दोष कुमारी हो। बार-बार लोगों से मिलने जुलने से पवित्र प्रेम क्षुद्र वासना के रूप में रह जावेगा। माया बड़ी बलवती है। माया के प्रलोभनकारी शिकारों के मोह से भ्रम में मत पड़ जाना। इस ने तो बड़े बड़े ऋषियों को भी बहकाया है।

भूल से माया के मनोहारी सुन्दर रूपवान् घुंघराले बालों वाले युवकों को शान्ति और गम्भीरता की मूर्ति मत समझ बैठना। क्षुद्र मन का कहना मत मान लेना। यह आपको बहका कर अज्ञान के गहरे गढे में धकेल देगा। जहाँ आपको दु ख, शोक और सन्ताप ही मिलेगा। विश्लेषण करो और चतुर बनो।

आपको बहुत सावधान और सचेत रहना चाहिए। आपको अपनी माता और बड़ों की बात सुननी चाहिए। ऐसा मत समझो कि आप अंग्रेजी पढ़ गई हो, इसलिए उन लोगों से अधिक बुद्धिमती हो। इस

प्रकार की शिक्षा से कोई लाभ नहीं। सम्मिलित शिक्षा पद्धति में भय रहता है।

लज्जावती बनो। नारियों के लिए लज्जा महान गुण है। नारी-सुलभ शोभा को बनाये रखो। पुरुषत्व के गुण मत लेना। पश्चिम की स्त्रियों की नकल करके अपने को नारीपन से रहित मत कर लेना। आदर्श महिला बनो।

आप भले ही कितनी पवित्र क्यों न हो, यदि आप स्वतन्त्रता पूर्वक लड़कों के साथ फिरती रहोगी तो आप संकट में पड़ जाओगी। आप जानती नहीं हो कि माया कब और कैसे अपना प्रभाव दिखावेगी। सावधान हो जाओ। जागो और अपनी आँखें खोलो। बचपन ना करो। परिवार का गौरव बनाये रहो। उपन्यास मत पढ़ो। सिनेमा देखने मत जाओ।

प्रार्थना करो। जप, कीर्तन और ध्यान करो। गीता पढ़ो। अनुसूया, सीता, मुक्ता बाई और मीरा की जीवनी पढ़ो। 'स्त्री धर्म' या 'आदर्श महिला' नामक पुस्तक पढ़ो।

आप मीरा के समान प्रकाश करें। भगवान् शिव आपको आध्यात्मिक पथ पर चलावें।

स्वामी शिवानन्द

४८

मातृ शक्ति

आनन्द कुटीर
८ नवम्बर १९४२

देवियो और कुमारियो!

राधा के अनुकूल अपना आचरण बनाओ। अपने हृदय में भक्ति का दीपक जगाओ। मीरा की सी पवित्रता और सरलता में वृद्धि करो।

बालकों का भविष्य आपके ही हाथ में है। उनके चारित्र्य को उचित रूप में ढालो। उन्हें देश के उपयोगी और सुयोग्य नागरिक बनने की शिक्षा दो। आप भी स्वयं एक आदर्श पत्नी और आदर्श माता बनो।

राधा और सीता आत्मा के आन्तरिक सौंदर्य में धनवती थीं। इस चिरस्थायी अम्लान सौंदर्य को प्राप्त करो। भगवान् से प्रार्थना करो "हे प्रभु! हमें आन्तरिक सौंदर्य दीजिए।" वस्त्रों और गहनों की चिन्ता मत करो।

आप सब सीता के समान प्रकाश करें।

स्वामी शिवानन्द

४९

नारी क्या करे

आनन्द कुटीर
८-११-१९४२

सुधन्य देवियो!

सीता की सी सरलता और पवित्रता में उन्नति करो। भक्ति का दीपक जलाओ। अपने में परायण रहो। आदर्श पत्नी और आदर्श माता बनो।

बच्चों का प्रारब्ध आपके ही हाथों में है। उनको यथोचित रीति से शिक्षा दो।

आन्तरिक आध्यात्मिक सौंदर्य में सीता धनवती थी। इस सदा प्रफुल्ल सौंदर्य को पवित्रता और भक्ति के द्वारा प्राप्त करो। सुन्दर वस्त्र और आभूषणों की वांछा मत करो।

भगवान् की कृपा से आप सीता के समान प्रकाश करें।

स्वामी शिवानन्द

५०

सच्चा धर्म

आनन्द कुटीर
हृषीकेश
ता० १-११-४३

श्रीमती लीलावती !

आत्म-साक्षात्कार करना सच्चा धर्म है। सच्चा धर्म एक ही है। यह हमें भगवान् में जीवन बिताना और अमृतत्व प्राप्त करना सिखाता है। यह अज्ञान का आवरण हटाता है और हमें आत्मा की एकता का दिव्य दर्शन करने योग्य बनाता है।

धर्म क्रियात्मक है। यह आपके दैनिक जीवन का अङ्ग बन जाना चाहिए।

अहंकार को नष्ट करना, कामनाओं को मिटाना, रुचि और अरुच को दूर करना, आत्मसाक्षात्कार करना, समस्त जीवों के प्रति प्रेम, आत्म-भाव से मानव-जाति की निस्वार्थ सेवा—यही सच्चे धर्म का सार है।

स्वामी शिवानन्द

द्वितीय परिशिष्ट

स म्म ति याँ

"युग विभूति—स्वामी शिवानन्द"

के बारे में दूसरे क्या कहते हैं

(आचार्य नित्यानन्द, मंत्री, राजस्थान हिन्दी साहित्य संमेलन)

"स्वामी जी ने देश और विदेश में आध्यात्मिक प्रचार के लिए जो प्रयत्न किया है, वह किसे विदित नहीं? संभवतः योगिराज अरविन्द के बाद आप ही के द्वारा ऐसा प्रयत्न भारत के बाहर सर्वत्र हुआ है। इस प्रकार आपने स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ के बाद उस परम्परा को चालू रखा है। लेखक ने इस ग्रन्थ में स्वामी जी के जीवन, दर्शन और कार्य पर सरल, रोचक तथा प्रवाहमयी भाषा में विशद प्रकाश डाला है। हिन्दी में जीवनी-साहित्य कम ही है और इस प्रकार यह

ग्रन्थ इस अभाव की पूर्ति में सहायक होगा। 'शिवानन्द दर्शन' पर लेखक ने एक नवीन दृष्टिकोण उपस्थित किया है और यह पुस्तक के नाम की यथार्थता को सिद्ध करता है। हमें विश्वास है कि यह ग्रन्थ समुचित सम्मान प्राप्त करेगा।" —(ता० २५ जुलाई' ५१)

प्रो० कन्हैयालाल सहल, अध्यक्ष, हिन्दी-संस्कृत-विभाग, बिरला कॉलेज, पिलानी और सुप्रसिद्ध लेखक व समालोचक—

"मुझे यह देख कर अत्यन्त हर्ष हुआ कि स्वामी जी की जीवनी से सम्बद्ध अत्यन्त उपादेय सामग्री का संकलन इस पुस्तक में हुआ है। स्वच्छ, सरल और प्रवाहमयी भाषा में सुव्यवस्थित रूप में लेखक ने स्वामी जी की जीवनी को पाठकों के समक्ष उपस्थित किया है। पुस्तक में अनेक स्थल ऐसे हैं, जिनसे न केवल सामान्य पाठक के आध्यात्मिक ज्ञान में वृद्धि होती है, किन्तु अपने वैयक्तिक जीवन को नैतिक धरातल की उच्चता पर पहुँचाने के लिए बड़ी प्रेरणा भी मिलती है। निश्चय ही यह जीवनी पाठकों के मन में उदात्त और भव्य भावों का संचार करेगी।"—(ता० २७-७-५१)

श्री द्वारकानाथ झिंगन, एम. ए. एल. एल. बी. एडवोकेट, (दिल्ली) और हिन्दी में आध्यात्मिक विषयों के लेखक व अनुवादक—

"आपकी लिखी हुई पूज्यपाद स्वामी श्री शिवानन्द जी महाराज की जीवनी के १२ अध्यायों की पाण्डुलिपि को देखने का अवसर प्राप्त हुआ। समय थोड़ा होने के कारण उसकी एक झलक कहीं कहीं से देख पाया हूँ। किन्तु इतने ही से मुझे सन्तोष है कि चिरकाल से जो मेरे मन की साध बनी रही है, जिसके लिए प्रयत्न प्रारम्भ करके भी इस महान् कार्य को गुरुतम समझ कर तथा समय का संकोच रहने के कारण इस आशा से अधूरा छोड़ दिया था कि कोई न कोई सज्जन श्री स्वामी जी महाराज के जीवन से प्रेरणा प्राप्त करके उनके महान् जीवन की घटनाओं

को लेखबद्ध करके प्रस्तुत करेंगे, उस आशा को आप बहुत सुचारु तथा मनोहर ढंग से इस पुस्तक द्वारा पूरी करेंगे। ....आपने बताया कि अभी इस पुस्तक के ६ अध्याय और लिखने शेष हैं। पुस्तक पूर्ण होने पर सर्वमान्य और लाभदायक प्रमाणित होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। पुस्तक की भाषा, वर्णनशैली और विस्तृत विषय-विवेचन सब कुछ प्रशंसनीय है।" (ता० १२ जुलाई १९५१)

श्री कांतिलाल जोशी, एम. ए. (मंत्री, बम्बई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, बम्बई–२६) तथा उत्कृष्ट लेखक—

"स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती ने हमारे देश के आध्यात्मिक जीवन में स्फूर्ति का नवसंचार किया है। यह जीवनी उनके जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रसंगों का सुन्दर परिचय देती है और कर्मयोग के मार्ग पर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है। इसे पढ़कर कोई व्यक्ति अपने जीवन को उच्च बना सकता है। स्वामी जी कोरे वेदान्ती नहीं, अपितु वे जनता-जनार्दन की सेवा के प्रबलपक्षपाती हैं। उनका समस्त जीवन ही निष्काम कर्मयोग का जीता-जागता उदाहरण है। इसको सरल एवम् रोचक शैली में चित्रित करने में लेखक को सफलता मिली।" (२ अगस्त १९५१)

Yogi Sri Shuddhananda Bharatiar, 'Puduyoga Nilayam' (Aurobindo Ashram), Pondicherry writes:—

"Swami Sivananda represents to-day, the spirit of the oriental genius. He has done for the spiritual regeneration of India and humanity, which none has done since the days of Shankara. He is an embodiment of love, truth and Tapasya. He is the prophet to-day of Divine Life and Yogic Sadhan. His books are pouring practical wisdom into the devotees who aspire after true knowledge and realisation. He has a gift to express directly and clearly what the inner Man aspires. He has written books in all systems of Yoga and Philosophy which are very widely

read. For, his heart is as wide as the universe and he spontaneously attracts hearts. The secret of his success is his sublime humility and devotion to God Like a true Vedic seer he directs everyone to realise the self and receive the Grace, that shall lead the Sadhak to the realisation of God, which is the ultimate aim of life. I welcome this handy Hindi book upon Siva by Sri Akhil Venoy, one of his disciples.

श्री पं० गोविन्द वल्लभ पंत (हिन्दी के यशस्वी नाटककार एवं कहानी लेखक)—

"श्री स्वामी शिवानन्द जी के व्यक्तित्व, साधना और उपदेशों को आपने जिस योग्यता और परिश्रम से 'युग-विभूति—स्वामी शिवानन्द' नामक पुस्तक में समन्वित किया है—वह प्रशंसनीय है। जो भी उस पुस्तक को पढ़ेगा, उस आत्मा और जीवन के मार्ग में आगे बढ़ने के लिए प्रकाश तथा प्रोत्साहन दोनों प्राप्त होंगे।"—(ता० १३-८-५१)

श्री करुणाशंकर पण्ड्या, सम्पादक, 'नवभारत टाइम्स' हिन्दी दैनिक, बम्बई और प्रतिष्ठित पत्रकार एवं सिद्धहस्त लेखक—

श्री अखिल विनय जी ने युग-विभूति—स्वामी शिवानन्दजी पर अपने विशाल अध्ययन के आधार पर यह मौलिक पुस्तक लिखकर हिन्दी के पाठकों को उनके जीवन-दर्शन की ओर उन्मुख किया है। स्वामी जी के ग्रन्थों अथवा उनके प्रत्यक्ष सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति पर उनके विशाल व्यक्तित्व का प्रभाव अवश्य पड़ा है। "ब्रह्मचर्य" पर उनकी पुस्तक से मैं भी किसी समय बहुत प्रभावित हुआ था। चरित्र-गठन के लिए स्वामी जी की पुस्तकें किशोरों के लिए प्रेरणादायक रही हैं। अध्यात्म और योग-सम्बन्धी उनकी कई पुस्तकें पढ़ने का मुझे अवसर मिला है। उनसे बहुत कुछ सीखने का प्रयत्न भी मैंने किया है।

उनके सम्बन्ध में अब जो कुछ जानता हूँ, उसके आधार पर यह सकता हूँ कि जीवन के प्रत्यक्ष अनुभवों ने स्वामी जी को आत्म-विकास की ओर प्रेरित किया और वे अपनी समस्त प्राप्य शक्तियों के साथ उस ओर लग गए। एक सफल वक्ता, अध्यवसायी कार्यकर्त्ता, डाक्टर बन कर जब स्वामी जी जन-साधारण में अखिल-विश्व के कल्याण की प्रेममयी भावना लेकर अद्वैतवाद की महानता को स्वीकार करते हैं, तब उनके मानस का सर्वोच्च विकास 'मोक्ष' की व्याख्या बदल देता है, और स्वामी जी की कामना युग-युग तक जन-जीवन की सेवा करने की ओर उन्मुख हो जाती है। आधुनिक मानव जिस मस्तावस्था में है, उसके लिए आवश्यक है कि वह अपनी परम्पराओं के आधार पर, अपने ज्ञान के मापदण्ड की रेखा के आधार पर जीवन-दर्शन को क्रियात्मक रूप दे। किसी का अन्धानुकरण, न तो मानव को आज तक सुखी कर सका है और न भविष्य में ही ऐसा हो सकेगा। श्री स्वामी जी ने व्यक्ति की आधुनिक जड़-स्थिति में उस पृष्ठ भूमि पर आधारित जीवन की भाषा में कल्पना की है और उसके लिए समुचित मार्ग-प्रदर्शन भी अपने स्वयं के अनुभवों के आधार पर किया है।

योग मानवीय शक्तियों का आदि स्रोत है, विश्व-कल्याण के लिए अपनी आदिम शक्तियों को सही रूप से पहचान कर प्रत्येक प्राणी में 'ओंकार' के दर्शन करना तथा उसके साथ उसी प्रकार व्यवहार करना आवश्यक है। यौगिक क्रियाएँ जीवन का सही रहस्य उद्घाटित करती हैं। जीवन के प्रति चैतन्यता स्वामी जी को यह कहने के लिये बाध्य कर देती है कि बौद्धिक अथवा आध्यात्मिक चेतना के मूल में भक्ति अथवा ज्ञान रहेगा ही, इसलिये ज्ञान अथवा भक्ति के मूल 'ओंकार' को तथा उसके साधकों को मैं नमस्कार करता हूँ।"—(ता. १३ [illegible])

Sri P.K. Gode, M.A. (Curator, Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, and a scholar of world repute) writes:—

"The heroic age of Indian history and culture is not a thing of the past. Even today there live in this Bharatvarsha men, whose life is a complete dedication to the Service of God and man. Sri Swami Sivananda Saraswati, the Founder of the Divya Jivan Mandal is one such personality, who by his constant service to Indian social, intellectual and spiritual life has immortalised himself in the minds of his countrymen. A good biography of such a great Soul was long felt as a desideratum but I am glad to find that my young friend Sri Akhil Venoy has come to our rescue in meeting this need. I had the pleasure of inspecting the press-copy of the Hindi Biography of Swami Sivanandaji by Sri Akhil Venoy, who does full justice to the life and philosophy of Swamiji. I feel confident that this Biography will carry its message of spiritual, moral and social values of life to the farthest Confines of Indian Dominion, where Hindi is now getting current as a National language."-(from his letter of 14 8.'51)

डाक्टर भास्कर, *L.A.M.S., Regd. Medical Practitioner.*

"युग-विभूति — स्वामी शिवानन्द" नामक पुस्तके की पाण्डुलिपि देखने का सुअवसर मिला। लेखक ने सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक नेता श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती के जीवन, दर्शन, कार्य और विचारधारा पर विहंगम प्रकाश डालने की सफल चेष्टा की है।

विशेषकर शिवानन्द दर्शन से परिचित होकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। लेखक ने सरल, रोचक और प्रवाहमयी भाषा में श्री स्वामी जी के दर्शन पर विशद प्रकाश डाला है। स्वामी जी ने भारतीय संन्यासियों के लिए एक नवीन आदर्श उपस्थित किया है; निवृत्ति मार्ग के पथिक होते हुए भी वे गृहस्थ एवं संसारी जनों के लिए उचित पथदर्शन कर रहे हैं। उन्होंने देश को तथा समस्त विश्व को आध्यात्मिकता के द्वारा जीवन को उच्च बनाने के लिए निष्काम कर्मयोग का सत्य, सनातन एवं नित नूतन संदेश फिर दिया है। हमें विश्वास है कि गीता की भांति अठारह अध्यायों में लिखित यह ग्रन्थरत्न हिन्दी संसार में समुचित स्थान प्राप्त करेगा। (ता० ४-८-५१)

हिमांचलीय गुणकारी औषधियाँ

पादरक्षक मलहम

पैरों का फट जाना, बिवाइयों में खून निकलना और पैरों के छालों में अति उपयोगी है। ।।) आने और १) रु० के पैकेटों में।

क्षुधावर्द्धक चूर्ण

पाचनशक्ति के लिए और अच्छी तरह भूख लगने के लिए। ।।) आने और १) पैकेट।

अशोकामृतम्

स्त्री के गर्भाशय-सम्बन्धी विकारों को दूर कर रजोधर्म को ठीक और नियमित करता है। मूल्य २।।) प्रति बोतल।

वसन्त कुसुमाकर

मधुमेह के लिए अचूक दवाई है और शरीर के रंग को अच्छा बनाती है। मूल्य ३।।।) रु० माशा प्रति पैकेट• ४५)रु० तो०

दशमूलारिष्ट

पेट में भरी हुई वायु के निवारण के लिए और हाजमे आदि

के लिए; साथ-राक बढ़ाने के लिए इससे बढ़ कर और कोई अरिष्ट नहीं है। मूल्य ३=) प्रति बोतल।

चन्द्रकान्ति लेपन

शिरदर्द के साथ जले और फटे हुए अंग पर लगाने से तत्काल आराम देता है। मूल्य १=) और २) रु० प्रति शीशी।

क्योर-एग्जिमा

दद्रु, मापा, चर्मजन्य विकार, खुजली आदि के लिए लाभप्रद है। मूल्य १।) रु० पैकेट।

बालजीवनामृतम्

छोटे बालकों के पट की बीमारियों के साथ-साथ और कई साधारण बीमारियों के लिए अत्यन्त लाभप्रद है। १।।)रु०।

मधुमेह-निवारक

विशेप कर मधुमेहपीड़ितों के लिए। मूल्य ४) रु० प्रति दिन।
अ य औषधियों की विस्तृत सूची मँ ।।इए

* मिलने का पता *

शि० आ० औषध नर्माणशाला, आनन्द कुटीर (ऋषिकेश)

जन-जन में ज्ञान-प्रसार के लिए अपना सहयोग दीजिये

स्वामी शिवानन्द जी की हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशन में हाथ बँटाइये

इस युग में ज्ञानयज्ञ के समान प्रभावशाली अन्य साधना नहीं है

२०० पृष्ठों की पुस्तक के प्रकाशन में ५००) का व्यय होता है।
१५० पृष्ठों की पुस्तक के प्रकाशन में ३००) का व्यय होता है।
८० पृष्ठों की पुस्तक के प्रकाशन में १५०) का व्यय होता है।
४० पृष्ठों की पुस्तक के प्रकाशन में १००) का व्यय होता है।

पुस्तकों के प्रकाशन में इस भार का वहन कीजिये। आपके किसी भी निकटतम आत्मीय की स्मृति में यह ग्रन्थ प्रकाशित किया जायगा। विस्तृत विवरण के लिए पूछिए।

–पता–

शिवानन्द प्रकाशन संस्थान, आनन्द कुटीर (ऋषिकेश)

पत्रव्यवहार सर्वथा देवनागरी में कीजिए

स्वामी शिवानन्द जी द्वारा रचित

—++++:○:++++—

योग-वेदान्त, भक्ति और सदाचार-विषयक हिन्दी ग्रन्थ

शिवानन्द दिग्विजय	६	०	०
चैतन्य ज्योति	६	०	०
दिव्य जीवन भजनावलि	२	४	०
आनन्द गीता	२	०	०
स्त्री धर्म	२	०	०
प्रार्थना मञ्जरी	२	०	०
योगाभ्यास	२	०	०
घरेलू दवाइयाँ	१	८	०
शिवानन्द विजय नाटक	१	८	०
शिवानन्द भजनमाला (भाग १)	१	०	०
जीवन ज्योति	१	०	०
शिवानन्द भजनमाला (भाग २)	१	०	०
अमृत गीता	०	१२	०
शिवानन्द ·नमालिका	०	४	०

अन्य पुस्तकों की सूची के लिए लिखिए

व्यवस्थापक,

शिवानन्द प्रकाशन संस्थान

आनन्द कुटीर (ऋषिकेश)